स्त्री-पुरुष-मर्यादा

लेखक
किशोरलाल मशरूवाला
अनुवादक
सोमेश्वर पुरोहित

नवजीवन प्रकाशन मन्दिर
अहमदाबाद

मुद्रक और प्रकाशक
जीवणजी डाह्याभाई देसाई
नवजीवन मुद्रणालय, अहमदाबाद-९

पहली बार २०००

पौने दो रुपये

अप्रैल १९५१

प्रकाशकका निवेदन

श्री किशोरलाल मशरूवाला गुजरातमें अेक मौलिक, निष्पक्ष व क्रान्तिकारी विचारक और लेखकके नाते प्रख्यात हैं। अिनका थोड़ा परिचय अुनकी 'जीवनशोधन' और 'जड़मूलसे क्रान्ति' जैसी विचारप्रेरक पुस्तकोंसे हिन्दी जगतको भी मिल चुका होगा। अब हम स्त्री-पुरुष मर्यादाके बारेमें अुनके सर्वथा नया दृष्टिकोण लिये हुअे लेखों और भाषणोंका यह संग्रह पाठकोंके सामने प्रस्तुत करते हैं। गुजरातीमें यह संग्रह कितना लोकप्रिय सिद्ध हुआ है, अिसका प्रमाण अिसीसे मिल जाता है कि कुछ वर्षोंमें ही अिसके चार संस्करण छप चुके हैं।

आशा है पाठकोंको यह पुस्तक रुचिकर, प्रेरक और बोधप्रद मालूम होगी।

१०-४-[illegible] जीवणजी देसाअी

प्रस्तावना

अिस पुस्तकमें स्त्री-पुरुषके सम्बन्धसे रखनेवाले प्रश्नोंका योजना-पूर्वक विवेचन नहीं किया गया है। जिसे कामविज्ञानका साहित्य कहा जाता है, अैसे भी ये लेख नहीं हैं। अिन पुस्तकोंके बारेमें अपनी राय अेक जगह मैंने बताओी है। दस वर्षके अरसेमें अलग-अलग मौकों पर पेश किये हुअे विचारोंमें से बने हुअे लेखोंका यह केवल अेक संग्रह-मात्र है। अिसका अन्तिम लेख भी अेक पुराना अप्रकाशित पत्र है। छापनेके लिअे अुसमें सिर्फ कुछ परिवर्तन कर लिये गये हैं। सबकी ध्वनि तो स्पष्ट है, अिसलिअे अुसको फिरसे स्पष्ट करनेकी जरूरत नहीं रह जाती।

कुछ लेखोंकी भूमिकामें मेरी निजी बातें आओी हैं। वे मेरे जीवनकी बातें कहनेके लिअे नहीं, बल्कि यह बतानेके लिअे लिखी गओी हैं कि अेक धर्मपरायण कुटुम्बमें किस तरहकी परवरिश होती है। अैसे कुटुम्ब आज भी बहुतसे होंगे, लेकिन यह भी संभव है कि वे लुप्त हो रहे हों। अिसलिअे अिन बातोंकी पूर्तिरूपमें अेक-दो ज्यादा हकीकतें बता दूँ, तो वे — कमसे कम — लुप्त होते हुअे जमानेका चित्र हमारे सामने अुपस्थित करनेमें अुपयोगी साबित होंगी।

मैं स्वामिनारायण सम्प्रदायमें पल कर बड़ा हुआ हूँ, और अुस सम्प्रदायमें मेरे खास गुरु तो मेरे पिताजी ही थे।

हिंसा न करनी जंतकी, परत्रिया संगको त्याग
मांस न खावत मद्यको पीवत नहीं बड़भाग।
विधवाको स्पर्शत नहीं करत न आत्मघात
चोरी न करनी काहुकी कलंक न काहुको लगात।
निंदत नहीं कोउ देवकी बिन खपतो* नहीं खात

[illegible]

विमुख जीवके वदनसे कथा सुनी नहीं जात।
यह विधि धम सह नियममें वर्ते सब हरिदास
भज श्री सहजानन्द प्रभु छाडी और सब आस।
रही अकादश नियममें करो श्री हरिपद प्रीत
प्रमानन्दके धाममें जाओ निःशंक जग जीत।

— यह अिस सम्प्रदायकी शामकी प्रार्थनाके नित्यपाठका अक हिस्सा है। मेरे पिताजीके जीवनमें अिसके अक्षरशः पालन और दूसरोंसे पलवानेका आग्रह था। बम्बअी जैसे शहरमें रहकर भी वे खुद अिस नियमका अितनी सख्तीसे पालन करते थे कि भूलेश्वर और तीसरे भाअीवाड़के गिच-पिच रास्ते पर भी किसी विधवाका स्पर्श न हो जाय अिसका ध्यान रखते थे और कभी हो गया मालूम पड़ता तो अेक बारका खाना छोड़ देते थे।

अकांतसे सम्बन्ध बारेमें अुन्होंने हमें जो शिक्षा दी थी अुसकी अेक बात यहां कहूं। अेक बार मेरी छोटी बहन (१२-१३ सालकी) अेक कमरेमें कंघी कर रही थी। अुस बीच कोअी परिचित गृहस्थ अुस कमरेमें दाखिल हुअे। कमरा खुला था। अुसकी बनावट असी थी कि आस-पास किसीकी भी नजर अन्दर पड़ जाती थी। मेरी बहन अुनके आने पर कमरेसे अुठकर चली नहीं गअी और कंघी करती रही। मेरे पिताजीने दूसरे कमरेमें से यह सब देखा। अुन्होंने बहनको पास बुलाकर मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा सहजानन्द स्वामीकी आज्ञा अुसे समझाअी। फिर कहा कि अिस आज्ञाका भंग हुआ है अिसलिअे प्रायश्चित्तके रूपमें अुसे अेक दिनका अुपवास करना चाहिये।

स्त्री-पुरुष-सम्बन्ध नामके मेरे लेख पर कुछ नौजवान और प्रौढ़ जवान भी चिढ़ गये थे। अूपरकी बात पढ़कर अुनके मनमें क्या भाव पैदा होगा अिसकी मैं कल्पना कर सकता हूं। जो मर्यादापालनमें विश्वास रखते हैं अुनमें से भी कुछको असा लगेगा कि मेरे पिताका यह बरताव मर्यादाकी भी मर्यादाको लांघ गया है। कुछ यह भी कहेंगे कि

जिस तरह पाला गया सदाचार दरअसल सदाचार ही नहीं है, ब्रह्मचर्य दरअसल ब्रह्मचर्य ही नहीं है। लेकिन यह राय भी कोई नयी नहीं है। स्थूल नियमपालनके खिलाफ यह विरोध स्मृतियों जितना ही पुराना है।

अंग्रेजी राज्यकी शुरुआतसे अगर नये युगकी शुरुआत मानें तो बड़े पैमाने पर उज्ज्वल ब्रह्मचर्याश्रमकी स्थापनाका प्रयत्न करनेवालोंमें सहजानन्द स्वामीका नाम अवश्य लिया जा सकता है। लेकिन उन्होंने उसकी सिद्धिके लिये कड़ी मर्यादायें बांध दीं। उनकी इन मर्यादाओंकी उस समयके साधु-सम्प्रदायोंने भी टीका की थी। अेक बात अभी लिखी गयी है कि अेक बार अेक वैरागी साधुने सहजानन्द स्वामीके साथ चर्चा करते हुअे कहा — स्वामिनारायण, आपने सब कुछ तो अच्छा किया, लेकिन अेक बात बहुत बुरी की। आपने स्त्री-पुरुषमें अलग-अलग बाड़ बनाकर ब्रह्ममें भेद डाल दिया!' सहजानन्द स्वामीने उत्तर दिया, "बाबाजी, यह भेद कोअी रहनेवाला तो नहीं है। लेकिन मैं अेक विषम जिनवाला आ गया हूं, जिसलिअे मने यह भेद कर डाला है। मेरी बाड़ी-बहुत जिन जिन लोगों (शिष्यों) को लगी है। यह जब तक टिकेगी तब तक यह भेद रहेगा। फिर तो आपका ब्रह्म पुनः अेक ही हो जानेवाला है।

स्वामिनारायण सम्प्रदायके साधु-ब्रह्मचारी निवृत्तिपरायण भक्ति मार्गी हैं। संसारी समाजसे दूर रहकर जो जीवन बिताना चाहते हैं उनके लिअे जिस संस्थामें अैसा करनेकी सुविधा है। ये कड़े नियम संसारी समाजके लिअे नहीं बनाये गये, नहीं सौंपे गये थे। लेकिन यदि नियमोंको गिन नाम दिया जाय तो कहा जा सकता है कि संसारी समाजमें भी कुछ मर्यादा रखी जिनकी छूत उन्होंने जरूर लगाओी थी। यह छूत मेरे पिताजीको विरासतमें मिली थी। उन्होंने उस विचार पूर्वक पोसा था और हमें लगानेकी कोशिश की थी। ... इसी कारणसे

घिन शब्द तो सहजानन्द स्वामीने व्याजोक्तिके नाते लिया था। सच पूछा जाय तो अुनके मनमें स्त्रीजातिके लिअे कभी अनादर नहीं रहा। अितना ही नहीं, वे व्यक्तिगत रूपसे स्त्रियोंके साथ कभी घिनभरा बरताव नहीं करते थे। और स्त्रियोंकी अुन्नतिके लिअे अुन्होंने असी बहुतसी प्रवृत्तियां चलाअीं और संस्थायें कायम की थीं जिन्हें अुस जमानेके हिसाबसे नयी कहा जा सकता था। मेरे पिताजीमें भी स्त्रीजातिके लिअे घिन या अनादर नहीं था। हमारे परिवारमें घूंघट, ससुरके साथ न बोलना, ससुर-जेठ वगैराके देखते हुअे पतिके साथ न बोलना वगैरा मर्यादाओं पर अमल नहीं होता था और गृहस्थीका लगभग सारा कामकाज स्त्रियोंके हाथमें ही रहता था। अिसके फलस्वरूप परिवारमें नये सुधार दाखिल करनेका काम शायद ही हमें कभी कठिन मालूम हुआ हो। रोना-पीटना, श्राद्धादिका भोजन, शादी या मौतके समय जाति-भोज, शादीके समय घरकी सवारी निकालना, स्वदेशी, खादी, अस्पृश्यतानिवारण, मूर्तिपूजा, अुत्सव वगैराके बारेमें जो जो सुधार परिवारमें किये गये अुनमें शायद ही मेरे पिताजीको या हम भाअियोंको स्त्रीवर्गके साथ झगड़ा करना पड़ा हो। स्त्रीजातिके प्रति घिन या अनादर ही होता तो मुझे लगता है कि यह नतीजा नहीं आ सकता।

लेकिन यह प्रस्तावना मैं सहजानन्द स्वामीकी या मेरे पिताजीकी कीर्ति बढ़ाने या अुनकी वकालत करनेके लिअे नहीं लिखता। अिसके लिखनेका हेतु सिर्फ अितना ही है कि आज अनेक प्रकारके मत सुनकर हमारे मन जो विचलित हो गये हैं अुसके बारेमें अपनी तीव्र श्रद्धाओंकी भूमिका पाठकोंके सामने रख दूं।

* * *

काकासाहबने अनेक कामोंमें से समय निकालकर अिस पुस्तकका आमुख लिखकर मुझ पर जो स्नेह बरसाया है अुससे पाठकोंको भी लाभ होगा।

वर्धा — किशोरलाल मशरूवाला

जनवरी १९३७

आर्य आदर्शकी दृष्टिसे

[आमुख]

जीवनशोधन और गांधी-विचार-दोहन किशोरलालभाईकी व्यवस्थित ढंगसे लिखी हुआी पुस्तकें हैं। केळवणीना पाया (शिक्षाकी बुनियाद) भी अेक सम्पूर्ण निबन्धमाला है। लेकिन अिस पुस्तकके बारेमें अैसा नहीं कहा जा सकता। किशोरलालभाईके प्रति रही श्रद्धाके कारण और अुनके विचारोंकी महत्ता जानकर कभी लोग अुनसे प्रश्न पूछते हैं। अिन लोगोंको व्यक्तिगत जवाब देनेके बजाय नवजीवन या हरिजनबन्धु जैसे पत्रोंमें अुन विषयोंकी चर्चा करनेसे आम जनताको भी लाभ होता है अैसा समझकर वे कभी बार अिन पत्रोंमें लिखते हैं। लोग अुन्हें गंभीर विचारक निःस्पृह लेखक और अुत्कट यथार्थीके रूपमें पहचानते हैं। अिसलिअे गुजरातमें अुनकी पुस्तकें, लेख वगैरा आदरसे पढ़े जाते हैं। अिसीलिअे प्रकाशकने अुनके स्त्री-पुरुष सम्बन्धके बारेमें अलग-अलग समय पर लिखे हुअे लेख वगैरा अिकट्ठे करके यहां स्थायी रूपमें पाठकोंके सामने रखे हैं।

साफ है कि अिस विषयका यहां सांगोपांग विवेचन नहीं हुआ है। अिस विषयके अेक-दो महत्त्वपूर्ण पहलू छूकर अुनके बारेमें अपनी राय, निर्णय और अुनके पीछे रही दृष्टि साफ शब्दोंमें और किसी तरहका समझौता किये बिना अुन्होंने यहां पेश किये हैं। यदि किशोरलालभाई अिस विषयकी शास्त्रीय पुस्तक लिखने बैठते तो अिसे दूसरे ही ढंगसे लिखते। अपने विषयका अच्छी तरह विश्लेषण करके और व्यवस्थित ढंगसे अुसके विभाग करके मुद्देवार लिखनेकी कला किशोरलालभाई जानते हैं और जिसी कारणसे अपने निर्णय शास्त्रीय दृष्टिसे शुद्ध और सम्यक् हैं अैसी छाप डालकर वे पाठकोंको अपने पक्षमें भी कर लेते हैं। लेकिन अिसकी शैली कुछ अलग ही है। अुसका असर भी अलग होता है।

स्त्री-पुरुष-मर्यादा का विषय बड़ा नाजुक है। कल्पनाओं, मनोवृत्तियों, सामाजिक आदर्श-परम्परा और अपना अनुभव — अिन सारी चीजोंको अेक ओर रखकर यदि कोरा शास्त्र ही लिखा जाय तो वह यहां काम नहीं देगा। किशोरलालभाअीने अपने विषयमें बहुत कम लिखा है। अपने विषयमें लिखनेमें अुन्हें जबरदस्त ज्यादा संकोच होता होगा। लेकिन यहां विषयकी चर्चाने अुन्हें अपने बारेमें लिखनेके लिअे मजबूर कर दिया और अुनके अिस संकोचको थोड़ा मिटा दिया। स्त्री-पुरुष सम्बन्धकी मर्यादा कैसी होनी चाहिये यह हर युग, हर देश और हर समाज किसी हद तक अलग-अलग आदर्शके अनुसार तय कर लेता है। और अिस कारणसे आजकल कहीं-कहीं असा ही माना जाता है कि अिन मर्यादाके नियमोंके पीछे लोकरिवाज और सामाजिक संकेत ही है, कोअी चिरंतन तत्त्व नहीं है। किशोरलालभाअीने धर्मनिष्ठ हिन्दू समाजमें, अुसमें भी गुजरात-महाराष्ट्रके लोगोंमें जो रिवाज चालू है या जो आदर्श माना गया है, अुसीकी यहां हिमायत की है। स्वामिनारायण सम्प्रदायके प्रति मशरूवाला परिवारकी भक्ति और श्रद्धा प्रसिद्ध है। किशोरलालभाअीने प्रज्ञा और श्रद्धाका सुन्दर समन्वय करके स्वामी सहजानन्दके अुपदेशका अध्ययन और पालन किया है। अिसके साथ ही गांधीजीका ब्रह्मचर्यका आदर्श, स्त्रीजातिकी स्वतन्त्रताका स्वीकार और कुटुम्ब-संस्थाको आध्यात्मिक पोषण देकर सजीव बनानेकी तीव्र लगन — अिन तीनों चीजोंका अनुसंधान अपना लिया है। किशोरलालभाअीकी भूमिका यह है कि अुन्होंने जो आदर्श पेश किया है वह मानसशास्त्रकी दृष्टिसे, मनुष्य स्वभावकी दृष्टिसे और हिन्दू आदर्शकी दृष्टिसे शास्त्रशुद्ध और व्यवहारमें लाने योग्य है और अिसी कारणसे वह सब जगह अपनाने जैसा है। आदर्श और व्यवहार दोनोंकी कसौटी पर कसकर अुन्होंने हमारे सामने अैसी मर्यादायें रखी हैं जिनसे समाजहितकी अुचित रक्षा हो सके। अिससे ज्यादा मर्यादाओं रखनेको वे आत्मघातकता अतिरेक मानते हैं। लेकिन अगर कोअी कहे कि अुनके सुझाये हुअे नियमोंमें भी अतिरेक

हैं तो व अिस आसानीसे स्वीकार नहीं करेंगे। मनुष्यका शरीर पवित्र है, पुरुष और स्त्रीका शरीर अवश्य पवित्र है और पवित्र रखा जाना चाहिये। विकारी स्पर्शसे वह अपवित्र हो जाता है। अिसलिअे जितने विकार भस्म हो गये मान लिये हुओ हों अुन्हें छोड़कर बाकीके सब विकारोंमें हरअेक स्त्री-पुरुषको निरपवाद रूपमें रहना ही चाहिये। जीवनके साधारण और शुभ व्यवहारोंमें स्त्री-पुरुषके बीच जो स्पर्श या सम्बन्ध सहज बिना अनायास हो जाय अुसे किशोरलालभाओी निर्दोष मानते हैं और व्यवहारसे बाहरका स्पर्श या सम्बन्ध गैरजरूरी है अिसलिअे अुसे त्याज्य समझते हैं।

आजकी दुनिया अिस भूमिकाको संकुचित या कृत्रिम कहेगी। सामाजिक जीवनमें अैसे भी स्पर्श रूढ़ हो जाते हैं जो न तो जरूरी कहे जा सकते हैं और न विकारी होते हैं। सामाजिक जीवनमें अपनी भावनाओंको प्रगट करनेके लिअे या सामाजिक संवरकी भूखको तृप्त करनेके लिअे अैसे सम्बन्ध जरूरी हैं। अितना ही नहीं आजकी दुनिया — सयानी और विचारशील दुनिया — यह भी कहती है कि मनुष्यको अगर विकारोंके अुन्माद्य बनना हो तो अैसी निर्दोष खुराक अुसे मिलनी चाहिये। मेरी भूल न हो तो लाला लाजपतराय जैसे लोग भी मानते थे कि मर्यादित स्त्री-सहवास मनुष्यको सौम्य और संस्कारी बनाता है, अुसकी वृत्तिको कठोर होनेसे बचा लेता है और पवित्रताकी झांकी कराता है।

अब स्थिति यह हो जाती है कि बापूजी या गांधीजी अिस विषयको जिस तरह पेश करेंगे अुसके खिलाफ किशोरलालभाओीको कुछ कहना न रहेगा और किशोरलालभाओी जिस ढंगसे यह विषय रखते हैं अुसमें गांधीजीको अअेतराज अुठाने जैसा कुछ न लगेगा। फिर भी दोनोंकी भूमिकामें भेद दिखाओी दे जायगा। भेद सिद्धान्तका नहीं है बल्कि अिस प्रश्नके भीतर रहे हुअे अलग-अलग तत्त्वों पर कम-ज्यादा जोर देनेकी मात्रामें भेद पड़ता है। कुछ बातोंमें गांधीजी कहेंगे कि मेरा कोओी अनुकरण न करे और फिर भी यदि कोओी अुनके अलौकिक

होनकी यात कह तो व अुमम अिनवार कर लेंग। और किशारलालभाअी ता कहेंग कि गाधीजीन अपनी निर्भय सत्यनिष्ठा और असाधारण पावित्र्यनिष्ठाक कारण अलौकिक स्थान पा लिया ह। अिमीलिअ व गाधीजीका अपवाद मानग या अुनकी बातें मह लेंग।

किशोरलालभाअीकी भूमिका और विवचन-पद्धति ताजी निश्चयात्मक और जानभरी है। किसी हद तक स्त्री-पुरुष-सम्बन्धमें शिथिलता निर्दोष मानी जा सकती ह असा आप कहें तो वे पूछ बठत है कि यह ठीक हो तो भी अिसम लाभ क्या? अिसक बिना क्या काम नही चलता? तो फिर यह शिथिलताकी हिमायत किस लिअ? यहा आदमी बजवाब-सा हो जाता ह।

आजक जमानेकी हवा अिसम बिलकुल अुल्टी ह। आजका जमाना स्वतत्रताक नाम पर, जीवनकी पूर्णताक नाम पर और असी असी अनक चीजोंक नाम पर अिस विषयमें ज्यादास ज्यादा छूट लनमें और अुम अुचित साबित करनमें विश्वास रखता ह। अिसलिअ बहुतम लागोको असा लगगा कि किशोरलालभाअीकी यह सारी फिलासफी आजकी विचार धाराम अुल्टी दिशामे जानवाली ह। फिर भी अुनके कट्टर विरोधियोंमें भी अुनकी भूमिकाक प्रति आदर पैदा हुअ बिना नही रहगा और विवक शील मनुष्य अपनी भूमिकाको कुछ सौम्य करक किशोरलालभाअीक साथ यथाशक्य मन बैठानेकी भी कोशिश करेंग।

किशोरलालभाअीन जितना कुछ कहा ह अुम सबको स्वीकार कर लन पर भी अुनक विवचनम हमें सन्ताप नहीं होगा क्योंकि आजक दूसर कितन ही महत्त्वक सवालोंको अुन्होंन छुआ ही नहीं। स्त्री पुरुषकी तरह स्वतत्ररूपस कमाअी कर या नहीं आर्थिक क्षेत्रमें पुरुषक साथ होड़में अुतर या नही — आजका यह सवाल ज्यादाम ज्यादा महत्त्वका और चर्चाका विषय बनता जा रहा है। स्त्री-पुरुष-सम्बन्धके लिअ विवाह विधिकी मान्यता जरूरी ह या नहीं असा सवाल अुठानकी भी कुछ लाग हिम्मत कर रहे हैं। यह सवाल गौण है कि युवक-युवतियोंके

लिये सहशिक्षा अच्छी है या नहीं। (यद्यपि अिस सवालके बारेमें भी हमारे यहां और विदेशोंमें भी तीव्र मतभेद है ही।) लेकिन सारी स्त्री-शिक्षाकी नींव बिलकुल अलग हो, बहुत दूर तक अलग हो या शिक्षाक्षेत्रमें स्त्री-पुरुषके भेद पर ध्यान ही देनेकी जरूरत नहीं, यह सवाल भी आजके युगका अेक महत्त्वपूर्ण सवाल बन गया है। भिन्न वर्णोंके लोगोंके बीच होनेवाले विवाहके खिलाफ आज काफी ज्यादा नहीं चलता। लेकिन भिन्न धर्मवालोंके बीच विवाह हो या न हो, यह बड़ा चर्चाका विषय बन गया है और कुछ समय बाद शायद ज्यादा जटिल बन जायगा।

व्यक्तिके जीवन पर सामाजिक नियमन किस हद तक स्वीकार किया जाय, यह भी अिसी क्षेत्रका अेक महत्त्वपूर्ण सवाल है।

स्त्रियोंकी आर्थिक स्वतंत्रताकी बात आअी, अिसलिअे यह विचार भी मनमें आये बिना नहीं रहता कि किशोरलालभाअीका सारा विवेचन बैठा काम करनेवाले सफेदपोश मध्यमवर्गीय लोगोंको लक्ष्य करके लिखा गया है। गांवके किसान, शहरके मजदूर और कारीगर लोग जिस ढंगसे रहते और काम करते हैं, अुनके लिअे भी किशोरलालभाअीका सूत्र संपूर्ण है। लेकिन अैसा नहीं लगता कि अुन लोगोंके जीवनके सम्बन्धमें अुन्होंने यह विवेचन किया है। सम्भव है, अिस वर्गमें क्रमशः कम बिगाड़ होनेके कारण अिसके लिअे अैसी चर्चा आवश्यक न हो।

अिस सारी चर्चाकी भूमिका गृहस्थाश्रमकी पवित्रता और अिस-लिअे ब्रह्मचर्यकी अनिवार्यताके अूपर ही रखी गअी है। किसी भी समाजमें, खासकर हिन्दू समाजमें अिस चीजसे अिनकार नहीं किया गया है। अभी-अभी महायुद्धके कारण यूरोपमें कामशास्त्रकी चर्चा बढ़ी है, व्यक्तिस्वातंत्र्य और समाजसत्तावादके संघर्षके कारण आदर्शोंमें अस्पष्टता आअी है और अिसके फलस्वरूप नये मतों या वादोंका जन्म हुआ है, और हम तो पिछले कअी वर्षोंसे यूरोपकी प्रतिध्वनि या स्याहीचूस बन गये हैं। यूरोपमें अिस चीजको सूक्ष्म और शास्त्रीय कहा जाय अुस ढंगसे अपनानेके लिअे हम लाचार हैं। पश्चिमकी लगन

और पाशाक पश्चिमकी शिक्षा पश्चिमवालोंका धर्म सामाजिक और कौटुम्बिक बातोंमें सुधार करनेकी अुनकी योजनायें लिबरल दलकी राजकीय भूमिका धर्ममें प्रोटेस्टंट वृत्ति कलामें यथार्थवाद जीवनमें व्यक्तिवाद — अिन सब चीजों पर हम क्रमशः विश्वास करते आये हैं। कानूनके जरिये सामाजिक और कौटुम्बिक बातोंमें सुधार विधिविधान द्वारा मान्य की हुआी राजकीय हलचल मजदूर दलकी सहानुभूति सरकारके साथ सहयोग करके और संकटके समय सरकारको मदद करके अुसका अविश्वास दूर करनेकी कोशिश अिस सबको स्वीकार करके हमने आजमा देखा है। और अब आर्थिक जीवनकी सर्वोपरिताका समाजसत्तावादका और आत्मा अीश्वर परलोक मोक्ष वगैरा चीजोंके बारेमें अविश्वास या लापरवाहीका जमाना आया है। और वर्गविग्रहको जीवनकी नींव माननेकी प्रथा भी लोकप्रिय बनती जा रही है। यहां यह सवाल नहीं है कि ये सब चीजें दरअसल अच्छी हैं या बुरी। यहां तो अितना ही याद रखना है कि युरोप और अमरिकाकी प्रतिध्वनिमात्र बननेकी वृत्ति हमने अभी तक छोडी नहीं है।

अिस जमानेमें कोअी यदि आत्मविश्वास रखकर स्वतंत्रतासे यह लिखे कि हमारे परंपरागत चले आये रिवाज या अुनके आदर्श शुद्ध हैं वे सारी दुनियाके लिअे स्वीकारने योग्य हैं तो पहले तो आश्चर्य ही होगा लेकिन साथ ही आनन्द भी हुअे बिना न रहेगा।

जीवन-शुद्धिका यह आदर्श पवित्र और निर्दोष है। अिसमें कुछ फेरबदल करना जरूरी मालूम हो तो अिस निबन्धमालाकी भूमिका स्वीकार करके अुसे थोड़ा-बहुत नया रूप दिया जा सकता है। और हरअेकको लगेगा कि यही अुत्तम नीति है।

न पढ़ने लायक अच्छी पुस्तकें नामके लेखमें निःसारत्वाधीन मानसशास्त्रका अेक महत्त्वका प्रश्न छेड़ा है।

जब वे हमारे समाजके दोष बताते हैं तब अुनकी लोगोंके प्रति प्रेम और अन्यायके प्रति चिढ़ दोनों अेक साथ चमक अुठते हैं।

"स्त्रियों पर अत्याचार" नामक प्रकरण हमारे लिअे सदा बड़े चाबुकका काम करता है। अिस चाबुकका प्रहार अुन्होंने महाभारतसे भीष्मा-चार्यसे लेकर सभीको चखाया है। लेकिन यह अुनका अन्याय है अैसा कौन कह सकता है? 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः' अैसा कहनेवाले और माननेवाले हमारे समाजने न तो स्त्रीको शक्तिरूप बनाया और न अबला कहते हुअे भी पूरी तरह अुसकी रक्षा की। अिसलिअे गांधीजीने अकुलाकर कभी बार यह कहा है कि अपने सतीत्वकी रक्षा करनेके लिअे हमारे देशकी कोअी भी स्त्री अत्याचारीको तमाचा मार दे या मरनी बनकर काट खाय तो मैं अुसे हिंसा नहीं मानूंगा। यह तो कानूनका विरोध करनेवाले गांधीजीकी राय हुअी। लेकिन अपराधकी व्याख्या करनेवाले और अपराधकी सजा ठहरानेवाले पीनल कोडके लेखकोंने भी अपनी अिसी तरहकी स्पष्ट राय बताअी है। अुन्होंने यह लिख रखा है कि जिस देशकी स्त्रियोंकी असहाय स्थिति, पुरुष द्वारा स्त्री पर अत्याचार करनेके मामलेमें कानूनका संरक्षण लेनेके बारेमें जनताकी अरुचि, बात अुसे जाहिर करने पर अनेक कारणोंसे स्त्री-जाति अितने खतरेमें है कि दूसरे लोगोंके बजाय अिस देशकी स्त्रीके लिअे आत्मरक्षा करनेमें अत्याचारीको मार डालनेकी ज्यादा छूट रखना हमने अुचित माना है।

स्त्रियोंमें आत्मरक्षा करनेकी हिम्मत हम जरूर पैदा करें। जरूरी मालूम हो तो आत्मरक्षाकी कला भी अुन्हें सिखायें। लेकिन साथ ही साथ पुरुषोंको अपनी मनुष्यता और संस्कारिताका सामाजिक आदर्श भी सुधारना चाहिये। तभी यह संकट दूर होगा।

अपनी अधिकारयुक्त वाणीसे अन्होंने नाजुक सामाजिक प्रश्न छेड़कर किशोरलालभाअीने बहुतसे लोगोंको विचार करनेकी प्रेरणा दी है। अिस हितचिन्तक चर्चाको श्रद्धा और आदरके साथ ही पढ़ना चाहिये।

वर्धा

स्वातंत्र्य दिन १ २७ — काका कालेलकर

अनुक्रमणिका

भाग दूसरा : लग्न-मीमांसा

भाग तीसरा अन्तिम सत्य

स्त्री-पुरुष मर्यादा

भाग पहला

१

पुरुषोंके दोष

लम्बे समय तक अज्ञानमें या भूलभरे ज्ञानमें रहनेवाले आदमीको सच्ची हकीकतका भान होता है तब वह भान अगर अच्छे प्रकारका हो, तो अुसे अैसा आनन्द और अचरज होता है और बुरे प्रकारका हो तो अैसा आघात पहुंचता है कि शुरूसे ही अुस ज्ञानमें पले हुअे सामान्य लोगोंको अुसका खयाल भी नहीं हो सकता।

खुशकिस्मतीसे मेरी परवरिश अैसे परिवार और वातावरणमें हुअी कि समाज और परिवारोंमें भीतर ही भीतर चलनेवाले कुछ अपवित्र व्यवहारोंका अभी तक मुझे खयाल भी नहीं आया था। और जैसे-जैसे मुझे अिस अपवित्रताका पता चलता है वैसे-वैसे मेरे दिलको गहरी चोट लगती है। लेकिन जब मुझे यह मालूम होता है कि जिस हकीकतकी जानकारीसे मुझे तीखी चोट लगती है वह तो लगभग सामान्य ज्ञानका विषय है और अुससे दूसरोंको न सिर्फ आघात ही नहीं पहुंचता, बल्कि वे अिस बारेमें मुझे जितनी ज्यादा बातें बता सकते हैं कि मेरे आघातोंमें बढ़ती ही हो तो मुझे बड़ा ताज्जुब होता है। साथ ही मुझे अिस बातका भी ताज्जुब होता है कि जो लोग पवित्र वृत्तिके हैं वे खुद अिस अपवित्रताको शान्त रहकर कैसे सहन कर पाते हैं?

मुझे यह सोचकर अचरज होता था कि बुद्ध जैसे सूक्ष्म विचारकने शराब मांस व्यभिचार और चोरी जैसी सर्वमान्य और सादी अनीति पर ही क्यों अितना जोर दिया? अितनी बातें छोड़नेवाला बुद्धका शिष्य होने लायक माना जाता था। लेकिन अिस बातको तो २४०० बरस बीत चुके। अुसके बाद आजसे कोअी सौ बरस पहले सहजानन्द स्वामी आये। अुन पर यह अिलजाम लगाया जाता है कि अुन्होंने कोअी बहुत

बड़ी तत्वकी बातें नहीं बताओं सिर्फ शराब मांस व्यभिचार और चोरी जैसी सादी नीतिकी बातों पर ही जोर दिया है। अुनके सौ बरस बाद आज भी जब पिछड़ी हुओ जातियोंके बीच काम करनेवाले लोगोंकी बातें हम सुनते हैं तो वे भी शराब और मांस छोड़नेकी ही बातें करते हैं। व्यभिचार और चोरीके बारेमें तो वे अेक शब्द भी नहीं निकाल सकते।

रानीपरज जातिकी औरतोंके साथ होनेवाले अनैतिक बरतावकी बातें जब मैंने सुनीं तो मुझे बड़ा दुःख हुआ था। पूज्य गांधीजीको जब ये बातें मालूम हुओं तो अुन्हें भी बड़ा दुःख हुआ। और अुन्होंने मेरी बातको ज्यादा प्रसिद्धि दी।* अुस लेखमें कोअी बात बढ़ा-चढ़ाकर तो कही ही नहीं गअी थी, अैसा अुस दिन भी मेरा विश्वास था। बल्कि अिस बारेमें ज्यादा जानकारी रखनेवाले लोग मुझसे कहते हैं कि अुसमें जरूरतसे ज्यादा संकोच था और जितना कहना चाहिये था अुससे कम कहा गया था।

मेरे लेखके समर्थनमें गांधीजीने हिन्दुस्तानके पुरुष-वर्ग पर यह अिलजाम लगाया है कि हमें स्त्री-जातिकी अिज्जत-आबरूकी ज्यादा परवाह ही नहीं है। मैं देख रहा हूं कि यह अिलजाम बिलकुल सच्चा है। शील और पतिव्रताके धर्मके बारेमें शास्त्रोंमें बड़ी-बड़ी बातें कही गअी हैं फिर भी पुरुष-वर्गको अपनी स्त्रीके सिवाय (और कअी जगह अपनी स्त्रीके लिअे भी नहीं) दूसरी किसी स्त्रीकी अिज्जतको धक्का पहुंचे तो ज्यादा चोट नहीं लगती। यह अिसे कूथली× (कुत्सित चर्चा)का विषय बना सकता है दुःखका नहीं। यह मैं सुनने और जानने लगा हूं कि पुरुषोंका शादीसे पहले स्त्रीमात्रको न छूनेका और शादीके बाद पराओी स्त्रीको न छूनेका आग्रह बहुत मन्द होता है।

---

* नवजीवन १५-५-'२७

× अिस मूल गुजराती शब्दका अर्थ है रस लेते हुओ पीठ पीछे किसीकी निन्दाभरी चर्चा करना।

मने दुराचारी पुरुषोंके बारेमें कभी सुना ही नहीं था अैसा नहीं है। पिछला अितिहास याद करनेसे पता चलता है कि मेरे ही परिवारमें से कुछ आश्रित पुरुषोंको स्त्रियोंके साथ बेअदबीका बरताव करनेकी कोशिश करनेके कारण घरसे बाहर करना पडा था। लेकिन अिस में सबकी नहीं बल्कि कुछ ही व्यक्तियोंकी कुचाल समझता था। पर अिस मामलेमें थोडा गहरा अुतरनेसे समझमें आता है कि अैसे पुरुषोंकी तादाद समाजमें अितनी थोडी नहीं है कि अुसे अपवाद मानकर छोड दिया जाय। अुसी तरह यह भी नहीं है कि यह बुराओी सिर्फ हलके माने जानेवाले नौकर वर्गमें ही हो। मेरे पास कुछ अैसे दुःख पहुचानेवाले अुदाहरण हैं जिनसे यह मालूम हुआ है कि हमारे परिवारोंमें बिलकुल छोटी अुमरकी लडकियोंको भी परिवारमें या पडोसमें रहनेवाले पुरुषोंसे भयभीत रहना पडता है।

हमारे समाजने पुरुषकी कुचालको बहुत बुरा नहीं माना अुसका कडा तिरस्कार नहीं किया। लेकिन किसी स्त्री या लडकी पर बिलकुल साफ बलात्कार किया गया हो तो भी समाज अन्दर ही अन्दर अुसकी अितनी बदनामी फैला सकता है कि लडकियोंको अपने पर होनेवाले बलात्कारकी बातें अिस तरह छिपाकर रखनी पड़ती है कि अुनके घरके लोगोंको भी अुनका पता नहीं चलता। कभी जानते भी हैं तो अैसी बदनामीके डरसे घरके सब जिम्मेदार लोग अेका करके अुस बातको दबा देते हैं। बहुत हुआ तो कोओी दूसरे बहानेसे अुस आदमीको घरसे दूर रखनेकी कार्रवाओी की जाती है या स्त्री पर पहलेसे ज्यादा नियन्त्रण रखा जाता है। नतीजा यह होता है कि स्त्रीको अपने आप्तजनोंसे बलात्कारके खिलाफ जो संरक्षण मिलना चाहिये वह भी नहीं मिलता। लाज शरम और बदनामीके डरसे बलात्कारकी शिकार हुअी स्त्रीकी यह हिम्मत नहीं होती कि अपनी आपबीती किसीको सुनावे। और अिसलिअे वह जिन्दगी भर बुरे अनुभवोंको छिपाये रखनेका बोझ ढोती रहती है। पर बलात्कार करनेवाला पुरुष तो समाजमें निःसंकोच फिरता है। अुसे सभ्य माना

जाता है और सज्जनों जैसा आदरभाव भी मिलता है और वह शायद किसी दूसरी स्त्री पर भी कुदृष्टि डालता है।

मैं अेक विधवाको जानता हूं। विधवा होनेके बाद अुसका देवर अुसका गहना-गांठा लेकर चलता बना। अुस विधवाके अूपर अेक छोटे बच्चेका और खुद अपना पोषण करनेका भार आया। अुसने गांवमें अपने अेक जातिवालेके यहां बरतन-पानीका काम किया। अेक दिन अुस आदमीने अपनी पत्नीकी गैरहाजिरीमें अुस विधवा पर बलात्कार किया। अुसे गर्भ रहा। अब वह स्त्री बेचारी कहां रहे? कहां अपना मुंह दिखाये? अुसे लड़की हुअी। अिस लड़कीको कौन पाले-पोसे? बलात्कार करनेवाला आदमी तो निडर बनकर समाजमें घूमता है। लेकिन अिस स्त्रीका क्या हो? वह अगर आत्महत्या या बालहत्या न कर सके तब तो अुसे पंढरपुर या अैसे ही कोअी आश्रयस्थान खोजने रहे न?

मान लीजिये कि अिस व्यभिचारमें अुस स्त्रीकी भी सम्मति रही होगी मान लीजिये कि यह बात खयालमें रखकर ही विधवाको दूसरी शादी करनेकी छूट देनी चाहिये। लेकिन ये तो दूसरी ही दृष्टिके सवाल हुअे। असल चीज तो यह है कि सभ्य माने जानेवाले परिवारोंमें भी स्त्री निर्भय नहीं है। पुरुषकी साख अैसी नहीं है कि कोअी स्त्री अुस पर विश्वास रख सके।

और पुरुष क्या यह बात नहीं जानते? हम जानते हैं कि आम तौर पर स्त्रियां बड़ी अीर्ष्या करनेवाली होती हैं पतिके चाल चलन पर अुनका विश्वास कम रहता है। पुरुषकी शुद्ध रहनेकी शक्ति पर अविश्वास होनेके कारण और पुरुषके सामने अकसर अुसका कुछ बस न चलनेके कारण स्त्री अपनी जातिसे ही अीर्ष्या करती है। पर अिस अीर्ष्याकी जड़में तो असलमें पुरुषकी वफादारीके बारेमें अविश्वास ही है।

हमारे रोजके अनुभवमें जो बातें आती हैं अुन्हें देखते हुअे अैसा नहीं लगता कि स्त्रियोंका यह अविश्वास अकारण है। हमारे देशकी गालियों पर ध्यान दीजिये हमारे आम और रेलवेके पेशाबघरों और संडासोंकी

दीवारों पर लिखी बातें और भद्दे चित्र देखिये — कहीं भी आपको स्त्रीकी अिज्जत-आबरूके लिअे आदरकी भावना दिखाओी देती है? और अगर अैसा लगता हो कि यह निचले दरजेके लोगोंकी हालत है, तो हमारी कचहरियोंमें वकीलोंके कमरेमें बैठकर वहां चल रही बातें सुन लीजिये। स्त्री हर जगह भद्दे मजाकका ही विषय बनती है।

यह तो हम समझ सकते हैं कि क्या पुरुष और क्या स्त्री विकार सभीमें होते हैं। और यह भी समझा जा सकता है कि अुन्हें पूरी तरह मिटानेकी शक्ति जिनमें नहीं होती। अगर किसीकी यह भावना हो कि विषय-भोगमें पाप नहीं बल्कि वह भोग्य काम है तो यह भी समझमें आने लायक बात है। लेकिन अिसके मानी अगर यह हों कि किसी भी स्त्रीको देखते ही और चाहे जिस समय पुरुषके विकार जाग अुठें चाहे जिस स्त्रीके साथ वह बेअदबी करनेकी हिम्मत करे विश्वास या वफादारीकी सारी मर्यादाओंको भूलकर जिस घरमें वह रहता हो अुसी घरकी लड़कियों पर बुरी दृष्टि डाले तो यह अुसके घोर पतनकी निशानी है। जिस प्रजाको विषय-भोगमें अधर्मकी भावना न मालूम होती हो अुसमें भी वफादारीकी भावना तो बहुत गहरी होनी ही चाहिये।

लेकिन यह सवाल सिर्फ वफादारी या नैतिकताका नहीं है तालीम — आत्मसंयम — का भी है। किसी आदमीमें विकार जोरसे अुठें यह अेक बात है और अुसके कारण वह किसी स्त्री पर हाथ डाले या अुसका अपमान करे या अुसके बारेमें भद्दी बातें कहे यह दूसरी बात है। अपने पड़ोसीके घर मिठाअी देखकर मेरा अुसे खानेका मन हो यह अेक बात है और वहां जाकर मैं अुसे खा जाअूं या चुरा लाअूं यह दूसरी बात है। मिठाअी खानेकी अिच्छाको चाहे मैं न रोक सकूं लेकिन पड़ोसीके घर जाकर अुसे खा जाने या चुरानेका काम न करने जितना संयम तो मैं जरूर रख सकता हूं। अुसी तरह कोअी निर्विकार न रह सके यह अेक बात है और अपनी स्त्रीको छोड़कर दूसरी किसी स्त्रीको शरीर

या वाणीसे दूषित करे यह दूसरी बात है। जितना संयम भुसमें होना चाहिये समाजको भुसे सिखाना चाहिये और भुसका पालन भी करवा लेना चाहिये।

और जिस तरह जो स्त्रीका अदब नहीं रखा जाता, भुसके लिभे मेरे खयालसे जितने भुच्छृंखल या संयम न पालनेवाले पुरुष जिम्मेदार हैं भुतने ही सदाचारी जीवन बितानेवाले पुरुष भी जिम्मेदार हैं। भुच्छृंखल पुरुषोंको संयमी और सदाचारी बनाना भले संभव न हो लेकिन अगर प्रजाके सदाचारी भागका मत बलवान हो तो जितना तो हो ही सकता है कि वे अपनी अनीतिको अमलमें न ला सकें और अगर लायें तो वेश्याओंकी तरह वे भी सदाचारी लोगोंका आदर न पा सकें अपने समाजमें सभ्य पुरुषोंकी तरह किसीसे मिल न सकें। हमारे देशके लोगोंका यह खयाल है कि यूरोपका नैतिकताका आदर्श हमसे नीचा है। शायद अैसा हो भी। लेकिन यह बात भी विचारने जैसी है कि वहां स्त्रियां बिना किसी परेशानीके घरके जिस आजादीसे आधी रातको भी घूम-फिर सकती हैं वैसी हमारे यहां दिनमें भी नहीं घूम सकतीं। भुसका कारण सिर्फ जिस तरहकी तालीम ही है।

हमारे यहां कितनी ही अनीति (बुराभी) तो सदाचारी पुरुषोंकी कमजोरीके कारण चलती है। कोभी शिक्षक किसी विद्यार्थिनीके साथ अनुचित सम्बन्ध रखे तो विद्यार्थियोंमें भीतर ही भीतर भुसकी चर्चा चलती है शिक्षकोंमें बात होती है, लेकिन दोनोंमें से कोभी भी जिस बारेमें सचाभी जाननेकी या साफ-साफ अपना विरोध जाहिर करनेकी हिम्मत नहीं करता। अेक आदमी समाजमें गुरु या दूसरी तरहकी प्रतिष्ठा भोगता है। भुसके सम्बन्धमें जाननेवाले लोग जान लेते हैं कि भुसके पास आने-जानेमें भुनकी बहू-बेटियां सुरक्षित नहीं हैं। अैसा जानकर शायद वे भुससे अपना सम्बन्ध कम कर देते हैं लेकिन भुसके पापका भंडाफोड़ करनेकी बात तो दूर रही, वह अगर बहुधा घर कर भुनके घर आने लगे तो वे भुसका निरादर करनेकी भी हिम्मत

नहीं करते। किसी पुरुषका चाल-चलन हमें अच्छा नहीं लगता। लेकिन वह समाजका अेक नेता माना जाता है। हम अुसके चाल-चलनकी अुपेक्षा करते हैं और अुसे अपनी सभामें आनेका न्योता देते हैं अुसकी अिज्जत करते हैं और कअी तरहसे अुसका गौरव बढ़ाते हैं तथा जनताको भी वैसा करना सिखाते हैं। अुसके बारेमें हम खानगीमें जो राय जाहिर करते हैं, अुसके बजाय लोगोंके सामने दूसरी ही राय बतलाते हैं। मानो यदि अुसका अितना गौरव न बढ़ाया गया तो देशकी नाव ही डूब जायगी। अगर सदाचारी पुरुषोंको कमजोरी कम हो तो अुच्छृंखल पुरुषोंको अपनी अुच्छृंखलता पर काबू रखना ही पड़े।

समाजके विचारशील लोगोंका — और अिस बारेमें स्त्रियां भी दोषी हैं — दूसरा दोष अनीतिको आपसकी कुत्सित चर्चाका विषय बनाना है। यहां अेक बात याद रखनी चाहिये कि अैसी चर्चा तभी हो सकती है जब अुसके बारेमें हमें अनीति लगनेके साथ रस भी आता हो। कोअी पुरुष या स्त्री अपनी मां-बहन पर गुजरी हुअी बातकी अैसी कुत्सित चर्चा नहीं करते यदि कहीं होती हो तो वे दुःख या गुस्सेके बिना अुसे सुन नहीं सकते। अपनी मां-बहनकी निन्दा सुनते वक्त अुन्हें दुःख या गुस्सा अिसलिअे होता है कि वे अुनका आदर करते हैं अुन्हें अपने कुलका भी अभिमान होता है। अगर यही आदर और अभिमान हमें हरअेक स्त्रीकी अिज्जत-आबरूके लिअे हो तो किसीके पतन या अुस पर होनेवाले अत्याचारसे हमें दुःख होगा हम अुसकी आपसमें गन्दी चर्चा नहीं करेंगे। अैसी चर्चा या अत्याचार करनेवालेके दांत तोड़ डालनेकी अिच्छा हो यह समझमें आ सकता है लेकिन रसके साथ अुसकी चर्चा हो यह बड़े दुःखकी बात है। अिस बारेमें जैसा कि अूपर कहा गया है स्त्रियां भी दोषी हैं। और दुःखके साथ कहना पड़ता है कि ज्यों-ज्यों अुमर बढ़ती है त्यों-त्यों अिस तरहकी चर्चाका अुनका रस बढ़ता जाता है।

मैं जानता हूं कि कोअी यह कहेंगे कि दूसरी जातियोंके बनिस्बत हिन्दू जातिमें नैतिकताकी भावना ज्यादा है और मुसलमानके बनिस्बत

हिन्दू पुरुष स्त्रीके लिअे कम भयावह है। मैं कबूल करता हूं कि हिन्दू जातिमें ज्यादा नैतिकता होगी, लेकिन यह तो नहीं कहा जा सकता कि अुसमें यह सन्तोषजनक हद तक पहुंची है। और यह भी नहीं कहा जा सकता कि यह नैतिकता स्त्री-जातिके प्रति रहनेवाले आदरके कारण है। मुसलमानोंके बारेमें कही गयी बात सच है और अुससे दुःख होता है। यह हिन्दू-मुसलमानोंके बीचके वैरका अेक कारण ही बनी हुअी है। लेकिन हिन्दू स्त्री हिन्दू समाजमें निर्भय है और सिर्फ मुसलमानोंका ही अुसे भय है यह नहीं कहा जा सकता। वैसे ही खानदानी मुसलमानोंके बारेमें अूपरकी बात सच नहीं है।

प्रस्थान १९२७

२

नौजवान और शादी*

नौजवानोंके मंडलोंमें आज जिस विषयकी सबसे ज्यादा चर्चा चलती है वह शादीका है। शादीके बारेमें आज दो रिवाज हमारा ध्यान खींचते हैं। अेक है जाति-बन्धनका और दूसरा है वर-विक्रय कन्याविक्रय दहेज हुंडा और जातिभाजके नाम पर कन्या या वरपक्ष पर पड़नेवाले आर्थिक बोझका।

अिन दोमें से जातिके बन्धनोंको तोड़नेकी जरूरतके बारेमें जितनी चर्चा आप लोगोंमें चलती मैं सुनता हूं अुतनी आर्थिक बोझ डालनेवाले रिवाजोंकी चर्चा होती नहीं सुनता।

अिसका कारण यह है कि जातिके बन्धन तोड़नेके बारेमें चर्चा या हलचल करनेका आपमें जो अुत्साह पैदा होता है वह स्वच्छंदी भावोंसे

* सूरतमें युवक-सप्ताहके मौके पर ता० ४-१-२८ को दिये हुअे 'युवक और समाज' नामक भाषणमें से।

प्रेरित होता है। अुसके पीछे आपके दिलकी गहराअीमें यह अिच्छा रही होती है कि आपको अपनी शादीके लिअे ज्यादा बड़ा क्षेत्र मिले। साथ ही यह भी संभव है कि प्रेम-विवाहके खयाल भी आपके मनोरथोंका अेक भाग हों और वे भी आपको समाजके अिस रिवाजके खिलाफ आन्दोलन करनेकी प्रेरणा देते हों।

शादीके मामलेमें जातिके बन्धन ढीले करनेकी आवश्यकताके बारेमें कोअी शक ही नहीं हो सकता। अिसलिअे अपना सुख खोजनेकी भावनासे प्ररित होकर आप अिस दिशामें हलचल करें तो सिर्फ अिसी कारण अुस पर कोअी अिलजाम नहीं लगाया जा सकता। लेकिन चूंकि अिस मामलमें आपका स्वाथ है आपसे समाज और विजातिके प्रति आदरकी विनयकी मर्यादाकी और सकोचकी अेक खास तरहकी अपेक्षा रखी जाती है। अगर जाति-बन्धन तोड़नेकी बात आप समाज और विजातिके लिअे आदरकी भावना रखे विना छेड़ें तो आप समाज या विजातिको अूंचा नहीं अुठायेंगे बल्कि अेक हलका आदर्श पेश करेंगे।

आप लोगोंमें किस तरहका आदर विनय मर्यादा और सकोच होना चाहिये अिसे मैं साफ शब्दोंमें बता दू।

जातिके बन्धन बरे हैं और अुन्हें तोड़ना चाहिये और शादी आपकी अपनी पसन्दसे ही होनी चाहिये अैसे विचार तो आपके मनमें जम गये हों लेकिन समाज और विजातिके लिअे आपके दिलमें आदर न हो, तो आप समाजमें विकारभरी दृष्टिसे घूमेंगे। आप जाति-बन्धनकी परवाह न करें और अपनी पसन्दसे ही शादी करनेका आपका निश्चय हो तो भी अुसका यह मतलब नहीं — न होना चाहिये — कि अपनेसे भिन्न जातिके व्यक्तिको आप विकारी दृष्टिसे देखते फिरें या अुसके साथ परिचय होते ही — अिस बातका विचार किये बिना कि कैसे सयोगों और सम्बन्धोंमें यह परिचय हुआ है — परस्पार

रखनेकी बातको दिलमें जगह दें। जिस तरह जानवर ऋतुकालमें अपनेसे भिन्न जातिके जानवरको कामुक दृष्टिसे ही देखते हैं, अुसी तरह *अगर आप अपनेसे भिन्न जातिके व्यक्तिको विकारभरी निगाहसे* ही देखते फिरें, या असलमें सरल दृष्टि हो परन्तु अुसे विकारी बनने दें तो यह कहा जायगा कि आप अिन विचार और अपने स्वत्वकी भावोंको अविवेकके रास्ते ले गये हैं। अुदाहरणके लिअे अगर कोअी शिक्षक विद्यार्थीके नाते अपने सम्पर्कमें आनेवाली लड़कीके साथ या कोअी विद्यार्थी अपने साथ पढ़नेवाली लड़कीके साथ बाप-बेटी या भाअी-बहनके अलावा दूसरा कोअी सम्बन्ध हो सकनेके विचारको अपने दिलमें जगह दे, तो वह समाजका द्रोह करता है अपनसे भिन्न जातिका अनादर करता है और जिस व्यक्तिके सम्बन्धमें अैसा विचार रखता है, अुसके और अुसके सगे-सम्बन्धियोंके साथ विश्वासघात करता है।

विजाति आपसे बिलकुल सुरक्षित रहे, आपकी निगाहसे भी अुसे डरनेका कारण न रह जाय — *जितनी नम्रता,* संकोच और आदरके साथ आप समाजमें न बरतें तो आप समाजको तरक्कीके रास्ते नहीं ले जा सकते, और जीवनको दबाकर रखनेवाले बन्धनोंमें से समाजको मुक्त करनके आपके विचार जिस तरह सफल नहीं होंगे कि आप अुसे सुखी बना सकें। अिसलिअे आपको अिस तरहका अभयदान समाजको देना ही चाहिये। अिसीमें समाजकी रक्षा है और आप लोगोंकी कुलीनता व सुज्जनता है।

लेकिन अगर आपका विचार विवाहित जीवन बितानेका हो *जातिके बन्धन तोड़नेकी आपकी अिच्छा हो और अपनी पसन्दसे* आप अपना साथी खोजना चाहते हों तो आपको क्या करना चाहिये — यह सवाल आपको पूछने जैसा लगेगा।

अिस सम्बन्धमें गांधीजीने अपने दूसरे लड़केकी शादी करते समय जो रास्ता अख्तियार किया था अुससे आपको शिक्षा मिल सकती है।

विसलिये मैं यहां अुसका विस्तारसे वर्णन करता हूं। गांधीजीके पुत्रने अुन्हें बताया कि अुसकी अिच्छा किसी भी तरह जल्दी शादी करनेकी है और अिस बारेमें अुसने गांधीजीकी मदद और राय मांगी। गांधीजीने दोनों बातें मंजूर कीं और जाति-बन्धन तोड़कर शादी करनेका निश्चय किया। अुन्होंने खोज की और अेक लड़की अुन्हें पसन्द करने जैसी लगी। लेकिन वह शादी करनेके लिअे राजी नहीं थी। दूसरी लड़की पसन्द की। वह विवाहित जीवन बिताना चाहती थी। गांधीजीने अपनी स्वाभाविक सरलतासे अपने लड़केके गुण और दोष लड़की और अुसके मां-बापको बताये और अुन्हें विचार करनेके लिअे कहा। गांधीजीने अुस लड़कीके गुण-दोष अपने पुत्रको लिख भेजे और अपनी तरफसे अुसकी सिफारिश की। लड़कीके शरीरमें अेक दोष था। अेक मित्रने गांधीजीको सुझाया कि अुन्हें लड़के-लड़कीको मिला देना चाहिये दोनोंका अेक-दूसरेके साथ परिचय होने देना चाहिये और यह देखना चाहिये कि लड़का लड़कीके शारीरिक दोषको निभा लेनेके लिअे कहां तक तैयार है और परिचय हो जानेके बाद दोनों अेक-दूसरेके साथ शादी करनेके लिअे राजी होते हैं या नहीं।

गांधीजीको यह सुझाव पसन्द नहीं आया। अुन्होंने कहा 'मुझे यह तरीका ठीक नहीं लगता। आज ये दोनों शादी करनेके लिअे अुतावले हैं। अिनकी दृष्टि आज मोहसे अंधी हुअी मानी जायगी। ये दोनों मिलकर हां कहें तो भी यह नहीं कहा जा सकता कि अुन्होंने सोच-विचारकर हां कहा है। अुनके मुंहसे ना' निकल सके अैसे जितने भी कारण हो सकते थे सब दोनोंको साफ-साफ समझा दिये गये हैं। जिन स्त्री-पुरुषोंमें विषय-भोगकी अिच्छा पैदा हुअी है वे अेक-दूसरेको सकाम दृष्टिसे देखनेके लिअे ही अिस तरह मिलें और अैसी दृष्टि अेक बार रखनेके बाद शादी करने या न करनेका फैसला करनेकी छूट लेना चाहें यह मुझे अुचित नहीं

रखनेकी बातको दिलमें जगह दें। जिस तरह जानवर ऋतुकालमें अपनेसे भिन्न जातिके जानवरको कामुक दृष्टिसे ही देखते हैं, मुसी तरह अगर आप अपनेसे भिन्न जातिके व्यक्तिको विकारभरी निगाहसे ही देखते फिरें, या असलमें सरल दृष्टि हो परन्तु मुसे विकारी बनने दें तो यह कहा जायगा कि आप अिस विचार और अपने स्वच्छंदी भावोंको अविवेकके रास्ते ले गये हैं। मुदाहरणके लिअे अगर कोअी शिक्षक विद्यार्थीके नाते अपने सम्पर्कमें आनेवाली लड़कीके साथ या कोअी विद्यार्थी अपने साथ पढ़नेवाली लड़कीके साथ बाप-बेटी या भाअी-बहनके अलावा दूसरा कोअी सम्बन्ध हो सकनेके विचारको अपने दिलमें जगह दे तो वह समाजका द्रोह करता है, अपनेसे भिन्न जातिका अनादर करता है और जिस व्यक्तिके सम्बन्धमें अैसा विचार रखता है, अुसके और अुसके सगे-सम्बन्धियोंके साथ विश्वासघात करता है।

विजाति आपसे बिलकुल सुरक्षित रहे, आपकी निगाहसे भी मुसे डरनेका कारण न रह जाय — अितनी नम्रता संकोच और आदरके साथ आप समाजमें न बरतें तो आप समाजका तरक्कीका रास्ता नहीं ले जा सकते और जीवनको दबाकर रखनेवाले बन्धनोंमें से समाजको मुक्त करनेके आपके विचार अिस तरह सफल नहीं होंगे कि आप अुसे सुखी बना सकें। अिसलिअे आपको अिस तरहका अभयदान समाजको देना ही चाहिये। अिसीमें समाजकी रक्षा है और आप लोगोंकी कुलीनता व सज्जनता है।

लेकिन अगर आपका विचार विवाहित जीवन बितानेका हो जातिके बन्धन तोड़नेकी आपकी अिच्छा हो और अपनी पसन्दसे आप अपना साथी खोजना चाहते हों तो आपको क्या करना चाहिये — यह सवाल आपको पूछने जैसा लगेगा।

अिस सम्बन्धमें गांधीजीने अपने दूसरे लड़केकी शादी करते समय जो रास्ता अख्तियार किया था मुससे आपको शिक्षा मिल सकती है।

अिसलिअे मैं यहां अुसका विस्तारसे वर्णन करता हूं। गांधीजीके पुत्रने अुन्हें बताया कि अुसकी अिच्छा किसी भी तरह जल्दी शादी करनेकी है, और अिस बारेमें अुसने गांधीजीकी मदद और राय मांगी। गांधीजीने दोनों बातें मंजूर कीं और जाति-बन्धन तोड़कर शादी करनेका निश्चय किया। अुन्होंने खोज की और अेक लड़की अुन्हें पसन्द करने जैसी लगी। लेकिन वह शादी करनेके लिअे राजी नहीं थी। दूसरी लड़की पसन्द की। वह विवाहित जीवन बिताना चाहती थी। गांधीजीने अपनी स्वाभाविक सरलतासे अपने लड़केके गुण और दोष लड़की और अुसके मां-बापको बताये और अुन्हें विचार करनेके लिअे कहा। गांधीजीने अुस लड़कीके गुण-दोष अपने पुत्रको लिख भेजे और अपनी तरफसे अुसकी सिफारिश की। लड़कीके शरीरमें अेक दोष था। अेक मित्रने गांधीजीको सुझाया कि अुन्हें लड़के-लड़कीको मिला देना चाहिये दोनोंका अेक-दूसरेके साथ परिचय होने देना चाहिये और यह देखना चाहिये कि लड़का लड़कीके शारीरिक दोषको निभा लेनेके लिअे कहां तक तैयार है और परिचय हो जानेके बाद दोनों अेक-दूसरेके साथ शादी करनेके लिअे राजी होते हैं या नहीं।

गांधीजीको यह सुझाव पसन्द नहीं आया। अुन्होंने कहा मुझे यह तरीका ठीक नहीं लगता। आज ये दोनों शादी करनेके लिअे अुतावले हैं। अिनकी दृष्टि आज मोहसे अंधी हुअी मानी जायगी। ये दोनों मिलकर हां कहें तो भी यह नहीं कहा जा सकता कि अुन्होंने सोच-विचारकर हां कहा है। अुनके मुंहसे ना निकल सके अैसे जितने भी कारण हो सकते थे सब दोनोंको साफ-साफ समझा दिये गये हैं। जिन स्त्री-पुरुषोंमें विषय-भोगकी अिच्छा पैदा हुअी है वे अेक-दूसरेको सकाम दृष्टिसे देखनेके लिअे ही अिस तरह मिलें और अैसी दृष्टि अेक बार रखनेके बाद शादी करने या न करनेका फैसला करनेकी छूट लेना चाहें यह मुझे अुचित नहीं

मालूम होता। अिसमें समाजकी और खासकर स्त्री-जातिकी रक्षा नहीं है। यह समाजको अपवित्र बनानेवाली चीज है।"*

* ज्यादा अनुभव और विचारसे मालूम होता है कि गांधीजीके शब्दों द्वारा सूचित होनेवाला साथी खोजनेका नियम हमेशा सख्तीसे पालना संभव नहीं है। कच्ची अुमरमें यानी जहां पर पच्चीस बरसके भीतरका शादी करनेकी अिच्छा रखनेवाला युवक हो और कन्या बीससे कम अुमरकी हो और दोनों अैसे संस्कारवाले हों कि अपने बड़े-बूढ़ोंके मार्फत ही अपना जीवन-साथी ढूंढ़ सकते हों वहां तक तो यह नियम ठीक है। लेकिन वहां भी अुनकी राय मिलनेके पहले अेक-दूसरेको देखनेका भी मौका न देना आजके जमानेमें संभव नहीं मालूम होता। जहां दोनोंकी विवाहके योग्य अुमर हो दोनों शिक्षा वगैरा पाकर किसी धन्धेमें लग चुके हों और बादमें प्रेम हो जानेके कारण नहीं बल्कि अकेले पड़ जानेके कारण योग्य साथीकी खोज करते-कराते हों वहां तो दोनोंका अेक-दूसरको देख-मिलकर और अपने-अपने विचारों कल्पनाओं भावनाओं आदर्श वगैराका आदान-प्रदान करके अपना फैसला करनेकी सुविधा दिये बिना काम चल ही नहीं सकता। लेकिन यह मान लेनेकी भी जरूरत नहीं है कि काफी देख-परख और सोच-विचारके बाद अपनी शादी तय करनेवाले युवक-युवती बहुत समझदारीसे ही अिस निर्णय पर आ जायेंगे। कभी बार अैसा भी होता है कि बहुत दिनोंकी पहचानके बाद अनेक कन्याओं या वरोंको नापसन्द करनेवाले युवक-युवतियां भी अेक-दो घण्टेमें ही अेक-दूसरेको पसन्द कर लेते हैं और बहुत दिनोंके परिचयके बाद पसन्दगी करनेवाले भी शादी करनेके थोड़े दिन बाद ही पछताने लगते हैं और कलह करने लगते हैं। शादी चाहे मा-बाप तय करें, ज्योतिषी दोनोंकी कुण्डलियां देखकर तय करें युवक-युवती अेक-दूसरेके प्रेममें पड़कर तय करें विषय-भोगकी अिच्छासे तय करें, या व्यवहारकी दृष्टिसे जांच-

मैं चाहता हूं कि समाजकी और स्त्री-जातिकी पवित्रताकी रक्षाके लिये अिस आग्रहको आप लोग ठीक-ठीक समझें। खास करके पुरुषोंको ध्यानमें रखकर मैं यह बात कहता हू। आज आप अेक युवतीको अपनी पत्नी बनानेकी दृष्टिसे देखें थोड़े दिन तक यह दृष्टि अुसके प्रति रखकर अपना मन अुसकी तरफसे खींच लें और दूसरी किसी युवतीको अिसी दृष्टिसे देखें — तो यह व्यभिचारकी दृष्टि है। मैं जानता हू कि सुधरे हुओ समाजमें अैसा व्यभिचार चलता है और अिसमें अेक तरहकी हिम्मत भी मानी जाती है। लेकिन अिसमें आप अपने स्वच्छंदी भावोंके वेगको अयोग्य रास्ते ले जाते हैं। अिसमें न आपका हित है न समाजका और स्त्री-जाति बड़े डरमें रहती है।

अगर आपको अैसा लगे कि शादी किये बिना आप सन्तोषी जीवन नहीं बिता सकते और शादी करनेमें आप जातिके ही बन्धनोंमें नहीं बंधे रहना चाहते, तो आपके लिअे सबसे सीधा रास्ता यह होगा कि आप अपने विचारोंको जाननेवाले किसी मित्रके मार्फत अिस दिशामें कोशिश करें। अगर आपमें कामवासना जोरोंसे पैदा हुअी होगी तो आपका प्रेम विवाह करनेका खयाल सिर्फ मोह-स्वप्न बन जायगा।

पड़ताल करके और नफा-नुकसानका हिसाब लगाकर तय करें अेकके बारेमें भी यह नहीं कहा जा सकता कि वह वर-कन्या दोनोंको हर तरहसे सन्तोष देनेवाली ही साबित होगी। यह तो आगेके अनुभव परसे ही मालूम हो सकता है। पर बड़ी अुमरके स्त्री-पुरुषोंकी शादीमें दोनोंकी सम्मति अनिवार्य समझनी चाहिये और सम्मति या असम्मतिका निर्णय करनेके लिअे बड़े-बूढ़ोंको अुन्हें योग्य सुविधा देनी चाहिये। यह शादी सुखदायी न साबित हो तो भी बड़े-बूढ़ों पर यह अिल्जाम तो नहीं आयेगा कि मां-बापने हमें कुअेंमें डाल दिया। वर-कन्याको अपना फैसला खुद करनेकी सुविधा देनेसे मां-बापको अितना लाभ जरूर होगा। (जनवरी १९४८)

यह सच है कि आपके मित्रोंकी पसन्दगी भूलभरी हो सकती है। अिसलिअे अुनकी पसन्दगीको माननेके लिअे आप बंधे हुअे नहीं हैं। अिसके लिअे आप अपना साथी बननेकी अिच्छा रखनेवाले व्यक्तिकी योग्यताके बारेमें मर्यादामें रहकर जांच भी करा सकते हैं। लेकिन यह जांच — जैसा कि आजकल कभी जगह चल रहा है — अगर कन्याको घर बुलाकर अुसके साथ बातें या हंसी-मजाक करनेकी कोशिश करके अुससे चाय-दूध तैयार करवाकर अुसके साथ थोड़े दिन घूमने-फिरने जाकर या अैसे ही दूसरे तरीकोंसे की जाय तो यह बेहूदी बात है। अिसमें स्त्रियोंकी और अुनके मित्रोंकी विडम्बना है। योग्यताका पता लगानेकी दृष्टिसे अिस तरहकी जांच कोअी कीमत नहीं रखती।

आप लोग समाजमें अैसा संस्कार दृढ़ कीजिये जिससे शादीके पहले कुलीन पुरुष या स्त्री अपनेसे भिन्न जातिके व्यक्तिकी तरफ शुद्ध और निर्मल दृष्टिसे ही देख सकें। यह भावना अपनेमें मजबूत बनाअिये कि शादी करनेके बाद अपने जीवन-साथीके प्रति आपको वफादार रहना ही चाहिये। अपने शरीरके बारेमें आप पवित्रताकी अैसी भावना बढ़ाअिये जिससे आप अुसे दूसरेके संसर्गसे दूषित न कर सकें। और अपने साथीके प्रति वफादारीकी अैसी भावना रखिये कि अुसे आपका दूसरेके संसर्गसे अदूषित रहा हुआ शरीर ही प्राप्त करनेका अधिकार है। अगर आपकी वासनायें बहुत बलवान हों और अेकपतिव्रत या अेकपत्नीव्रत पालना आपको संभव न लगे तो भले आप अपने साथीके मरनेके बाद दूसरी शादी करनेकी छूट रखें। अगर आपको अैसा लगता हो कि आपके और आपके साथीके स्वभावके बीच मेल बैठ ही नहीं सकता तो आप भले तलाकका अैसा कौमी रिवाज दाखिल करें, जो दोनोंके लिअे न्यायोचित हो। लेकिन जब तक आप पति-पत्नीके रूपमें साथ-साथ रहते हैं तब तक आपको अेक-दूसरेकी वफादारीके लिअे बहुत ज्यादा आग्रह रखना चाहिये। अिससे आपके स्वभावकी वेग मर्यादित रहेंगे वे दिनोंदिन शुद्ध बनेंगे और समाज अिससे निर्भय और पवित्र बनेगा।

बम्बअीके अखबारोंमें हम रोज बदमाश्योंके समाचार पढ़ते हैं। स्त्रियों पर होनेवाले जुल्मोंकी बातें भी लगभग रोज सुनमें आती हैं। विधवाओंको समाजमें मुश्किल हालतोंमें डालनके अुदाहरण भी हम जानते हैं। हमारे सभ्य माने जानेवाले समाजमें किसी न किसीकी खानगी निन्दा होती हममें से हरअेकने सुनी है। अिस रानीपरज लोगोंके प्रदेशमें जगह जगह रानीपरज स्त्रियोंको छला जाता है। विदेशोंमें रहनेवाले पुरुषोंमें से बहुतसे अनीतिमय जीवन बिताते हैं। अैसा हर देशमें चलता है अिसका आप विचार करें।

शादीके ही बारेमें आप परलक्षी भावोंसे प्रेरित होकर समाजके जिन अनुचित रिवाजोंका विरोध कर सकते हैं अुनमें अेक दहेजका है। गुजरातकी दो-चार जातियोंको छोड़कर सारे हिन्दुस्तानमें कन्या अपने मां-बापके लिअे भारी चिन्ता और अनर्थका कारण बन जाती है। शादीके समय वरको दहेजकी भारी रकम देने और कुछ जगहों पर अुसके बाद जन्मभर कन्याको पालनेकी जिम्मेदारी मां-बाप पर समाजके बुरे रिवाजके जरिये लाद दी गअी है। शादीकी अपनी चर्चाओंमें आप अिस रिवाज पर बहुत विचार करते नहीं मालूम होते। बनिया जातियोंमें होनेवाले कन्या विक्रयके बारेमें आप बहुत विचार नहीं करते। नौजवान अगर अिरादा कर लें तो पांच-दस सालमें अिन बुरे रिवाजोंको जड़से मिटा सकते हैं। अिसमें आप समाजका अपनी पूरी ताकतसे विरोध कर सकते हैं। अगर आप खुद पैसा देकर या लेकर अिस रिवाजके वश न होनेका पक्का निश्चय कर लें तो यह लम्बे समय तक नहीं टिक सकता।

जो नया जमाना आता जा रहा है अुसमें नौजवान स्त्री-पुरुषोंके बीचका सहवास और सम्पर्क बढ़ता जायगा। मां बहन या बेटीके साथ भी अेकान्तमें नहीं बैठना चाहिये — अिस पुरानी मर्यादाका पालन नहीं किया जा सकेगा। बहुतसे काम पुरुषों और स्त्रियोंको साथ मिलकर करने पड़ेंगे। अेक-दूसरेके साथ निकट परिचयमें रहना होगा। समाजकी अिस दिशामें गति अुसकी अुन्नति करनेवाली हो, अुससे समाजका या व्यक्तिका नैतिक

अधःपात न हो — जिसका आधार जिस बात पर रहेगा कि आप लोग कितनी पवित्र दृष्टि रखकर समाजमें रहते हैं अपने स्वजनों भावोंको कितने संकोच विनय और मर्यादासे पोसते हैं और समाज तथा अपनेसे भिन्न जातिके व्यक्तिके लिये अपने मनमें कितना आदर रखते हैं।

नैतिक दृष्टिसे भूल होने जैसा मालूम हो जाय तो समाजकी पवित्रताके लिये सावधानी रखनेवाला आदमी कैसा बरताव करे, जिसका अुदाहरण हमें स्वर्गीय दयाराम गीडुमलमें देखनेको मिलता है। श्रीमती अुमिलादेवी और समाजके साथ अुन्होंने जैसा बरताव किया अुसमें हमें अुनकी साधुता और कुलीनता दिखाओ देती है।* अुसमें

---

* श्री दयाराम गीडुमलका किस्सा लोग भूल गये होंगे, जिसलिये जिस अुल्लेखको समझनेके लिये थोड़ेमें अुसे यहां देना ठीक होगा। ये सज्जन अूंचे ओहदे पर काम करनेवाले अेक सरकारी नौकर थे। और निवृत्त होनेके बाद बम्बअीके सामाजिक कामोंमें अगुआ बनकर भाग लेते थे। सोशियल सर्विस लीग कायम करनेमें अुनका खास हाथ था और अुनकी मददसे श्री अुमिलादेवी वह संस्था चलाती थीं। अुनकी सज्जनता और चरित्रके लिये बम्बअीकी जनतामें बड़ा आदर था।

अेक दिन बम्बअीके अखबारोंने जाहिर किया कि श्री दयाराम गीडुमलने सिविल-विधिके अनुसार श्री अुमिलादेवीसे शादी की है। अुनकी पहली पत्नी अभी जीवित थीं। जिससे कुदरती तौर पर जिस खबरसे जनतामें बड़ी खलबली मची और दोनोंकी काफी निन्दा हुअी। दोनोंकी जिन्दगी भरकी जिज्जत धूलमें मिल गअी। जितना ही नहीं जिससे जनताके मनमें सामाजिक संस्थाओंके लिये भी अनादर पैदा हो गया।

जिसके बाद श्री दयाराम गीडुमल सारे सामाजिक कामोंसे जिस्तीफा देकर बिलकुल अलग हो गये। जितना ही नहीं, अुसके बाद बम्बअीके अेक अुपनगरमें रहते हुअे भी वे मानो प्रायश्चित्तके

समाज और स्त्री-जाति दोनोंके प्रति आदरकी भावना मालूम होती है। अिससे भुल्टा प्रसिद्ध भुदाहरण विश्वामित्रका है। भुन्होंने जिस तरह मेनकासे सम्बन्ध किया और बादमें जिस तरह मेनका और शकुन्तलाका त्याग किया, भुन दोनोंमें अपने बरतावोंसे पैदा होनेवाली जिम्मेदारीकी अुपेक्षा करके सिर्फ अपने स्वच्छंदी भावोंका अमर्यादित पोषण किया था। विश्वामित्रके जैसा आचरण हम दुनियामें रोज-रोज और जगह-जगह होता सुनते हैं। अुसका नतीजा क्वारी लड़कियों विधवाओं बच्चों और अनाथाश्रमोंको भोगना पड़ता है। अैसी कथा है कि विश्वामित्र राजर्षिसे ब्रह्मर्षिके पद पर पहुंचे थ। लेकिन यह कथा स्वार्थी भावोंके पोषणमें ही अमर्यादित कर्तृत्व लगा देनेका अुदाहरण है। अिसमें किसी तरहकी समाज-कल्याणकी किसी दूसरेको सुखी करनेकी भावनाकी प्रेरणा मालूम नहीं होती।

शादीके बारेमें नौजवानोंके मजलोंमें बहुत ज्यादा चर्चा होते मैं सुनता हूं। अिसलिअे मने अिस विषयकी अितन विस्तारसे चर्चा की है। विसके लिअे आप मुझे क्षमा करेंगे।

प्रस्थान १९२८

रूपमें अेक कोनेमें रहनवाली विधवाकी तरह अेकान्तवासमें रहे और अिसका शोक पाला। वे गांधीजीसे भी बड़े सकोचसे मिले।

श्री भूमिलादेवीकी प्रसूतिकालमें मौत हो गअी। भुनके बालकको भुनके माता-पिताने बड़ा किया। लेकिन वह २०-२२ की भुमरमें मर गया।

श्री दयाराम गीडूमलको भी मरे अब लगभग २५ साल हो चुके होंगे।

(जनवरी, १९४८)

३

ब्रह्मचर्यकी साधना

[गुजरात महाविद्यालयके स्नेहसम्मेलनके मौके पर किशोरलालभाईसे अेक यह सवाल भी पूछा गया था : जवान विद्यार्थी ब्रह्मचर्यका ठीक-ठीक पालन कर सकें अिसके लिअे आज शालाओंको क्या क्या करना चाहिये? अुसका अुन्होंने जो जवाब दिया था, वह नीचे दिया जाता है। —प्रकाशक]

यह याद रखना चाहिये कि ब्रह्मचर्यका भंग मानसिक और शारीरिक दोनों प्रकारके विकारोंका परिणाम है। वह पहले मानसिक होता है और बादमें शारीरिक हो जाता है।

किसी अिन्द्रियको लम्बे समय तक अेक ही तरहके कामका अभ्यास कराया जाय तो अुसे देखे जा सकनेवाले प्रयासके बिना भी धीरे-धीरे अुसी तरहका काम करनेकी आदत हो जाती है। अैसा अभ्यास करनेसे टाअिपिस्टोंकी अंगुलियां बिना देखे टाअिप किये ही जाती हैं, गवैयोंके हाथ ताल देते ही जाते हैं। नींदमें और सन्निपातमें भी अिस प्रकार पक्की बनी हुआी आदतोंकी क्रियायें देखी जाती हैं।

अुसी तरह लम्बे समय तक अब्रह्मचर्यके रास्ते लगे हुअे विद्यार्थीकी विषयेन्द्रियको जाग्रत हो जानेकी अैसी आदत पड़ जाती है कि स्पष्ट प्रयासके बिना ही नहीं बल्कि अिच्छाके खिलाफ और बेबसीसे अुससे ब्रह्मचर्यमें दोष पैदा होते ही रहते हैं। अैसा दुःखद अनुभव है कि सम्मानसे सुनी हुआी ब्रह्मचर्यकी महिमा भी अुसमें बिनचाहा वीर्यदोष पैदा करती है। स्नायुओंको पड़े हुअे अिस अभ्यासका — जो शारीरिक विकार है — मानसिक विकारसे अलग विचार किया जाना चाहिये।

अिसके लिअे अेक तो विद्यार्थीको खुद यह ध्यान रखना चाहिये कि पेटके निचले भाग पर कभी बहुत बोझ न बढ़ जाय, शिक्षक भी अिसका ध्यान रखें। अैसा अनुभव है कि टट्टी-पेशाबकी हाजतको रोक रखनेसे विषयेन्द्रिय जाग्रत होती है। रातमें अुठनेकी आलसके कारण बहुतेरोंको लम्बे समय तक पेशाब रोकनेकी आदत होती है। अिसका नतीजा वीर्य पर बुरा होता है। अिसका अेक अुपाय तो यह है कि अेकसे दोके बीच विद्यार्थीको अुठाकर पेशाबके लिअे ले जाया जाय, या कोअी अैसी चीजका सेवन किया जाय जिससे रातमें पेशाबकी हाजत न हो। सोते समय दो-तीन बादाम खानेसे बहुत करके रातमें अुठना नहीं पड़ता। लेकिन यह अुपाय सबके लिअे कारगर हो सकता है या नहीं यह देखना होगा।

अब्रह्मचर्यमें से ब्रह्मचर्य पालनेका प्रयत्न करनेवालेको खुराकमें खुदको जो चीज प्रतिकूल मालूम हुअी हो अुसे छोड़ देना चाहिये। संभव है कि जो अब्रह्मचर्यके दोषमें पड़ा ही न हो अुसके लिअे यह खुराक नुकसानदेह न भी साबित हो। अिसलिअे में यह कहनेको तो तैयार नहीं कि सामान्यतः ली जानेवाली खुराकमें से अमुक चीज ही अब्रह्मचर्य करनेवाली है। लेकिन जो अिस दोषका शिकार बन चुका है अुसे खुराकके बारेमें कमसे कम कुछ समय तक तो सावधानी रखनी ही पड़ती है। कौनसी खुराक किसके लिअे प्रतिकूल है यह हरअेकको अपने लिअे तय करना चाहिये। मुझे रातके समय खीचड़ीका भोजन या सोते समय गरम-गरम दूध अुत्तेजक मालूम होते थे। अेकादशीके दिन व्रत रखनेके लिअे मन तैयार हो तो भी रातमें मूंगफली जैसी चीजका फलाहार अुत्तेजक मालूम होता था। अगर दूसरे किसीका यह अनुभव हो तो वह अिससे लाभ अुठावे।

लेकिन आज मुझे रातमें खीचड़ी खाने या गरम दूध पीनेसे वीर्य-दोषका अितना डर नहीं लगता। पर यह खुराक मेरे लिअे कुपथ्य होनेके कारण दमका डर रहता है। मतलब यह कि जिसके लिअे

जो खुराक कुपथ्य हो अुसमें — अगर अुसका मन विकारसे भरा हो — वह वीर्यदोष पैदा करेगी और शायद दूसरे दोष भी पैदा करे। लेकिन अगर अुसका मन विकारोंका सामना करनेके लिअे थोड़ा मजबूत बन चुका हो तो वह खुराक दूसरे दोष चाहे पैदा करे लेकिन वीर्यदोष न भी पैदा करे। मतलब यह कि अगर मन विकारोंकी तरफ झुका हुआ रहता हो तो खुराकका असर विशेष रूपसे वीर्यदोष पैदा करनेवाला होता है अैसी मेरी राय है। असलिअे जब तक मनको विकारोंके साथ जोरोंसे संघर्ष करना पड़ता है तब तक खुराकके बारेमें सावधानी रखनी चाहिये।

दूसरी तरफ जो चीज वीर्यको गाढ़ा बनानेवाली या स्नायुओंको ढीला रखनेवाली हो वह छोड़ने लायक नहीं है। लेकिन अिसके लिअे दवाओंके विज्ञापन हमारे सलाहकार नहीं बनने चाहियें। दूधके साथ थोड़ा जायफल लेनेसे मुझे हमेशा अच्छा अनुभव हुआ है। कहा जाता है कि जायफलमें वीर्यको गाढ़ा करनेका गुण है अुसके लेनेसे नींद भी अच्छी आती है। विद्यार्थीको नींदकी जरूरत होती है और बहुत बार कोशिश करने पर भी सो न सकनेवाला विद्यार्थी अब्रह्मचर्यका दोष करके ढीला बनकर सो जाता है अैसा अनुभव है। अिसलिअे जिस अुपायसे झट गहरी नींद आ जाय, वह ब्रह्मचर्यके लिअे सहायक है।

अिस कारणसे अैसी व्यवस्था करना ठीक होगा जिससे विद्यार्थी सोनेके पहले कसरत या काम करके अच्छी तरह थक जाय। साथ ही अिस बातका भी ध्यान रखना चाहिये कि यह थकावट विद्यार्थीके शारीरिक विकासको नुकसान न पहुंचावे। लेकिन अगर साथमें काफी पौष्टिक और सात्त्विक खुराक मिले तो बढ़ते हुअेमें बहुत नाजुक शरीरवाले विद्यार्थियोंको छोड़कर दूसरोंके लिअे अतिश्रमकी चिन्ता करनेकी कम संभावना रहेगी।

वीर्यदोष होनेके कारण शरीरको अुपवास वगैरासे कमजोर बनानेकी बातको मैं भूल समझता हूं। क्योंकि अुपवास हमेशा चालू

नहीं रखे जा सकते। जिसलिअे अुपवास छोड़नके बाद पेट पर थोड़ा भी बोझ पड़नेसे वीर्यदोष हो जाता है। दूध वगैरा शरीरको थामनेवाली खुराकका त्याग भी मुझे ठीक नहीं मालूम होता। हां, युक्ताहारकी मर्यादा जरूर पालनी चाहिये।

ये तो मैने ब्रह्मचर्यके पालनमें सहायक होनेवाली स्थूल बातें कहीं।

लेकिन अब्रह्मचर्यकी जड़ तो मनोविकारमें है यह खूब याद रखना चाहिये।

अर्थात् सब स्थूल नियमोंका पालन करते हुअे भी अगर मनके सामने विकारी वातावरण हो तो ब्रह्मचर्यका पालन नहीं किया जा सकता।

जैसे किसी तेज झीरवाले कुअेंको साफ करना हो तो अुसके झीरोंमें गुदड़ी या मोटा कपड़ा ठूसकर अुसका पानी अुलीचना चाहिये वर्ना वह कभी खाली नहीं हो सकता अुसी तरह मनको निर्मल और शुद्ध बनानेके लिअे अुसमें घुसनेवाली चीजोंकी तरफ खूब ध्यान देना चाहिये।

जिस विद्यार्थीको शृंगार रससे भरी कहानियां नाटकों काव्यों चित्रों वगैराका लाजिमी तौर पर अध्ययन करना पड़ता हो जो विद्यार्थी सिनेमा नाटकघरोंमें जाता हो होटलका खाना खाता हो नये शादी किये हुअे और नया भोग भोगनवाले विद्यार्थियों या शिक्षकोंके बीच रहता हो और विलासी वार्तालापमें रचा-पचा रहता हो अुसके लिअे चांद्रायण व्रत करके भी वीर्यको स्थिर रखना कठिन है।

हाअीस्कूलोंके अूंचे दरजोंसे लेकर कॉलेज तकका वातावरण ब्रह्मचर्यका विरोधी होता है। अैसे वातावरणमें रहकर भी जो अपने वीर्यकी रक्षा कर सका हो अुसे सचमुच भाग्यशाली समझना चाहिये।

शहरोंमें बालोंका जीवन बचपनसे ही विकारोंको पोसनेवाला होता है। डाअी-तीन बरसके बच्चे मनोविकारी तो नहीं लेकिन शरीरविकारी होते देखे जाते हैं।

कभी बार मां-बाप और शिक्षकोंका बरताव विकारोंको पोसनेवाला होता है। रास्ते परके प्राणी जैसे कभी-कभी असभ्यताका नमूना पेश करते हैं वैसे ही मां-बाप भी करते हैं।

अिस वातावरणको जितना निर्मल और पवित्र बनाया जा सके अुतना बनाना हमारा पहला फर्ज है। अिसके बिना किये जानेवाले बाहरी अुपाय बेकार ही साबित होंगे।

ब्रह्मचर्यके बारेमें बार-बार भाषण देनेका अच्छा असर नहीं होता। अुलटे अिससे निर्दोष विद्यार्थी भी अिस बारेमें विचार करने लग जाते हैं, अुन्हें कुतूहल भी होता है। किसी विद्यार्थीको यह विषय समझानेकी जरूरत मालूम हो तो अेक या दो बारमें ही अच्छी तरह गंभीरतासे और भक्तिभावसे अुसे समझा देना चाहिये। अिस बारेमें जो कुछ भी नहीं जानता अुसे जानकार बनानेके पहले खूब विचार कर लेना चाहिये। अिसलिअे छोटे बच्चोंकी कक्षामें अिस विषयकी जानकारी देनेके बारेमें मुझे शंका है। छोटे बच्चे भी निर्दोष नहीं होते, यह मैं जानता हूं। फिर भी अच्छा रास्ता यही है कि जिन्हें अिसकी जानकारी कराना अुचित हो अुनसे खानगीमें अिसकी चर्चा की जाय। लेकिन बार-बार तो अिस विषयकी चर्चा होनी ही नहीं चाहिये।

अब दूसरी बात भी कह दूं। द्वेषभावसे विकारका चिन्तन करके भी हम विकारसे बच नहीं सकते। विकारका द्वेषभावसे चिन्तन करनेमें भी विकारका स्मरण रहता है। ब्रह्मचर्यकी साधना करनेवालेको तो विकारको भूल ही जाना चाहिये। अिसलिअे अिसका सबसे अच्छा रास्ता चित्तको दूसरे काममें लगा देना ही है। कोअी अुदात्त रस चित्तको लगा देना विकारको हटानेका रास्ता है।

अिसमें साथ कसरत, आसन वगैराकी समझदारीके साथ मदद ली जा सकती है, लेकिन अिसका मैं जानकार नहीं हूं।

नवजीवन १२-२-१९२८

४

न पढने लायक अच्छी पुस्तकें

अच्छे अुद्देश्यसे लिखी हुअी होने पर भी नौजवानोंको जिन्हें बहुत नही पढ़ना चाहिये अैसी पुस्तकोंमें मैं ब्रह्मचर्यके बारेमें लिखी पुस्तकोंका समावेश करता हूं। ब्रह्मचर्यका पोषण करनेके अुद्देश्यसे और सच्ची भावनासे लिखी हुअी ब्रह्मचर्य संदेश सञ्जीवनी विद्या वगैरा कुछ पुस्तकें मैंने देखी हैं। लेकिन विकारोंके साथ झगड़नेवाले नौजवानोंको वे अेकन्दर बहुत फायदा पहुंचा सकती हैं या नहीं अिस बारेमें मुझे शक है। और अिन पुस्तकोंकी कुछ बातें तो असी होती हैं जो विकारके कुछ प्रकारोंसे अनजानको भी जानकार बना देती हैं।

जीवन-बीज और जीवन-वृद्धिके बारेमें जाननेका कुतूहल बहुतस नौजवानोंके मनमें किसी न किसी समय पैदा होता है। अिस बारेमें वे छिपे तौर पर और अनुचित मार्गसे जानकारी प्राप्त करें, अिसके बजाय वे धार्मिक भावनावाले मनुष्य द्वारा गंभीरतासे लिखी हुअी पुस्तक पढ़ें यह कभी ज्यादा ठीक हो सकता है। लेकिन अैसी कअी पुस्तकें पढ़ना तो कभी भी ठीक नहीं। फिर, बहुतसे नौजवान अपनेको तकलीफ देनेवाले दोषोंसे छूटनेकी अिच्छासे असी पुस्तकें खोजते हैं। अुन्हें अिन पुस्तकोंमें से व्यावहारिक और अचूक अुपाय शायद ही कभी मिलते हैं। अुलटे होता यह है कि अुस अुम्रमें अैसी पुस्तकोंका पढ़ना ही अुन्हें विकारोंकी याद दिलाता है और दोषकी तरफ ढकेलता है।

तो विकारोंसे मुक्त होनेके लिअे अैसी पुस्तकें बहुत अुपयोगी साबित नहीं होतीं। अिसके लिअे पुस्तकोंमें से शायद ही कोअी रास्ता मिलता है। यह लड़ाअी हरअेकको अपने साथ ही लड़नी होगी। अिसके लिअे कुछ अुपयोगी सूचनायें अितनी ही हो सकती हैं

(१) निर्भय मार्ग यही है कि अैसा कोअी अुपाय किया जाय जिससे विषयकी याद ही न आवे। अुसके लिअे मन और शरीरको हमेशा काममें लगाये रखना चाहिये। किसी काम अभ्यास या शुभ प्रवृत्तिका मन पर अैसा रंग चढ़ा देना चाहिये कि न मनको अुसके विचारोंसे कभी फुरसत मिले और न कभी विषयकी याद आवे। जिसके लिअे कोअी काम अैसा होना चाहिये जिसमें शरीरके साथ मनको भी लगाना पड़े।

कॉलेजके दिनोंमें मैंने प्रसिद्ध रसायनशास्त्री जॉन डाल्टनका जीवन-चरित्र पढ़ा था। अुसमेंकी अेक बात मैं कभी भूल न सका। अुसमें मुझे स्वाभाविक ब्रह्मचर्यका आदर्श देखनेको मिला। जॉन डाल्टनके बुढ़ापेमें किसीने अुनसे पूछा आप किस अुद्देश्यसे अविवाहित रहे? वे अिस सवालसे विचारमें पड़ गये। थोड़ी देर बाद बोले "भाअी आज ही तुमने मुझे यह सवाल सुझाया है। मेरा जीवन विज्ञानके अध्ययनमें कैसे बीत गया जिसका मुझे पता ही न चला। मेरे मनमें यह विचार ही कभी पैदा नहीं हुआ कि शादी की जाय या न की जाय या मैं विवाहित हूं या अविवाहित।

हमारे पुराणोंमें अत्रि ऋषि और सती अनसूयाकी* बात भी — मैंने जिस तरह सुनी है अुस तरह — अैसे ही आदर्शवाली है। व विवाहित दंपती थे लेकिन ऋषिकी जवानी अपने अभ्यासमें और सतीकी जवानी ऋषिके लिअे सुविधायें जुटाने और कामकाजमें अैसी बीत गअी कि बुढ़ापा कब आया जिसका अुन्हें पता ही न चला। पुराणकार कहते हैं कि अेक बार अत्रि अपने अध्ययनमें लगे हुअे थे चिंतनमें दीयेमें तेल खतम हो गया। अत्रिने तेल मांगनेकी अिच्छासे अूपर देखा तो बनावटके कारण अनसूयाकी आंखें लाल गअी मालूम हुअी। अत्रिने जब अनसूयाकी तरफ ध्यानसे देखा तो वे बूढ़ी जान पड़ीं। अितनेमें अुन्होंने अपनी

* श्री नानाभाअी (नृसिंहप्रसाद) भट्टने यह बात सती माताजीके नामसे बयान की है।

दाढ़ीकी तरफ देखा तो वह सफेद हुई दिखाओी दी। जवानी कब चली गयी, जिसका अत्रिको पता ही न चला! जिस वातमें काव्यकी अतिशयोक्ति जरूर होगी लेकिन ब्रह्मचारीके लिअे अभ्यासपूर्ण जीवन बितानेका अेक अुत्तम आदर्श बताया गया है, और डाल्टनकी अनुभव-वाणीका यह समर्थन करती है।

(२) फिर भी अगर विकार पैदा हों तो अुनका सानुभाव या मित्रभावसे विचार करनेके बजाय किसी नये ही विचारमें मनको लगानेकी कोशिश करनी चाहिये।

(३) जिस व्यक्ति या मूर्तिके बारेमें जितना आदर हो कि अुसके नजदीक रहनेसे विकार शान्त होते हों या जिसके नजदीक विकारके वश न होने जितना संयम रखनेका बल मिलता हो अुसके पास अुठना-बैठना चाहिये। अुसके अभावमें अुसकी याद भी मददगार हो सकती है।

सर वॉल्टर स्कॉटके बारेमें यह बात कही जाती है कि अुनकी दादीको जिस बातकी बड़ी चिढ़ थी कि लड़के कुर्सी पर पीठ टेककर बैठें और न स्कॉटको कभी जिस तरह नहीं बैठने देती थीं। स्कॉटमे बुढ़ापेमें भी पीठ टेककर न बैठनेकी यह आदत कायम रखी थी। वे कहते कि कभी-कभी पीठ टेककर बैठनेका मन हो आता है लेकिन अुसी वक्त अैसा लगता है मानो दादी आंख निकालकर सामने बैठी हो और यह अिच्छा शान्त हो जाती है!

(४) जो खानपान कपड़े या आदतें अुदक अनुभवसे विकारको मदद करनेवाले मालूम हुअे हों अुनका व्रतके रूपमें त्याग कर देना चाहिये और आम तौर पर नीचेके नियमोंका पालन करना चाहिये

(क) बहुत देरसे न खाना रातमें भारी या ज्यादा गरम खुराक न लेना।

(ख) रातमें देरसे न सोना।

(ग) सुबह जल्दी अुठना।

(घ) दिनमें अितनी मेहनत करना कि रातमें आठ-नौ बजते ही नींद आने लगे। और अुषाकालमें सोनेका कभी आलस न करना।

(च) सादा और स्वच्छ जीवन बितानेकी अिच्छा रखना।

(छ) रसिक दिखनेका मोह न रखना।

यह तो नहीं कह सकते कि अितना करनेसे विकार बिलकुल शान्त हो जायंगे। यह सब करते हुअे भी बहुतसे नौजवानोंको विकार सताये बिना नहीं रहते। लेकिन अगर अूपर बताअी हुअी सामान्य सूचनायें अुन्हें बहुत मदद न कर सकें, तो यह भी संभव नहीं है कि अूपरकी जैसी पुस्तकोंका पढ़ना अुन्हें अिस बारेमें मदद पहुंचायेगा। अैसे नौजवानोंको मेरी सलाह यह है कि अैसी अेकाध पुस्तक पढ़ लेनेके बाद भी जिनकी परेशानी न मिटी हो अुन्हें अिस तरहकी दूसरी पुस्तकें हरगिज न पढ़नी चाहिये। अुनसे कोअी मार्गदर्शन नहीं मिल सकेगा।

कुमार, १९२९

५

स्त्रियों पर अत्याचार

पांच हजार साल पहले युधिष्ठिरने कौरवोंके साथ जुआ खेला और असमें धर्मराजने द्रौपदीको दाव पर चढ़ानेका अधर्म किया। जुअेमें धर्मराज हारे। दुःशासन रजस्वला द्रौपदीको सभामें घसीट लाया और भरी सभामें वीर कहलानेवाले पांच-पांच पतियोंके देखते हुअे वृद्ध और ज्ञानी माने जानेवाले भीष्म पितामहके सामने और ससुर जैसे धृतराष्ट्रकी और दूसरे सैकड़ों राजपुरुषोंकी अुपस्थितिमें द्रौपदीकी लाज लूटनेकी कोशिश करने लगा। द्रौपदीने बड़े-बूढ़ों और सभाजनोंके सामने न्याय मांगा। बहुत समझदार लोग बड़ी अुलझनमें पड़ गये वे न्याय न दे सके। यही नहीं बल्कि किसीको अितना भी नहीं सूझा कि दूसरी चाहे जो अुलझन हो तो भी किसी स्त्रीकी — अपनी पत्नीकी भी — भरी सभामें अिज्जत नहीं लूटी जा सकती। पांच पांडव तो मानो घरमसे अपनी सारी शक्ति ही खो बैठे थे अिसलिअे अुनकी बात हम छोड़ दें। लेकिन बाकीके क्षत्रियोंमें से बूढ़े भीष्मको या दूसरोंको अितना सीधा क्षत्रियधर्म भी नहीं सूझा कि भले द्रौपदी दासी बन गअी हो फिर भी अुस पर अत्याचार करनेवालेको तो रोकना ही चाहिये। वे लोग कोअी अहिंसाके पुजारी नहीं थे। वे चाहते तो दुःशासनका हाथ काटकर भी द्रौपदीकी रक्षा कर सकते थे। लेकिन अैसा कुछ हुआ नहीं। पूरी सभामें सिर्फ दो ही आदमियोंने द्रौपदीकी वकालत करनेकी हिम्मत दिखाअी। अेक थे बूढ़े विदुर और दूसरा था दुर्योधनका अेक छोटा भाअी। अुन्होंने अपनी नम्र आवाज अुठाअी लेकिन अुन पर किसीने ध्यान नहीं दिया। वे दोनों दासीपुत्र थे।

अैसी द्रौपदीकी कथा संसारके दूसरे किसी राष्ट्रके अितिहास या पुराणोंमें नहीं मिलती। महाभारतमें व्यासने अैसा चित्र खींचा है।

पांच हजार सालसे हम यह कथा सुनते आ रहे हैं, फिर भी हमारे लिअ अभी वह पुरानी नहीं हो पाअी है। व्यासकी वर्णन की हुअी यह करुण कथा आज भी हम जितनी बार सुनते हैं, अुतनी बार हमारी आंखोंमें आंसू आये बिना नहीं रहते। लेकिन व्यासने अैसी कथा क्यों रची होगी? कौरव भले पांडवोंके शत्रु रहे हों फिर भी आय तो वे ही। व्यासने दुर्योधनको राजाके रूपमें बहुत बुरा नहीं बताया है। क्षत्रियके धर्मको जाननेवाले अेक आर्य राजाके हाथ ज्ञानी माने जानेवाले बड़े-बूढ़ोंके सामने यह पापकर्म हुआ अैसा चित्र व्यासने क्यों खींचा होगा?

लेकिन मालूम होता है कि व्यासको भी बिलकुल हूबहू चित्र खींचनेमें शरम लगी होगी। जिस करुण प्रसंगको आखिरी हद तक पहुंचाकर और द्रौपदीको सचमुच लुटी हुअी न दिखाकर अुन्होंने हमारी कोमल भावनाओंको बहुत ज्यादा दुखाया नहीं। द्रौपदीकी लाज लुटनेसे पहले ही अुसकी रक्षा करके व्यासने हमारी भावनाओंको तीव्र आघातसे बचा लिया है।

क्या द्रौपदीकी यह कथा हमें कभी परियोंकी कहानी जैसी काल्पनिक और असंभव लगी है? महाभारतकी कथाओं परसे अनेक कवियोंने बहुतसे काव्य नाटक कहानियां भजन वगैरा रचे हैं। अुनमें महाभारतकी कथाको कअी तरहसे अुलट-पलट डाला है। व्यासने अपने पात्रोंका जैसा चरित्र-चित्रण किया है अुससे बिलकुल भिन्न चरित्र कवियोंने अुनका बना डाला है। अुदाहरणके लिअे कालिदास जैसे कविने महाभारतकी शकुन्तलाको अपने नाटकका पात्र बनाया है लेकिन व्यासकी शकुन्तलाके बजाय बिलकुल दूसरी ही तरहकी स्त्रीका निर्माण किया है। लेकिन जिस द्रौपदी-वस्त्र-हरणकी कथाको किसी कविने अलग ढंगसे चित्रित किया हो अैसा जाननेमें

नहीं आया। साहित्यमें अैसा क्वचित् ही होता है, और जब अिस तरहकी घटनासे कोअी प्रजा परिचित हो तभी अैसा हो सकता है।

मुझे लगता है कि व्यासने द्रौपदी-वस्त्र-हरणकी कथा किसी अैसे भारी अत्याचारके रूपमें नहीं वर्णन की जिसकी कल्पना भी न की जा सके बल्कि अपने जमानेके दुष्ट राज्योंमें होनेवाली सच्ची घटनाओंका मनोवेधक वर्णन किया है।

मुझे अैसा लगता है कि गरीब प्रजाकी स्त्रियोंकी और हारे हुमे दुश्मनोंकी स्त्रियोंकी अिस तरह खुले आम अिज्जत लूटनेका पाप हमारे देशमें लम्बे समयसे चला आया है।

पंजाबके अत्याचारके समय जब अैसी घटनाओंका वर्णन किया गया तो हममें से बहुतेरोंको अैसा लगा था कि यह तो मानो न भूतो न भविष्यति जैसा कुछ हो गया है, और अुससे बड़ा आघात पहुँचा था। अभी कुछ दिन पहले ही गांधीजीने संधिके पालनके बारेमें सरकारके खिलाफ जो अिल्जाम छपवाये अुनमें भी अैसी घटनाओंके बारेमें पढ़कर हमारे दिलोंको ठेस पहुँची थी। लेकिन ये छपी हुअी हकीकतें ही हमारे जाननेमें आअीं अिससे यह न समझ लेना चाहिये कि अत्याचारकी असी करुणा अुपजानेवाली बातें कभी-कभी ही और किन्हीं अत्यन्त पतित मनुष्योंके हाथों ही होती हैं।

सच पूछा जाय तो व्यासने द्रौपदी-वस्त्र-हरण जैसे स्त्रीके प्रति किये जानेवाले नीच बरतावके बारेमें जबसे लिख गये हैं तबसे आज तक यह हमेशा चालू ही रहा है। दुःशासन किसी खास व्यक्तिका नाम ही नहीं बल्कि हमारे देशमें जिनकी परम्परा कभी टूटी ही नहीं अैसे अत्याचारी नीच राजसेवकोंका सामान्य नाम भी है।

मुझे अंग्रेजी राज्यसे रत्तीभर प्रेम नहीं। लेकिन मेरे देशभाअी धोखेमें रहें यह मैं नहीं चाहता। स्त्रियों पर किये जानेवाले जिन-जिन अत्याचारोंकी हकीकतें पंजाबके हत्याकांडसे लेकर आज तक मौके-मौकेसे

आननका मिस्री है, मुनह हम सिर्फ अंग्रेजी हुकूमतका ही जुल्म न समझें। यह मुसलमान शासकी भी विरासत नहीं है। कभी लोगोंके देखते हुमे रैयतकी स्त्रियोंको नंगी करके दिसका कंपा देनेवाली हद तक अुस पर जुल्म करने या करानकी हिम्मत परदेशी हाकिम कब कर सकता है? म कहता हूं कि जब तक अुसे यह विश्वास न हो जाय कि अैसा अत्याचार चुपचाप सह लनकी प्रजाकी आदत है और अुसके लिअे अुसी प्रजाके आदमी मिल सकते हैं तब तक वह अैसी हिम्मत कर ही नहीं सकता।

अिसलिअे हमें यह समझ लेना चाहिये कि यह हिन्दुस्तानी प्रजाका ही दोष है। अेक तरफ अैसे यह सोचकर बड़ा दुख होता है कि अैसे जुल्म सह लनवाली हमारी प्रजा कितनी निकम्मी और निःसत्त्व है अुसी तरह दूसरी तरफ यह सोचकर भी शरमसे हमारा सिर झुक जाता है कि अैसे जुल्म कर सकनेवाली हमारी पुरुष-जाति कितनी नीचे गिर गभी है।

सौभाग्यस हमार ही व्यासने हमार ही पांडव-कौरवों द्वारा अिसके खिलाफ पहली बार अपनी आवाज बुलन्द की है। लेकिन अभी तक अैस अत्याचारोंको अन्याय बना डालने जितने संस्कारी हम नहीं बने हैं। न्याय बुद्धि और शान्तिसे हम सोचे तो अिस कथनकी सचाभीके जितने चाहियें अुतने सबूत हमें मिल सकते हैं। नरपिशाच अत्याचारी राजाओंके होनेका हमारे देशमें कभी आश्चर्य नहीं हुआ था। आश्चर्य तो हुआ हमें शिवाजीके होनेका जिनका वर्णन हमने सावधानीसे अितिहासमें लिख रखा है। 'परस्त्री मात समान' यह आदर्श यदि राजपुरुषोंमें कुम्भर्म जैसा माना गया होता तो शिवाजीके आदमियोंकी अेक पकड़ी हुभी स्त्रीको अुनके पास भेंटस्वरूप भेजनेकी हिम्मत ही न हुभी होती। शिवाजीने अिज्जतके साथ अुसे विदा की जिससे अुनके आदमियोंको आश्चर्य हुआ। अिस परसे कल्पना की जा सकती है कि अुन लोगोंका अपनी प्रजाकी स्त्रियोंके साथ कैसा बरताव रहा होगा।

दूसरा सबूत हमारे देशकी नफरत पैदा करनेवाली भद्दी गालियोंमें है। सभ्य लोगोंके कानके कीड़े झड़ जाय अैसी अश्लील और गन्दी गालियां और अुनका भारी शब्दभंडार हमारे देशका माथा शरमसे झुका देनेके लिअे हमेशा मौजूद है।*

अिसके लिअे परदेशी राज्यका दोष निकालनेसे काम नहीं चलेगा। मुझे दुःख है कि मैं अिसका कोअी निश्चित अुपाय नहीं सुझा सकता। लेकिन अिस बारेमें मुझे जरा भी शक नहीं कि यह अपनी ही आत्मशुद्धिसे हो सकता है।

यह लेख स्त्रियोंके मासिकमें भेजते मुझे शरम मालूम होती है। लेकिन यह स्त्रियोंका दुःख है। अुनके सामने अिसे न रखूं, तो और कहां रखूं? शायद द्रौपदीकी तरह स्त्रियां ही अिसका अुपाय खोज सकें।

भगवान करोड़ों द्रौपदियोंकी लाज रखे!

अुपा १९३१

---

* लेकिन अब भी सबूतकी जरूरत रही है क्या? हिन्दुस्तानने आजाद होते ही अिस दुष्टताका कितना भयानक सबूत पेश किया है? अिसमें हिन्दू, सिक्ख या मुसलमान कोअी अेक-दूसरेसे पीछे नहीं रहे। (जनवरी १९४८)

जाननका मिलती हैं अुन्हें हम सिर्फ अंग्रेजी हुकूमतका ही जुल्म न समझें। यह मुसलमान कालकी भी विरासत नहीं है। कजी लोगोंके देखते हुवे रैयतकी स्त्रियोंको नंगी करके दिसको कंपा देनेवाली हद तक अुन पर जुल्म करने या करानेकी हिम्मत परदेशी हाकिम कब कर सकता है? मैं कहता हूं कि जब तक अुसे यह विश्वास न हो जाय कि असा अत्याचार चुपचाप सह लेनेकी प्रजाकी आदत है और अुसके लिअे अुसी प्रजाके आदमी मिल सकते हैं तब तक वह असी हिम्मत कर ही नहीं सकता।

अिसलिअे हमें यह समझ लेना चाहिये कि यह हिन्दुस्तानी प्रजाका ही दोष है। अेक तरफ असे यह सोचकर बड़ा दुःख होता है कि असे जुल्म सह लेनेवाली हमारी प्रजा कितनी निकम्मी और निःसत्व है अुसी तरह दूसरी तरफ यह सोचकर भी शरमसे हमारा सिर झुक जाता है कि असे जुल्म कर सकनेवाली हमारी पुरुष-जाति कितनी नीचे गिर गयी है।

सौभाग्यसे हमारे ही व्यासने हमारे ही पांडव-कौरवों द्वारा अिसके खिलाफ पहली बार अपनी आवाज बुलन्द की है। लेकिन अभी तक असे अत्याचारोंको असंभव बना डालने जितने संस्कारी हम नहीं बने हैं। न्याय बुद्धि और शान्तिसे हम सोचें तो अिस वचनकी राजाओंके जितने चाहिये अुतने सबूत हमें मिल सकते हैं। नरपिशाच अत्याचारी राजाओंके होनेका हमारे देशमें कभी आश्चर्य नहीं हुआ था। आश्चर्य तो हुआ हमें शिवाजीके होनेका जिनका वर्णन हमने सावधानीसे अितिहासमें लिख रखा है। 'परस्त्री मातृ समान' यह आदर्श यदि राजपुरुषोंमें कुलधर्म जैसा माना गया होता तो शिवाजीके आदमियोंकी अेक पकड़ी हुअी स्त्रीको अुनके पास भेंटस्वरूप भेजनेकी हिम्मत ही न हुअी होती। शिवाजीने अिज्जतके साथ अुसे विदा की जिससे अुनके आदमियोंको आश्चर्य हुआ। अिस परसे कल्पना की जा सकती है कि अुन लोगोंका अपनी प्रजाकी स्त्रियोंके साथ कैसा बरताव रहा होगा।

दूसरा सबूत हमारे देशकी नफरत पैदा करनेवाली भद्दी गालियोंमें है। सभ्य लोगोंके कानके कीड़े झड़ जायं अैसी अश्लील और गन्दी गालियां और अुनका भारी शब्दभंडार हमारे देशका माथा शरमसे झुका देनेके लिअे हमेशा मौजूद है।*

अिसके लिअे परदेशी राज्यका दोष निकालनसे काम नहीं चलता। मुझे दुःख है कि मैं अिसका कोअी निश्चित अुपाय नहीं सुझा सकता। लेकिन अिस बारेमें मुझे जरा भी शक नहीं कि यह अपनी ही आत्म शुद्धिसे हो सकता है।

यह लेख स्त्रियोंके मासिकमें भेजते मुझे शरम मालूम होती है। लेकिन यह स्त्रियोंका दुःख है। अुनके सामने अिसे न रखू तो और कहां रखू? शायद द्रौपदीकी तरह स्त्रियां ही अिसका अुपाय खोज सकें।

भगवान करोड़ों द्रौपदियोंकी लाज रखे!

अुपा १९३१

---

* लेकिन अब भी सबूतकी जरूरत रही है क्या? हिन्दुस्तानने आजाद होते ही अिस दुष्टताका कितना भयानक सबूत पेश किया है? अिसमें हिन्दू, सिक्ख या मुसलमान कोअी अेक-दूसरेसे पीछे नहीं रहे। (जनवरी १९४८)

६

अेक पापी रिवाज

सुना है कि काशीके किसी अेक तीर्थमें अपनी पत्नीका दान करनेका रिवाज है। भोले-भाले यात्रियोंको अैसा समझाया जाता है कि अगर पति अपनी पत्नीका दान न करे, तो यात्राका पुण्य नहीं मिलता। पण्डे यह दान लेते हैं और बादमें ठहरायी हुआी कीमत लेकर स्त्रीको अुसके पतिको वापस बेच देते हैं।

यह रिवाज पापी और अधम है अैसा कहनेमें संकोच होनेका जरा भी कारण नहीं है। अिसमें कोअी शक नहीं कि अिस तरह समझानेवाले पंडों और अिस तरहकी तीर्थ-महिमा बतानेवाले पुराणकार वालोंने बहुत ज्यादा अविचारी अनीतिपूर्ण और तीर्थको कलंक लगाने वाला कर्म अुत्पन्न किया है। अिन लोगोंने भोले और अज्ञानी लोगोंकी श्रद्धाको ज्यादा संस्कारी और विवेकपूर्ण बनानेके बदले अपनी प्रवृत्ति अिस तरहकी बनाअी है जिससे यात्रियोंके अज्ञान और भोली श्रद्धाका नाजायज फायदा अुठाया जा सके। सब धर्मनिष्ठ लोगोंको अिस पापी प्रवृत्तिकी खूब निन्दा करनी चाहिये।

किसी यात्रीको अैसी मांग या अैसे रिवाजके सामने कभी न झुकना चाहिये। दान अपनी मिल्कियतका किया जा सकता है, स्त्रीको मिल्कियत माननेवाला या मनवानेवाला पुरुष कभी संस्कारी नहीं कहा जा सकता। यह साफ है कि अिस तरह स्त्रीका दान नहीं किया जा सकता।

दूसरे जो स्त्री दूसरेकी धर्मपत्नी है अुसका दान स्वीकार करनेवाला पंडा व्यभिचारका दोषी माना जायगा। यह गुरु बनकर

शिष्यकी पत्नी पर पापपूर्ण दृष्टि डालता है और अपने ब्राह्मणत्वको कलंक लगाता है।

और जिस स्त्रीका दान कर दिया है अुसे वापिस खरीदकर दान देनेवाला पुरुष अुसके साथ किसी प्रकारका धर्मयुक्त सम्बन्ध नहीं रख सकता। क्या वह अुसे अुपपत्नी या माताके रूपमें रखना चाहता है? साफ है कि अुसका अैसा कोअी हेतु नहीं होता।

जिसलिअे किसी भी दृष्टिसे देखें, यह रिवाज अधम और पापी ही है। किसी यात्रीको अैसा धर्म बतानेवालेकी बातोंमें नहीं फंसना चाहिये।

कार्यं दानं न योषितः। (शिक्षापत्री)

हरिजनबन्धु, ३-६-'३४

पूर्ति

अैसा ही पाखण्डधर्म

यात्रामें स्त्रीका दान करनेके पापी रिवाजके बारेमें मैं पिछले अंकमें लिख चुका हूं। अैसा ही दूसरा पाखण्डभरा धर्म स्त्रीको गुरुको अर्पण करनेका है। आज भी अैसा बहुत जगहों पर चलता है। तन मन धन गुरुको अर्पण करवानेवाले गुरु शिष्यको अपनी पत्नी भी अर्पण करनेकी बात समझाते हैं और जड़ भोले अन्धश्रद्धावाले या किसी लाभकी आशामें फंसे हुअे शिष्य अैसा करते भी हैं।

और कुछ सम्प्रदायोंमें तो स्त्रीका पहले गुरुसे 'प्रसादित' करानेके बाद पति द्वारा स्वीकार करनेका रिवाज है।

ये सब रिवाज धर्म नहीं निरे अधर्म हैं, दुराचारके अखाड़े हैं। अगर जिन्हें धर्म बतानेवाले कोअी आधार हों तो वे जला डालने लायक माने जाने चाहियें।

हरिजनबन्धु, १०-६-'३४

७

स्त्री-पुरुषका सम्बन्ध

क्या समाजमें और क्या संस्थाओंमें स्त्री-पुरुषके बीच अनैतिक या नाजुक सम्बन्ध पैदा होनेकी बातें हम बहुत बार सुनते हैं। यह सिर्फ जमानेकी विशेषता है जैसा माननेका मैं कोअी कारण नहीं देखता। लेकिन यह शायद आसानीसे कहा जा सकता है कि आजकलकी भोग विलासकी प्रेरणा देनेवाली जीवन-पद्धति तथा स्त्रियों और पुरुषोंको परस्पर सहवासका ज्यादा मौके देनेवाली प्रवृत्तियां अिसे बहुत ज्यादा बढ़ा रही हैं। विवाहके प्रयोजन और प्रथाके बारेमें अभी-अभी पश्चिमी देशोंसे विचारोंका जो प्रचार हो रहा है वह भी नैतिक बन्धनोंको ढीला करनेमें बहुत बड़ा हिस्सा ले रहा है।

अपने सामने पवित्र जीवनका आदर्श रखनेवाले और अुसके लिअे बहुत कोशिश करते रहनेवाले अनेक स्त्री-पुरुषोंके जीवनमें भी अनैतिक सम्बन्ध पैदा होनेके किस्से सुने गये हैं। अीश्वरकी कृपासे मैं आज तक अैसी स्थितिमें से बच सका हूं। मेरे चित्तकी परीक्षा करते हुअे मैं अैसा बिलकुल नहीं मानता कि मेरे दिलमें अीश्वरने कोअी खास तरहकी पवित्रता रख दी है और अुसकी वजहसे मैं बच गया हूं। मुझमें भी साधारण पुरुषकी तरह ही विकार भरे हैं और अुनसे मुझे हमेशा झगड़ा चालू ही रखना पड़ता है।

फिर भी हम जिन्हें अनैतिक या अपवित्र सम्बन्ध मानते हैं अैसे सम्बन्धोंसे मैं और जहां तक मैं जानता हूं मेरे परिवारके बहुतसे लोग आज तक बच हुअे हैं। अीश्वरकी कृपाके अलावा मैं अिसका अेक ही कारण मानता हूं। और वह है सदाचारके स्थूल नियमोंका पालन।

मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा विजने तु वयस्यया।
अनापदि न ती स्येय ॥

जवान माँ बहन या लड़कीके साथ भी आपत्कालके बिना अेकांतमें नहीं रहना चाहिये — शिक्षापत्रीका यह सूत्र हमें बचपनसे ही रटाया गया था और मेरे पिताजी तथा भाभियोंके जीवनमें जिसका पालन करने और करानेका आग्रह मैं बचपनसे देखता था।

स्त्री-पुरुष आपसमें आजादीसे हिले-मिलें अेक-दूसरेके साथ अकेले हिरें-फिरें अेकांतमें भी बैठें और फिर भी अगर अुनमें विकार पैदा न हों या वे नाजुक हालतमें न फंसे तो अुसे मैं सिर्फ अीश्वरी चमत्कार ही समझूंगा। अैसे चमत्कार कदम-कदम पर नहीं हो सकते। सैकड़ों बरसोंमें कोअी अेकाध स्त्री या पुरुष भले अैसा पैदा हो। लेकिन मैं हर किसीके बारेमें तुरन्त अैसी श्रद्धा नहीं कर लेता और अैसा दावा करनेवाले हर किसीके शब्दों पर विश्वास नहीं करता। कोअी बड़ा ब्रह्मनिष्ठ और योगीराज माना जाता हो और कोअी मुझसे यह सलाह पूछे कि अुसके अैसे दावे पर विश्वास किया जाय या नहीं तो मैं पूछनेवालेसे यही कहूंगा कि विश्वास न करनेसे अुसका या आपका कोअी नुकसान नहीं होगा।

जिस बारेमें स्त्रीके बनिस्बत पुरुषकी स्थितिको ज्यादा समझनेकी जरूरत होती है। कोअी पुरुष ५० बरस तक विकारोंसे बचा रहा हो तो अुससे यह नहीं कहा जा सकता कि अब वह सुरक्षित हो चुका है। और यह भी नहीं कहा जा सकता कि ७० वें बरसमें भी विकारोंका शिकार होनेका अुसे डर नहीं रहा। जिसलिअे अगर कोअी यह कहे कि अब मुझे परस्त्री या पुरुषके साथ अेकांतवास न करनेके स्थूल नियमका पालन करनेकी जरूरत नहीं रही तो मुझे यह शंका हुअे बिना नहीं रहेगी कि वह ढोंग करता है।

जिस स्थूल नियमका सख्तीसे पालन करनेका संस्कार मुझ पर पड़ा है और मुझे लगता है कि जिसी कारणसे मैं आज तक किसी कठिन परिस्थितिमें फंसनेसे बच सका हूं।

ब्रह्मचर्यका व्रत पालते हुअे भी मुझे कअी बार अपनी पत्नीके साथ अेकांतमें रहना पड़ता है यह मुझे कबूल करना चाहिये। जिसका अेक कारण यह है कि अैसा करनेमें हमने अेक-दूसरेकी रक्षा मानी है।

दूसरा कारण यह है कि हम दोनोंको अेक-दूसरेकी शारीरिक सेवाकी जरूरत पड़ती है। और हमारे मनमें यह भावना भी रही है कि जिससे ज्यादासे ज्यादा बिगाड़ होगा तो यही कि हम अपने निश्चयसे डिग गये। हम असी श्रद्धा रखते हैं कि निश्चयसे कभी डिगेंगे तो हम नम्रतासे यह कबूल कर लेंगे लेकिन ढोंग नहीं करेंगे। और हमारा डिगना खुद हमारे लिअे चाहे जितने बड़े दु:खकी बात हो, फिर भी असा नहीं कहा जा सकता कि जिससे समाजमें कोअी बिगाड़ पैदा करनेका हमने दोष किया है। अितना हमें आश्वासन है।

लेकिन अेकांतवासका मतलब ज्यादा समझनेकी जरूरत है। जवान स्त्री-पुरुषोंके बीच खानगी और लम्बे पत्रव्यवहारका सम्बन्ध भी अेकांतवासकी ही गरज पूरी करता है और अुसीमें से स्थूल अेकांतवास पैदा होता है।

आधुनिक जीवनमें दूसरे भी बहुतसे भयस्थान बढ़ गये हैं। ये भयस्थान अेकांतवाससे अुल्टे ढंगके यानी अतिसहवासके होते हैं। अनेक प्रकारके कामकाज और शहरी जीवनके कारण कभी अनजानमें कभी अनिवार्य रूपमें और कभी अचानक स्त्री-पुरुषोंको अेक-दूसरेके अंगोंका स्पर्श हो जाता है। रेलगाड़ियोंमें मोटरोंमें सभाओंमें रास्तोंमें अेक-दूसरेसे सटकर बैठना पड़ता है चलना पड़ता है बातचीत करनी पड़ती है शिक्षकोंको लड़कियों या बालाओंको पढ़ाना होता है—और ये सब दोनोंके लिअे भयस्थान हैं। अिन सब परिस्थितियोंमें जो अपनी पवित्रताके लिअे जरूरतसे ज्यादा घमण्ड करता है वह गिरता ही है जो जाग्रत रहता है असे मौकोंको सुखके नहीं बल्कि आफतके मौके समझता है और यह मनोवृत्ति रखता है कि पास आनेके बजाय जैसे बने तैसे जिससे जितना भर तो भी दूर रहा जाय वही भीश्वरकी कृपासे बच सकता है।

जहां-जहां हम असे दोष पैदा होनेकी बात सुनते हैं वहां-वहां दोष पैदा होनेके पहले अूपरके स्थूल नियमोंके पालनमें लापरवाही अुन नियमोंके लिअे थोड़ा-बहुत अनादर, अपनी संयमशक्ति पर झूठा

विश्वास और बहुत बार गैरजरूरी स्त्रीदाक्षिण्य (chivalry) वगैरा से ही यह देखनेमें आयेगा।

जिसे खुद अिन दोषोंसे बचना हो और समाजका — खास करके भोली बालाओंका — बचाव करना हो, वह अिन नियमोंका अक्षरशः पालन करे। यही राजमार्ग है।

जब-जब मुझे स्त्रियों और बड़ी मुमरकी लड़कियोंको पढ़ानेका मौका आया है, तब-तब मैंने हमेशा अिस बातका ध्यान रखा है और आज भी रखता हूं कि मेरी पत्नी मेरे पास मौजूद रहे या कभी स्त्रियां साथमें हों और मैं असी खुली जगहमें बैठकर पढ़ाभू जहां मुझे मालूम हुअे बिना भी हर कोअी आ सके। यह चीज मैंने अपने पिताजी और बड़े भाअीसे सीखी है। स्त्रियोंके साथ अेक आसन पर सटकर बैठनेकी बात मुझे आधुनिक जीवनमें निभानी पड़ती है लेकिन वह मुझे बिलकुल अच्छी नहीं लगती। अपने भाअियोंकी जवान लड़कियोंका भी आशीर्वादके बहाने भी मैं जान-बूझकर अंगस्पर्श नहीं करता या नहीं होने देता। अगर कोअी स्त्री लापरवाहीसे या आजकल जैसी छूट ली जाती है वह निर्दोष है अिस खयालसे मेरे पास आकर बैठ जाती है तो अुससे मुझे दुःख होता है। अैसा बरताव आजके जमानेमें 'अति मरजादी' (ultrapuritan) समझा जाता है, यह भी मैं जानता हूं। लेकिन मैंने अिसमें अपनी और समाजकी दोनोंकी रक्षा मानी है। *

---

* २७ जुलाअी १९४७ के हरिजनबन्धु में पुरानेका बचाव नामसे गांधीजीने अेक पत्र छापा है। अुसमें पत्रलेखक मेरा जिक्र करके लिखते हैं कि ये तो "अिस हद तक पहुंच गये हैं कि स्त्री-पुरुषको अेक चटाअी पर भी नहीं बैठना चाहिये।

अिस पर गांधीजी लिखते हैं अगर अैसा हो कि जिस चटाअी पर कोअी स्त्री बैठी हो अुस पर किशोरलालभाअी न बैठें तो मुझे आश्चर्य होगा। मैं अैसी पाबन्दीको नहीं समझ सकता। अुनके मुंहसे अैसा मैंने कभी सुना नहीं।

दूसरा कारण यह है कि हम दोनोंको अेक-दूसरेकी शारीरिक सेवाकी जरूरत पड़ती है। और हमारे मनमें यह भावना भी रही है कि अिससे ज्यादासे ज्यादा बिगाड़ होगा तो यही कि हम अपने निश्चयसे डिग गये। हम अैसी श्रद्धा रखते हैं कि निश्चयसे कभी डिगेंगे तो हम नम्रतासे यह कबूल कर लेंगे लेकिन ढोंग नहीं करेंगे। और हमारा डिगना खुद हमारे लिये चाहे जितने बड़े दुःखकी बात हो, फिर भी अैसा नहीं कहा जा सकता कि जिससे समाजमें कोअी बिगाड़ पैदा करनेका हमने दोष किया है। अितना हमें आश्वासन है।

लेकिन अेकांतवासका मतलब ज्यादा समझनेकी जरूरत है। जवान स्त्री-पुरुषोंके बीच खानगी और लम्बे पत्रव्यवहारका सम्बन्ध भी अेकांतवासकी ही गरज पूरी करता है और अुसीमें से स्थूल अेकांतवास पैदा होता है।

आधुनिक जीवनमें दूसरे भी बहुतसे भयस्थान बढ़ गये हैं। ये भयस्थान अेकांतवाससे अुलटे ढंगके यानी अतिसहवासके होते हैं। अनेक प्रकारके कामकाज और बाहरी जीवनके कारण कभी अनजानमें कभी अनिवार्य रूपमें और कभी अचानक स्त्री-पुरुषोंको अेक-दूसरेके अंगोंका स्पर्श हो जाता है। रेलगाड़ियोंमें मोटरोंमें सभाओंमें रास्तोंमें अेक-दूसरेसे सटकर बैठना पड़ता है चलना पड़ता है बातचीत करनी पड़ती शिक्षकोंको लड़कियों या बालाओंको पढ़ाना होता है—और ये सब दोनोंके लिअे भयस्थान हैं। अिन सब परिस्थितियोंमें जो अपनी पवित्रताके लिये जरूरतसे ज्यादा घमण्ड करता है वह गिरता ही है जो जाग्रत रहता है, अैसे मौकोंका सुखके नहीं बल्कि आफतके मौके समझता है और यह मनोवृत्ति रखता है कि पास जानेके बजाय जैसे बने तैसे अिनसे अिंच भर तो भी दूर रहा जाय वही अीश्वरकी कृपासे बच सकता है।

जहां-जहां हम अैसे दोष पैदा होनेकी बात सुनते हैं वहां-वहां दोष पैदा होनेके पहले अूपरके स्थूल नियमोंके पालनमें लापरवाही अुन नियमोंके लिये थोड़ा-बहुत अनादर, अपनी संयमशक्ति पर झूठा

विश्वास और बहुत भार गैरजरूरी स्त्रीदाक्षिण्य (chivalry) वगैरा थे ही, यह देखनेमें आयेगा।

जिसे खुद जिन दोषोंसे बचना हो और समाजका — खास करके भोली बालाओंका — बचाव करना हो वह जिन नियमोंका अक्षरशः पालन करे। यही राजमार्ग है।

जब-जब मुझे स्त्रियों और बढ़ती अुमरकी लड़कियोंको पढ़ानेका मौका आया है, तब-तब मैंने हमेशा जिस बातका ध्यान रखा है और आज भी रखता हूँ कि मेरी पत्नी मेरे पास मौजूद रहे या कभी स्त्रियाँ साथमें हों और मैं अैसी खुली जगहमें बैठकर पढ़ाअूं जहां मुझे मालूम हुअे बिना भी हर कोअी आ सके। यह चीज मैंने अपने पिताजी और बड़े भाअीसे सीखी है। स्त्रियोंके साथ अेक आसन पर सटकर बैठनेकी बात मुझे आधुनिक जीवनमें निभा लेनी पड़ती है लेकिन वह मुझे बिलकुल अच्छी नहीं लगती। अपने भाअियोंकी जवान लड़कियोंका भी आशीर्वादके बहाने भी मैं जान-बूझकर अंगस्पर्श नहीं करता या नहीं होने देता। अगर कोअी स्त्री लापरवाहीसे या आजकल अैसी छूट ली जाती है वह निर्दोष है जिस खयालसे मेरे पास आकर बैठ जाती है तो अुससे मुझे दुःख होता है। अैसा बरताव आजके जमानेमें 'अति मरजादी (ultrapuritan) समझा जाता है यह भी मैं जानता हूँ। लेकिन मैंने जिसमें अपनी और समाजकी दोनोंकी रक्षा मानी है। *

---

* २७ जुलाअी १९४७ के हरिजनबन्धु में पुरानेका बचाव' नामसे गांधीजीने अेक पत्र छापा है। अुसमें पत्रलेखक मेरा जिक्र करके लिखते हैं कि ये तो "जिस हद तक पहुंच गये हैं कि स्त्री-पुरुषको अेक चटाअी पर भी नहीं बैठना चाहिये।

जिस पर गांधीजी लिखते हैं अगर अैसा हो कि जिस चटाअी पर कोअी स्त्री बैठी हो अुस पर किशोरलालभाअी न बैठें तो मुझे आश्चर्य होगा। मैं अैसी पाबन्दीको नहीं समझ सकता। अुनके मुंहसे अैसा मैंने कभी सुना नहीं।"

जिसमें मेरी थोड़ी निजी बातें आ गयी हैं। वे अनिच्छासे ही आयी हैं। अुन्हें अुपयोगी समझकर ही यहां लिखा है, मेरे जीवनको चित्रित करनेके लिओ नहीं। मैंने अपनेको कभी पूरी तरह सुरक्षित नहीं माना, विशेष मनोबलवाला नहीं माना। वेदान्तनिष्ठासे सुरक्षित रहा जाता है, अैसा मैं नहीं मानता। जिस घमण्डसे गिरने और फिसलनेवालोंकी मिसालें तो बहुत देखी हैं। अीश्वरकी कृपासे बड़े-बूढ़ोंके दिये हुअे संस्कारसे और अूपर बताये स्थूल नियमोंके पालनसे ही मैं अभी तक बचा हूं अैसा मैं मानता हूं और अिसीके बल पर आगे भी बचा रहनेकी अुम्मीद रखता हूं।

हरिजनबन्धु, २१-९-'३४

मेरा खयाल है कि पत्रलेखकने अूपरके पैराके विचारोंका जिक्र किया है। अिन विचारोंमें आज भी कोअी फेरबदल करनेका कारण मैं नहीं देखता। अेक चटाअी पर बैठना और अेक ही आसन — यानी आम तौर पर जिस पर अेक ही आदमी अच्छी तरह बैठ सके अैसी जगह — पर या दूसरी बहुतसी जगहके होते हुअे भी मेरे पलंग पर ही चढ़ बैठना अिन दोनोंमें बड़ा फर्क है। रेलगाड़ी ट्राम भीड़भाड़ खचाखच भरी सभा वगैरामें अैसा होना अलग बात है। परन्तु घर जिसने नये हों, या अकेले हों तो वहां अैसा व्यवहार मुझे बुरा और असभ्य मालूम होता है। अिस तरह पुरुषका पुरुषके साथ या स्त्रीका स्त्रीके साथ भी बैठना जरूरी नहीं। सदाचारका यह नियम "मेहनतका काम न करनेवाले सफेदपोश मध्यमवर्गका" नहीं सच पूछा जाय तो यही वर्ग अिस नियमका कम पालन करता है। शहरके मजदूरोंके बारेमें तो निश्चयपूर्वक मैं कुछ नहीं कह सकता लेकिन मैं यह मानता हूं कि "गांवके किसान और कारीगर लोग जिस ढंगसे रहते और काम करते हैं अुसमें यह नियम ज्यादा पाला जाता है।

(जनवरी १९४८)

८

शीलकी रक्षा

पुरुषोंके बनिस्बत स्त्रियोंको अपने शील या पवित्रताके लिअे ज्यादा आदर और खयाल होता है और होना चाहिये अैसा मैं मानता आया हूं। कुदरतने पुरुषके बनिस्बत स्त्री-जातिके लिअे शीलभंगकी सजा भी ज्यादा स्पष्ट और ज्यादा कड़ी बनाअी है। आजकी पीढ़ीकी स्त्रियोंका अिस बारेमें क्या खयाल है यह मैं नहीं जानता, लेकिन पिछली पीढ़ी तक स्त्रियोंका भी यही खयाल था कि पुरुष भ्रष्ट और व्यभिचारी जीवन बितायें तो भी स्त्रियोंसे नहीं बिताया जा सकता।

यह कुछ अंश तक ही सच माना जा सकता है। पुरुष स्त्रीके बिना भी अपने आपको कअी तरहसे भ्रष्ट कर सकता है। अिसलिअे यह नहीं कहा जा सकता कि स्त्रीसे दूर रहनेवाला पुरुष हमेशा ब्रह्मचारी या संयमी ही रहता है। संभव है कि बहुतसे लड़कोंको अज्ञान दशामें ही सबसे पहले विषयभोगका ज्ञान दूसरे किसी बिगड़े हुअे लड़केके द्वारा मिलता हो। शायद प्राणियोंको भोग करते देखकर भी मिलता हो। लेकिन यहां अिस विषयकी चर्चा करनेका मेरा अिरादा नहीं है। वह चाहे जिस तरह मिलता हो लेकिन अितना तो निश्चित है कि स्त्रीके बनिस्बत पुरुषको शीलकी रक्षा करनेमें ज्यादा कठिनाअी है। और अिसलिअे पुरुषकी भ्रष्टताको स्त्रियां भी ज्यादा दरगुजर करती आअी हैं यह कहा जाय या यह कहिये कि स्त्रियां पुरुषोंकी पवित्रताके बारेमें हमेशा शंका रखती आअी हैं। स्त्रियोंको अपने शीलकी रक्षाके लिअे हमेशा ज्यादा अभिमान और ज्यादा चिन्ता रहती है।

अिसलिअे जब किसी स्त्री-पुरुषके बीच अपवित्र सम्बन्ध होनेकी बात मुझे मालूम होती है तो यह समझमें नहीं आता कि अुसमें स्त्रीका

पतन कैसे होता होगा। हिन्दू शास्त्रोंने स्त्रीको पुरुषसे आठ गुनी ज्यादा कामुक बताया है, और यह सूचना की है कि स्त्रीकी पवित्रता अुसके चरित्रबलके कारण नहीं बल्कि समाजके या पुरुषवर्गके अंकुशों और चौकी-पहरेके कारण टिकती है। महाभारतने तो अिस हद तक कह डाला है कि स्त्रीकी विषयभोगकी अिच्छा कभी तृप्त नहीं होती। लेकिन मेरा अिन वचनोंमें विश्वास नहीं जमता। मुझे अैसा नहीं लगा कि ये पूर्ण अनुभवके वचन हैं। अनुभव अिससे बिलकुल अुल्टा ही होता है, अैसी आज तककी मेरी राय है।

अिसलिअे जब मैं स्त्रीके पतनकी बात सुनता हूं तब मैं कुछ दिङ्मूढ़सा बन जाता हूं। शायद यह मेरा भोलापन या अज्ञान ही हो। किसी समाजमें पुरुषोंके बड़े हिस्सेके चरित्रके बनिस्बत स्त्रियोंका चरित्र ज्यादा अूंचा हो सकता है यह अपेक्षा ही नादानीभरी है अैसा कोअी कहे तो अुसमें दोष नहीं निकाला जा सकता। स्त्री और पुरुष दोनों अेक ही वर्गके प्राणी हैं दोनों अेक ही तरहकी वासनाओंके पुतले और परिणाम हैं। अिससे सैकड़े पीछे ९० पुरुषोंको पवित्रताके लिअे पत्नीव्रतके लिअे या ब्रह्मचर्यके लिअे जो आदर हो सकता है वही आदर सैकड़े पीछे ९० स्त्रियोंमें होगा कम ज्यादा नहीं हो सकता।

अिस विचारमें कुछ सचाअी हो सकती है। फिर भी मुझे हमेशा अैसा लगा करता था कि अिसमें थोड़ा गहरा विचार करनेकी जरूरत रह जाती है कुछ खुलासा अधूरा रह जाता है।

अिग्लैंडके मशहूर मानसशास्त्री डॉ मेकडूगल अिस बारेमें जो थोड़ा खुलासा करते हैं वह विचारने जैसा है। अुनका कहना है कि स्त्रीका स्वभाव ज्यादा भावनामय होता है। अुसके लिअे जो ममता या हमदर्दी बताअी जाती है अुसका असर अुस पर पुरुषके बनिस्बत ज्यादा होता है। अिसका मतलब यह हुआ है कि स्त्रीकी भोगकी अिच्छा कभी तृप्त नहीं होती अैसा कहना गलत है दरअसल स्त्री आम तौर पर हमेशा भावकी — प्रेमकी भूखी रहती है। अिसलिअे अुसके प्रति जो

चाक्षिण्य (chivalry) बताया जाता है मुसकी प्रतिध्वनि भुसके हृदयमें से भुठे बिना नहीं रहती। भिसका असर भुसके हृदय पर भितना ज्यादा होता है कि भुसे अपने भले-बुरेका बहुत खयाल नहीं रहता और अपने प्रति प्रेम ममता या हमदर्दी बतानेवालेको सन्तुष्ट करनेके लिये वह सब कुछ करनेको तैयार हो जाती है। हो सकता है कि भावनाका यह वेग थोड़ी ही देर टिके और बादमें भुसका संताप पहले वेगसे भी ज्यादा बलवान हो जाय। लेकिन थोड़ेसे समयके लिये तो वह अपने आपको भूल जाती है भले-बुरेका विवेक खो बैठती है। चालाक पुरुष स्त्रीके भिस स्वभावका फायदा भुठाता है और भुसे अपना शिकार बनाता है।

भिसका यह मतलब नहीं कि स्त्रियां कभी पुरुषसे ज्यादा विकार वश या चालाक होती ही नहीं और पुरुष भुन्हें फंसानेके बजाय भुनके जालमें कभी फंसता ही नहीं। अैसी भी बहुतसी मिसालें मिल जाती हैं। लेकिन मैं मानता हूं कि ज्यादातर पुरुष ही पहल करता है और स्त्री भुसकी तरफ खिंच जाती है।

भिसलिये जो स्त्री यह चाहती है कि भुसकी पवित्रता कभी खतरेमें न पड़े भुसे ज्यादा सचेत रहनेकी जरूरत है।

भुसे पहले यह खयाल या घमंड तो छोड़ ही देना चाहिये कि सतीधर्म या पतिव्रतधर्मके भुसके संस्कार भितने बलवान हैं कि भुनके कारण वह किसी पुरुषकी तरफ खिंचेगी ही नहीं। ये संस्कार बड़े महत्त्वके हैं। भुनकी ताकत भी बहुत होती है। फिर भी भिस ताकतको भितना महत्त्व नहीं दिया जाना चाहिये कि जिससे वह यह सोचने लगे कि पुरुषोंके साथके सहवास या संसर्गमें किसी तरहकी मर्यादाका पालन न करने पर भी वह सुरक्षित है। भिसलिये यह मानते हुमे भी कि भिन संस्कारोंका बल बहुत बड़ा है स्थूल मर्यादाके पालनमें कभी लापरवाही नहीं करनी चाहिये।

पतिव्रतधर्मके संस्कार डालनेके लिये शास्त्रोंने शिक्षकोंने या घरके बड़े-बूढ़ोंने चाहे जितनी कोशिश की हो तो भी यह बात याद रखनी चाहिये कि कुओंमें पानी हो तभी हौजमें आवेगा। अगर पुरुष शीलके पालनमें ढीले हों तो स्त्रियां शीलका मजबूतीसे पालन करनेवाली हो ही नहीं सकतीं। क्योंकि लड़कीको भी पिताके गुण दोषोंकी विरासत नहीं मिलती अैसा देखनेमें नहीं आता। मतलब यह कि अगर पुरुषोंकी पत्नीव्रतकी भावना तेज हो तो ही स्त्रियोंकी पतिव्रतकी भावना तेज हो सकती है। और पुरुषोंकी पत्नीव्रतकी भावना तेज होती है अैसा देखनेमें नहीं आता। अिस कारणसे भी स्त्रियोंको अपनी पतिव्रतधर्मकी भावना पर जरूरतसे ज्यादा विश्वास नहीं करना चाहिये।

अुसमें भी जहां स्त्रीको अपने पति या कुटुम्बसे किसी तरहका असन्तोष हो जहां अुसका अनादर होता हो या अुसके गुणोंकी कदर न होती हो अुसके प्रति प्रत्यक्ष रूपमें प्रेम या ममता न बतायी जाती हो या जहां आदर्श या स्वभावके किसी मतका भाव हो वहां अगर कोअी दूसरा पुरुष स्त्रीके आदर्श या स्वभावके ज्यादा अनुकूल बरताव करनेवाला मिल जाय और अुसके साथ कुछ ज्यादा प्रेम या आदरका बरताव करे, थोड़ी हमदर्दीसे अुसे कोअी बात बतावे सिखावे समझावे या अुपयोगी सिद्ध हो तो अुसके लिये अैसी स्त्रीके मनमें अपनेपनका भाव पैदा होना स्वाभाविक माना जायगा। अैसे पुरुषके दिलमें अगर चोर छिपा हो या बादमें आकर घुस जाय, तो अुसके द्वारा स्त्रीके स्वभावमें रही अूपर बताअी हुअी भावुकता और कृतज्ञताकी भावनाका दुरुपयोग होनेका पूरा डर है।

अिसलिअे राजमार्ग — सैकड़ों स्त्रियोंके लिअे निर्भयतासे चलनेका मार्ग — तो यही है कि परपुरुष चाहे जितना सच्चा सादा प्रेमल शुद्ध और आदर्शवादी मालूम हो तो भी अुसके साथ अेकान्तमें न रहा जाय हंसी-मजाक न किया जाय, विशेष प्रयोजनके बिना अुसका अंगस्पर्श न

किया जाय या न होने दिया जाय मर्यादाको लांघकर असुके साथ न बरता जाय।

लाखों आदमियोंमें अकाध स्त्री या पुरुष ही अैसा हो सकता है जो मर्यादाके बन्धनमें न रहते हुअे भी पवित्र रह सकता है। वे अपनी अुमर हमेशा पांच बरसके बच्चे जितनी ही समझते हैं और दूसरे स्त्री पुरुषोंके लिअे माता या पिता अथवा लड़की या लड़केके सिवा दूसरी दृष्टिको समझ ही नहीं सकते। अैसी साध्वी स्त्री या साधु पुरुष पूजने लायक हैं। लेकिन जो कभी भी विकारका अनुभव कर चुके हैं अुन्हें तो भागवतका यह वचन सच मानकर ही चलना चाहिये

तत्सृष्टसृष्टसृष्टेषु कोऽन्वखण्डितधी पुमान्।
ऋषिं नारायणमृते योषिन्मय्येह मायया? ॥

अेक नारायण ऋषिको छोड़कर ब्रह्मा, देव दानव मनुष्य पशु, पक्षी वगैरामें से अेक भी कोअी अैसा है, जो सर्जनकार्यमें स्त्रीरूपी मायासे खण्डित न हुआ हो? जो पुरुषको लागू होता है, वही स्त्रीको भी लागू होता है।

हरिजनबन्धु, ३० ९ ३४

रिवाजों और हमें पडी हुओी आदतों पर निर्भर करता है। अेकाध वैरागी या बाबाको सिर्फ लंगोटीमें देखकर या अेकाध गरीब मजदूरनीको समय मंगी हालतमें देखकर किसी साधारण स्त्री या पुरुषमें भी विकार पैदा नहीं होता। क्योंकि अुनका यह नंगापन शृंगारके लिअे नहीं होता। लेकिन पूरा शरीर ढंककर या बुर्का ओढ़कर भी कोअी नट या नटी अथवा कोअी रसिक स्त्री या पुरुष विकार पैदा कर सकता है। क्योंकि अुनका वस्त्र ढंकना भी शृंगारके लिअे विलासके लिअे होता है। कमसे कम कपड़े पहन कर शरीरके बहुतसे भाग खुले रखना यह आजकलकी फैशन है। गरीब लोग भी अैसा ही करते हैं। लेकिन व अिस शृंगार — रसिकता — कला समझकर नहीं करते। अिसलिअे अुनका यह पहनाव निर्दोष होता है। फैशनके लिअे अैसा करनेवालेका पहनाव निर्दोष नहीं कहा जा सकता। फिर भी अुस फैशनका भी अेक बार परिचय हो जानेके बाद अुसका आकर्षण कम हो जाता है। यह आकर्षण कम हो जाता है अिसीलिअे तो बार-बार फैशनें बदलती रहती हैं। क्योंकि आकर्षण पैदा करना ही तो फैशनका खास ध्येय होता है।

अिसलिअे मैं यह नहीं मानता कि धर्मकी रक्षाके लिअे घूंघट या पर्देकी जरूरत है। घूंघटस स्त्री-जातिके साथ अन्याय हुआ है अुसे कभी तरहके बुरे नतीजे भी भोगने पड़े हैं तथा अुसके विकासमें रुकावटें पैदा हुअी हैं। अिसलिअे अगर यह अनुभव हो कि स्त्रियोंके पर्दा करनेसे पुरुषोंके विकार कुछ शान्त रहते हैं तो भी अुसे धर्मका नियम नहीं बनाया जा सकता।

मै जब यह कहता हूं कि सिर्फ मनकी पवित्रता पर आधार न रखकर स्थूल नियम भी पालन चाहियें तो अुसका यह मतलब नहीं है कि मैं स्थूल नियमोंके पालनको मनकी पवित्रताकी जगह देता हूं।

हरिजनबन्धु, ७-१ '५४

१०

अभी अितना ही

स्त्री-पुरुष सम्बन्ध पर मैंने जो तीन लेख लिखे हैं अुन पर काफी चर्चा हुअी मालूम पड़ती है। अुन विचारोंको पसन्द करनेवाली कुछ अंश तक पसन्द करनेवाली और नापसन्द करनेवाली टीकायें मेरे पास आअी हैं। और अुनमें से अैसी सामग्री आसानीसे अिकट्ठी हो सकती है जिस पर कअी लेख लिखे जा सकते हैं। मित्रोंने अंग्रेजी अखबारोंकी जो कतरनें मेरे पास भेजी हैं अुमसे मालूम होता है कि विलायतमें भी अिस सवालकी आजकल काफी चर्चा हो रही है। फिर भी हरिजनबन्धु के अुद्देश्य और मर्यादाका विचार करने पर मुझे लगता है कि अुसमें अिस विषयकी चर्चा लगातार मैं चालू नहीं रख सकता। अिनमें से जितने सवाल सिर्फ शहरी या बहुत पढ़े-लिखे या सुधरे हुअे समाजमें ही तीव्र बन गये हैं और जिनसे हरिजन गांवके लोग या अुनमें काम करनेवाले लोग लगभग अछूते हैं अुन सवालोंकी चर्चाके लिअे अिस पत्रमें कम स्थान हो सकता है।

लेकिन मैं दो-तीन बातोंकी ओर पाठकों और टीका करनेवालोंका ध्यान खींचता हूं। पहली यह कि कोअी चीज अुतावले बनकर नहीं पढ़नी चाहिये। अपने लेखोंमें मैंने जो बात लिखी नहीं सुझाअी नहीं अुसका भी कुछ टीकाकारोंने मुझ पर आरोप किया है। अुदाहरणके लिअे कुछ लोगोंको अैसा लगा कि मैंने यह नियम सुझाया है स्त्रियों और पुरुषोंको अेक साथ मिलकर कोअी सामाजिक काम करने ही नहीं चाहियें मिलें तो भी विनोदका अेक भी वाक्य नहीं बोलना चाहिये वगैरा। अैसा अर्थ अुन्होंने कैसे निकाला यह मेरी समझमें नहीं आया। लेकिन यह जरूर है कि मैं स्त्री-पुरुषोंके परस्पर मिलनेमें मर्यादा-पालनकी

आवश्यकता मानता हूं। और जो मर्यादायें मैंने सुझाओ हैं वे मेरे खयालसे स्त्री-पुरुषोंके साथ मिलकर काम करनेमें बाधा नहीं डालतीं। यह मैं सोच भी नहीं सकता कि साथ मिलकर काम करनेके लिअे अेक-दूसरेके साथ अेकान्तमें रहने अेकान्तमें गुप्त बातें करने, जानबूझकर अेक-दूसरेके अंगोंको छूने वगैराकी जरूरत क्यों पैदा होनी चाहिये। अेक खास अुमरमें केवल पुरुष-पुरुषका और स्त्री-स्त्रीका अैसा सहवास भी अनिष्ट होता है तब यदि स्त्री-पुरुषका साथ ज्यादा अनिष्ट सिद्ध हो तो कोअी अचरजकी बात नहीं।

कुछ नौजवान अिस बातका विश्वास दिलाते हैं कि १० बरसकी भर जवानीमें होते हुअे और जवान लड़कियोंके साथ आजादीसे मिलते हुअे भी अुन्होंने पवित्र जीवन बिताया है और मेरी बताअी हुअी मर्यादाओंको पालनेकी जरूरत नहीं महसूस की। अुनका जीवन पवित्र रहा है यह अुनकी बात मैं सच मान लेता हूं और अुन्हें बधाअी देता हूं। मैं चाहता हूं कि अुनकी यही स्थिति जीवनके अन्त तक बनी रहे। लेकिन सावधान कर देता हूं कि जीवनके अितने ही अनुभवसे वे फूलकर कुप्पा न हो जायं। यह तो अैसी बात हुअी जैसे कोअी कहे कि हम २० बरस तक चले नहीं अिसलिअे चलनेका डर झूठा है।

बहुतसे नौजवानोंको शायद यह पता नहीं होगा कि पुरुषके जीवनमें — और खास करके महत्त्वाकांक्षी पुरुषके जीवनमें — नीचे गिरनेका समय ३५,४० की अुमरके बाद शुरू होता है। डॉक्टरों मनोवैज्ञानिकों और बूढ़ोंका अनुभव है कि पिछले २५ बरसके आंकड़े यह बताते हैं कि व्यभिचारी जीवन बितानेवाले पुरुषोंका बड़ा हिस्सा ३५,४ की अुमर पार कर चुकनेवालोंका रहा है। अिसके पीछे अेक कारण भी रहता है। अिस अुमर तक अुत्साही नौजवानोंके हृदयमें विषय-भोगके बजाय छोटी-मोटी अभिलाषायें पूरी करनेके मनोरथ ज्यादा बलवान होते हैं। भोगविलासका अिस अुमरमें प्रमुख स्थान नहीं होता। अिससे वे अिस अिच्छाको दबा भी देते हैं। अिस अुमरमें भी जो नौजवान भौतिक

पीछे पड़ा हो वह रोगी कहा जा सकता है। जिस अुमरके बाद अुसके जीवनमें थोड़ी स्थिरता आती है वह दौड़धूप और चिन्ताओंसे मुक्त हो जाता है शायद कुछ फुरसतवाला आजाद और पहलेके बनिस्बत खाने-पीनेके ज्यादा सुभीते पा सकनेवाला हो जाता है। भिसके साथ ही अुसकी महत्वाकांक्षायें भी ठंडी पड जाती हैं और अगर अुसका जीवन प्रपंचमें बीता हो तो वह कुछ-कुछ धूर्त भी बन जाता है। भिसके साथ अगर अुसकी सदाचार और नैतिकताकी भावना कमजोर हो तो अुसके गिरनकी संभावना बढ़ जाती है। भिसीलिये यह कहा जाता है कि व्यभिचारी पुरुषोंका बड़ा हिस्सा भिस अुमरको पार कर चुकनेवाला होता है।

भिस परसे यह कहा जा सकता है कि ३० बरस तक ब्रह्मचर्य पालनेकी बात कहना किसी असमव बातकी सूचना नहीं है। लेकिन भिसका यह अर्थ नहीं किया जा सकता कि भिस अुमर तक नियम पालनकी जरूरत नहीं या नैतिक भावनाका सस्कार मजबूत करनेकी जरूरत नहीं या कि अुस अुमरसे पहले विवाह सम्बन्ध जोड़े बिना किया गया विषय-भोग निर्दोष है। यह तो भिस तरह कहने जैसा है कि चूंकि आम तौर पर केन्सर ३५ ४० की अुमरके बाद होता है भिसलिये अुस अुमर तक तो यह रोग पैदा करने वाली चीजें छूटस खाभी जा सकती हैं।

जो तीन अग्रेजी लेख मेरे पास भेजे गये हैं अुनमें ऑक्सफार्ड कॅम्ब्रिज जैसे बड़े विश्वविद्यालयोंमें पढ़नेवाले युवक-युवतियोंके सम्बन्धोंकी चर्चा की गभी है। लेखक अलग-अलग रायके हैं। लेकिन तीनों लेखक भेक बात तो मजूर करते हैं। वह यह कि पिछले २५ बरसोंके बनिस्बत भिन २५ बरसोंमें शादीसे पहल युवक-युवतियोंके बीच संभोगकी मात्रा बढ़ गभी है यह कहनेमें अतिशयोक्ति नहीं है कि लगभग भेक तिहाभी स्त्रियां शादीसे पहले संभोग कर चुकी होती हैं। और भैसा करना नैतिकताके खिलाफ है यह मान्यता अब नहीं रही या वह तेजीसे मिट

रही है। संतति-नियमनके साधनोंकी मददसे जिसका स्थूल डर कम हो गया है। अेक लेखक जिसमें अंग्रेज जनताका नाश देखता है। मैं अुसके साथ सहमत हूं। हमारे देशमें भी यह विचारधारा फैल रही है यह बुरी बात है। जिसमें मैं हिन्दुस्तानकी प्रजाका कल्याण नहीं देखता।

लेकिन जितनी चर्चा काफी होगी। व्यास बनाम जैमिनिका यह झगड़ा बहुत पुराना है और जीवनके अन्त तक चलता ही रहेगा। जिसके पीछे सिर्फ सच्चे या गलत तर्कका भेद नहीं बल्कि मनकी रचनाका भेद है। बुद्धिमान पाठक नीर-क्षीर-न्यायसे जिसमें से जो पसन्द हो वह ले और बाकी छोड़ दे जिससे ज्यादा आशा नहीं रखी जा सकती।

हरिजनबन्धु, २१-१०-'३४

११

सहशिक्षा

जब आचार-धर्मकी मर्यादाओंका अतिरेक होता है मर्यादाओंकी मर्यादा टूटती है तब अुलझनें पैदा होती हैं। जब तक विवेकयुक्त मर्यादायें कायम करके अुन्हें पालनेका आग्रह रहता है तब तक कठिन समस्यायें पैदा नहीं होतीं।

मर्यादाका अतिरेक दो तरहसे होता है अस्वाभाविक मर्यादायें बांधकर और अुचित मर्यादाओंकी अुपेक्षा करके।

स्त्री और पुरुषके बीचका भेद गाय और घोड़ेके जैसा योनिभेद नहीं है बिल्ली और चूहे जैसा खानेवाले और खाये जानेवाले प्राणियोंका भेद तो वह और भी कम है। स्त्री और पुरुषके बीच लिंगभेद है — योनिभेद नहीं। जो नियम भिन्न अलग यानिके प्राणी मानकर अलग-अलग बाड़ों या पींजरोंमें रखनेकी कोशिश करते हैं अुन नियमोंका भी भंग होता है। क्योंकि अिनके भीतरकी सजातीयता किसी न किसी तरह जोर किये बिना नहीं रहती।

लेकिन स्त्री और पुरुषके बीच लिंगका भेद तो है ही। यह भेद अकस्मात पैदा नहीं हो गया बलिक कुदरतका अेक महत्त्वपूर्ण और व्यापक सत्य है। अिस भेदके पीछे अुनके अलग-अलग धर्म रहे हैं। यह लिंगभेद है ही नहीं अैसा मानकर आचरण करनेकी कोशिश की जाती है तो यह कोशिश भी बेकार जाती है। क्योंकि यह भेद प्रकृतिका ही बनाया हुआ है अिसलिअे वह भी किसी तरह जोर किये बिना नहीं रहता।

मनुष्य भी तो आखिर अेक पशु ही है। अिसलिअे अगर वह अपनेको पशु समझे और पशुकी तरह ही बन्धनोंको न मानकर प्रकृतिकी प्रेरणाके अनुसार बरताव करे तो यह अेक दिशाका अतिरेक है। क्योंकि मनुष्यको प्रकृतिने तो पशु बनाया है लेकिन अुसने अपना जीवन प्रकृतिकी गोदमें ही नहीं रख छोड़ा। अुसने अपना सारा रहन-सहन और जीवन-व्यवस्था बिगाड़ी या सुधारी है। यानी कितनी ही बातोंमें बिगाड़ी है तो कितनी ही बातोंमें सुधारी भी है। अिसलिअे बिलकुल अनियन्त्रित या प्रकृति द्वारा नियंत्रित जीवन ही वह नहीं जी सकता। अिस सचाओीको न माननेसे अेक अतिरेक पैदा होता है।

लेकिन मनुष्य अप्राकृत या संस्कृत बना हुआ है अिसलिअे वह सब प्राणियोंके समानधर्मोंसे सर्वथा परे जा सकता है वह पशु है ही नहीं —अिस खयालमें से दूसरा अतिरेक पैदा होता है। क्योंकि विकृति और सम्कृति (बिगाड़ और सुधार) दोनों डालें प्रकृतिमें से ही निकली हैं। और अुसीमें से आखिरकार अुन्हें जीवन-रस मिलता है। अिसलिअे अपनेमें रहे पशुभावको भी अुसे समझना ही पड़ेगा। अिसके सिवाय कोअी चारा नहीं।

अिस तरह मनुष्य दूसरे प्राणियों जैसा प्रकृतिका अेक बालक है। अुसमें प्रकृतिको बिगाड़ने या सुधारनेकी ताकत तो अवश्य है पर अुससे

पूरी तरह स्वतन्त्र हो जानेकी ताकत नहीं है। दूसरे प्राणियोंकी तरह अुसमें स्त्री और पुरुषके भेद हैं। ये भेद गाय और घोड़ेकी तरह योनिभेद पैदा करनेवाले नहीं, बल्कि गाय और बैलकी तरह अलग अलग धर्म पदा करनेवाले हैं।

यह सारी हकीकत हम ध्यानमें रखें तो ही अुलझनें सुलझ सकती हैं। अिसमें से अेककी अुपेक्षा करें या दूसरी बातको बहुत ज्यादा महत्त्व दे दें तो अुलझनें पैदा होंगी ही।

* * *

अूपर कहा गया है कि मनुष्यने प्रकृतिको विकृत भी किया और सस्कृत भी किया है। यह विकृति और सस्कृति अेक-दूसरेसे अलग भी नहीं की जा सकती। प्रकृति कुछ अिस तरहकी चीज है कि जब तक कोअी अुसे छेड़ता नहीं तभी तक वह शुद्ध प्रकृति रहती है। अुसे छेड़ते या छूते ही वह कुछ हद तक विकृत होती है — बुरे नतीजे देनेवाली बनती है और कुछ हद तक संस्कृत होती है — अच्छे नतीजे लेनेवाली बनती है। अुसे हर बार छूनेसे जो डाल फूटती है अुसमें विकृति और संस्कृति दोनोंके अंश रहते हैं।

अुदाहरण लीजिये प्राणी अपनी दिगंबर अवस्थासे शरमाते नहीं। वे ठंड और धूपसे बचनेके लिअे गुफामें खड्डेमें पेड़के नीचे या झाड़ीमें घुसते हैं। लेकिन वह सिर्फ शत्रुओंसे या दुश्मन प्राणियोंसे बचनेके लिअे अपने नंगपनको छिपाने या गुप्त रहनेके लिअ नहीं।

लेकिन मनुष्यको अपने नंगेपनसे शरम मालूम हुअी और अुसने खानगीपन (privacy) की अिच्छा की। अुसने कपड़े पहने और मकान बनाये। प्राकृत (कुदरती) स्थितिको छेड़ा। जिससे अुसने संस्कृति और विकृति दोनों फल पाये हैं। अुसके कपड़ों और घरमें से अुसकी समाज-व्यवस्था पैदा हुअी। लेकिन अुसके कपड़ों और घरने ही अुसे ज्यादा विलासी बनाया। अुसके कपड़े और घर सिर्फ अुसकी रक्षाके ही साधन

नहीं रहे बल्कि अुसके भोग-विलासको बढ़ानेवाले साधन भी बने। अिस कारणसे अुसका संयम और भोग दोनों पशुसे अलग तरहके रहे।

अिसी तरह वह पशुओंके बीच होनेवाले नर-मादाके कुदरती व्यवहारसे भी शरमाया। अुसने कुटुम्बकी व्यवस्था बनाओ। प्रकृतिको और छेड़ा। लेकिन अिसमें से भी अुसे संस्कृति और विकृति दोनों ही फल मिले। अुसने कुटुम्बके जरिये कअी अच्छे गुणों और सभ्यताका विकास किया। मां-बेटे बाप-बेटी भाओ-बहन वगैराके बीच दोनोंके विजातीय होते हुअे भी साधारण तौर पर अविकारी प्रेमका विकास किया। दूसरी तरफ वह संकुचित विचारवाला भी बना कुटुम्ब जाति देश वगैराके अभिमानमें बंध गया।

*　　　　*　　　　*

मनुष्यके लिये अब फिरसे प्रकृतिकी गोदमें जाकर प्राकृत जीवन बिताना कठिन है। क्योंकि अुसने जो अेक अवयव पाया है और जिसके मीठे फल भी चखे हैं अुसे वह अपनेमें से निकाल नहीं सकता। वह अवयव बुद्धि – विवेक – है। जब तक मनुष्य बुद्धिमान प्राणी बना रहेगा तब तक अुसके लिअे प्रकृतिका शुद्ध प्राणी बनना असंभव है। अुसका संस्कृत और विकृत हुअे बिना भी छुटकारा नहीं।

अुसकी बुद्धि अुसे किसी न किसी तरह प्रकृतिको छेड़नेकी प्रेरणा देती है और आगे भी देती रहेगी। जैसी हालत है वैसीकी वैसी बनी रहे — या वह अपने आप बदले तो भले बदल — अिससे मनुष्यको कभी सन्तोष नहीं हो सकता। वह प्रकृतिको संस्कृत बनानेकी कोशिश करता ही रहेगा। और संस्कृत बनानेकी कोशिशमें अुसे विकृत भी बना देगा। अिस विकृतिको बसमें रखना मनुष्यका हमेशाका कर्तव्यभार माना जायगा। घोड़े पर बैठकर अुसे अुसकी मरजीसे चलने देनेवालेके लिअे लगाम और रकाब रखनेकी जरूरत नहीं। लेकिन घोड़ेको अपनी मरजीके मुताबिक चलानेकी अिच्छा रखनेवालेको तो दोनों ही रखनेके सिवाय कोअी चारा नहीं। और लगाम व रकाब दोनों पर

हमेशा ध्यान रखे बिना अुसका काम नहीं चल सकता। हां यह ध्यान रखनेकी अुसे अैसी आदत पड़ जाय कि अुसमें अुसे खास मेहनत मालूम ही न पड़े तो बात दूसरी है। यह मुहावरेका — कुशलताका नतीजा माना जायगा। लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि मुहावरा हो जानसे अुसे अिस तरफ ध्यान ही नहीं देना पड़ता। बात सिर्फ अितनी ही है कि ध्यान देनेमें अुसे कोअी श्रम नहीं मालूम होता।

अिस तरह मनुष्यने कुटुम्ब बनाकर यह अनुभव किया कि स्त्री-पुरुषके बीच अविकारशील प्रेम भी सिद्ध किया जा सकता है। मां-बेटे बाप-बेटी और भाअी-बहनमें लिंगभेद होते हुअे भी अुनके बीच अेक तरहका अैसा स्वाभाविक प्रेम हो सकता है जिसका विकारके साथ कोअी सम्बन्ध न हो।

लेकिन समझदार मनुष्यने यह भी देखा कि यह प्रेम भी विकारके भयसे बिलकुल मुक्त है अैसा नहीं कहा जा सकता। यह प्रेम-सम्बन्ध संस्कृतिसे निर्माण हुआ है कुदरती नहीं है। अिसलिअे अुसकी भी अगर सावधानीसे मर्यादा न बांधी जाय तो वह भी विकारवाला बन सकता है। मनुष्यने अिस प्रेमकी महत्ता और पवित्रता समझी और अुसे बनाये रखनेकी जरूरत महसूस की। अुस प्रेमकी शुद्धताको कोअी आंच न आवे अिसलिअे अुसने मां-बेटे, बाप-बेटी और भाअी-बहनके बीच भी व्यवहारके नियम सुझाये अुनके बीचके प्रेमाश्वको भी लगाम और रुकावटका अंकुश लगा दिया।

* * *

प्राणियोंकी तरह ही — लाखोंमें से अेकाध व्यक्तिको अपवाद मानें तो — अधिकतर मनुष्योंमें बेरमवर विजातीय परिचय और स्पर्शकी वासना जाग्रत होती है। प्रजातंतुको चालू रखनेके लिअे कुदरतने जो योजना बना रखी है अुसीके अनुसार यह वासना पैदा होती है। परिचय, परिचयात्मक स्पर्श और संभोग — अिस तरह क्रमशः यह वासना बढ़ती है।

पशु कपड़े नहीं पहनते और घर बनाकर कुटुम्बके रूपमें बधे नहीं रहते अिसलिअे अुनकी यह वासना प्रकृतिकी प्ररणाके अधीन ही रहती है। प्रकृति अमुक समय अुनकी अिस वासनाको जाग्रत करती है और वह समय बीत जानेके बाद अुसे शान्त भी कर देती है। मनुष्य विकृत और संस्कृत बना होता है अिसलिअे अपनी वासनाके नियंत्रणका रास्ता अुसे खुद ही सोचना पड़ता है।

अिससे स्त्री-पुरुषके परिचयकी स्पर्शकी और संभोगकी मर्यादा पैदा होती है।

अिस मर्यादाके भीतर होनेवाला परिचय सद्भावनाओंका पोषण करता है स्पर्श सेवाके लिअे होता है और संभोग निर्दोष होता है। अिस मर्यादाको छोड़कर होनेवाला परिचय और स्पर्श विलासी भावनाओंका पोषण करता है और अुसका परिणाम व्यभिचार और वर्णसंकरता होता है।

किन्तु परिचय स्पर्श और सम्भोगकी मर्यादा बांधनेके बजाय अुनका बहुत ज्यादा निषेध किया जाय तो भी काम नहीं चलता। अिससे प्रकृतिकी प्ररणा मनुष्यको बुरे रास्ते ले जाती है।

* * *

अिस तरह सहशिक्षाका सवाल अिस बड़े सवालका ही अेक अंग है कि स्त्री-पुरुषके परिचय स्पर्श और संभोगकी मर्यादा क्या होनी चाहिये।

क्योंकि सहशिक्षामें सिर्फ लड़के-लड़कियोंको अेक साथ पढ़ानेकी ही समस्या नहीं है। बल्कि शिक्षकों और शिष्याओं तथा शिक्षिका (या गुरुपत्नी) और शिष्योंके सहवास और स्पर्शकी तथा स्त्री-पुरुषकी मित्रता और सहकार्यकी भी समस्यायें हैं।

* * *

बहुतसे लोग अैसा कहते हैं और मैं भी अिसे स्वीकार करता हूं कि जीवनमें ब्रह्मचर्याश्रमका सबसे बड़ा महत्त्व है। लेकिन यह बात

भी याद रखनी चाहिये कि ब्रह्मचारीका जन्म भी गृहस्थके घर ही होता है। अर्थात् यह बात समझनेकी जरूरत है कि प्रजाका गृहस्थ-जीवन जितना पवित्र होगा अुससे ज्यादा पवित्र ब्रह्मचारी कोअी समाज निर्माण नहीं कर सकेगा। जिस प्रजाका गृहस्थ-जीवन अपवित्र होगा — पतिव्रत और पत्नीव्रतका आदर्श शिथिल होगा — अुस प्रजामें बहुतसे शुद्ध ब्रह्मचारी कभी नहीं हो सकते।

अिसलिअे यह जांच करनेकी जरूरत है कि हमारा कौटुम्बिक जीवन कैसा है। हम अुसे जितना शुद्ध मानना चाहते हैं अुतना शुद्ध वह है नहीं।

स्त्रियोंको हम पातिव्रत्य और सतीत्वका अुपदेश देते आये हैं। सती स्त्रियोंकी हमने कितनी ही कथायें गढ़ डाली हैं। सतीकी नामावलीके श्लोक भी रचे गये हैं। परन्तु यह बात अच्छी तरह समझ लेनेकी जरूरत है कि यदि पुरुषोंके बहुत बड़े भागमें पत्नीव्रतकी भावना शिथिल हो तो अत्यन्त सावधानीसे सतीत्वकी रक्षा करनेवाली स्त्रियां समाजमें पैदा हो ही नहीं सकतीं।

खास विस्तारसे हम अिस विषय पर विचार करेंगे तो पता चलेगा कि

अेक अब्रह्मचर्यके दोष सहशिक्षाकी संस्थाओंमें ही होते हैं अैसा नहीं है केवल लड़कों या लड़कियोंकी संस्थाओंमें भी व होते हैं और परिवारके बीच भी होते हैं।

दूसरा अिस विषयमें पुरुषके दोषोंके प्रति समाजको जितनी घृणा नहीं है जितनी कि स्त्रियोंके दोषोंके प्रति है। खुद या खुदके लड़केने कोअी दोष किया हो तो कुअेंमें डूब कर मर जाने जैसा नहीं लगता न यही लगता है कि अब कभी अैसे लड़केका मुंह भी नहीं देखना चाहिये। लेकिन अपनी पत्नी या लड़कीने दोष किया हो, तो खुदको या कुटुम्बको कलंक लगने जैसा महसूस होता है। परन्तु जो दूसरेके कुटुम्बको कलंक लगनेकी बातको तुच्छ मान

सकता है, अुसका अपनी पत्नी या लड़कीके प्रति या अुसे भ्रष्ट करनेवालेके प्रति गुस्सा करना बेकार है।

तीसरा हम अिन हकीकतोंको न भूलें

ठेठ प्राचीन कालसे दुनियामें वेश्यावृत्ति राज और समाज द्वारा मान्य किये हुअे धंधेके रूपमें पोषण पाती आअी है।

वाममार्गका भी अेक तत्त्वज्ञान बना लिया गया है और अुसने व्यभिचारको साधनाका अेक अंग माना है। वेदान्तके विचारकोंने भी कअी बार अुसका समर्थन किया है और अुसे पोसनेवाला भक्तिमार्ग भी मौजूद है।

जिनमें शरीरस्पर्श अनिवार्य हो जाय अैसे व्यक्तिगत सेवाके सारे धंधे आम तौर पर स्त्रियोंके ही माने जाते हैं जैसे रजवाड़ोंमें दासियां अस्पतालोंमें नर्सें गुसलखानोंमें मालिश करनेवाली स्त्रियां।

अूंचे माने जानेवाले वर्णोंमें ब्रह्मचर्य वैधव्यका पालन कराया जाता है और आर्थिक जिम्मेदारीसे बचनेके लिअे ही पुरुषों और स्त्रियोंको अविवाहित जीवनकी जरूरत महसूस होती है।

चौथा सामाजिक तत्त्वज्ञानमें आज नीचेके विचार फैल रहे हैं

१ विवाह अेक कृत्रिम व्यवस्था है। यह पशुधर्म — या जिसे अिन विचारोंके हिमायती मुक्त प्रेम कहते हैं वह नहीं है। प्रायोगिक (experimental) विवाह सीमित कालके विवाह वगैरा प्रथाओंकी चर्चामें चल रही हैं।

२ संभोगसे प्रजोत्पत्ति होनेका और कितने ही रोग हो जानेका डर रहता है। अिसे अगर सुरक्षित ढंगसे टाला जा सके तो अुसके प्रति किसी तरहकी धर्म या अधर्मकी भावनासे देखनेकी जरूरत नहीं बल्कि केवल स्वास्थ्यकी परस्पर संमतिकी और आनन्द-प्राप्तिकी दृष्टिसे विचार करनेकी जरूरत है। यह अेक तारुण्योचित परन्तु थोड़ा जोखमभरा खेल ही है। अिसे धर्माधार या कामाचार मानना वहम है।

३ लिंगभान (sex consciousness) का पैदा होना ही विकारका कारण है। विजातीय परिचय या स्पर्श विकारका कारण नहीं है। विजातीय परिचय या स्पर्शकी आदत न हो तो थोड़े निमित्तसे ही यह भान पैदा हो जाता है। परिचय और स्पर्शकी हमेशाकी आदत पड़ जानेके बाद खुद और सामनेवाला व्यक्ति पुरुष है या स्त्री जिसका खयाल नहीं आता और विकारका अनुभव नहीं होता।

४ बाप-बेटी मां-बेटे और भाअी-बहनको भी मर्यादामें रहकर बरताव करना चाहिये अैसा सुझानेवाले स्मृतिकारमें विकृत लिंगभानकी हद हो गअी है। अुलटे यह विचार सुझाना चाहिये था कि बाप-बेटी मां-बेटे या भाअी-बहन जिस निःसंकोच भावसे आपसमें बरताव करते हैं वही निःसंकोच भाव गुरु और शिष्याको शिक्षिका (या गुरुपत्नी) और शिष्यको विद्यार्थी और विद्यार्थिनीको या दूसरी तरहसे साथ-साथ काम करनेवाले स्त्री-पुरुषोंको आपसी व्यवहारमें दिखानेकी आदत डालनी चाहिये।

जो पिता या भाअी लड़की या बहनका हाथ पकड़ते हुअे या अुसके साथ अकेला बैठते हुअे या अुसके कंधे पर हाथ रखते हुअे या प्रेम अुमड़ने पर अुसे चूमते हुअे या अुसे वस्त्रहीन दशामें देखते हुअे विकारमें पड़ जाता है वह बहुत छिछोरा आदमी होना चाहिये। और यदि जिस मामलेमें वह निर्विकार और निःसंकोच रह सकता है तो दूसरी स्त्रियोंके साथ क्यों नहीं रह सकता? जिसलिअे वह जिस तरह अपनी लड़की या बहनके साथ व्यवहार करे, अुसी तरह अपनी शिष्या या सखीके साथ निःसंकोच व्यवहार रखनेकी आदत डाले।

* * *

मुझे लगता है कि सहशिक्षाके कारण दोष पैदा होते हैं और अलग-अलग शिक्षा पानेसे नैतिक पतन नहीं होता अैसा नहीं है। लेकिन स्कूल-कॉलेजोंमें और समाजमें धार्मिक तत्त्वज्ञानके नाम पर जो अूपर जैसे विचार फैल रहे हैं वे आजके अब्रह्मचर्य सम्बन्धी दोषोंके लिअे अेक महत्त्वका कारण हैं।

जिन विचारोंको मैं प्रजाको नैतिक पतनकी ओर ले जानेवाले मानता हूं। जब किसी देश या धार्मिक सम्प्रदायमें पैसा बढ़ जाता है तब अैसा तत्त्वज्ञान अलग-अलग रूपोंमें अुत्पन्न हो जाता है। लेकिन वह सिर्फ पैसेवाले वर्गमें ही नहीं रहता। दुर्भाग्यसे वह गरीबोंमें भी फैल जाता है और अुसके बुरे नतीजे अुस तत्त्वज्ञानके अुत्पादकोंकी अपेक्षा गरीबोंको ज्यादा भोगने पड़ते हैं।

संस्कृतिका अर्थ अूर्ध्वगति है। अूर्ध्वगतिमें पल-पल पर कोशिश करनी पड़ती है। बहुत जोरसे अूंचा फेंका हुआ गेंद कुछ सेकण्ड तक अूंचा चढ़ता मालूम होता है, लेकिन नीचे गिरानेवाली शक्तिका ही असर पल-पलमें अुस पर ज्यादा-ज्यादा आक्रमण करता जाता है और अुससे वह पल-पल नीचे ही गिरता जाता है। क्योंकि अुसे अूंचा चढ़ानेवाली शक्ति हाथमें से छूटनेके बाद चालू नहीं रहती। नीचे गिरनेमें गतिकी तेजी बिना प्रयत्नके बढ़ती जाती है। मानव जीवनमें संस्कारिता और विकारिताको अैसे ही नियम लागू होते हैं। मानव-जातिने अनेक अच्छे गुणोंका और अूंचे चरित्रका जो विकास किया है, वह कदम-कदम पर अुसके चिन्तन, मनन और अभ्यासका प्रयत्न करनेसे हुआ है। मगर यह प्रयत्न छोड़ दिया जाय, तो चाहे जितनी अूंची कोटिकी संस्कारिता पहुंची हो, तो भी थोड़े समयमें अुसका लोप हो सकता है। अहिंसक मनोवृत्तिवाले मनुष्यको अपनी वृत्ति हिंसक बनानी हो, निःस्वार्थको स्वार्थीपन सीखना हो, या यतिको स्वच्छंदी बनना हो, तो मनको विचलित करनेके लिअे अेक ही बार धक्का देनेकी जरूरत है। बादमें तो वह अपनी कल्पनासे भी ज्यादा नीचे गिर जाता है। लेकिन अहिंसक वृत्ति सीखने, निःस्वार्थ बनने और संयमी होनेमें पल-पल पर मनका अनुशीलन करनेकी जरूरत पड़ती है।

* * *

प्राणियोंका लिंगभेद अेक जन्मसिद्ध भेद है — प्रकृतिका भेद है। अिसलिअे लिंगभानका स्फुरण बिलकुल न हो, यह तो अशक्य है। अिस

स्फुरणको संस्कारी या विकारी बनाना हमारे हाथमें है। विकारी स्फुरणकी भी आदत डाली जा सकती है और सस्कारी स्फुरणकी भी। आदत पड़ जानेके बाद होनेवाली क्रिया जितनी सहजसाध्य या स्वाभाविक होती है कि अुसके बारेमें यह नहीं कहा जा सकता कि वह भान (consciousness) पूर्वक होती है। जिस स्वाभाविकतासे आंखकी रक्षाके लिअे पलकें हिल अुठती हैं सिर पर आनेवाले वारको रोकनेके लिये हाथ अूचा हो जाता है साअिकिलिस्ट अपना तोल संभालता है, पनिहारिन अपना शरीर और घड़ा समालकर पानी खींचती है, जिस स्वाभाविकतासे मूर्तिपूजकका माथा देवकी मूर्तिको देखकर झुक जाता है या अेक सभ्य पुरुष किसी परिचित व्यक्तिको मिलने पर नमस्कार करता है अुसी स्वाभाविकतासे संस्कारी पुरुष या स्त्री दूसरी स्त्री या पुरुषके साथ मर्यादा रखकर व्यवहार करते हैं। सभ्य समाजमें जैसे बड़े-बूढ़ा और बच्चोंके बीच आदर और व्यवहारके अेक प्रकारके नियम होते हैं समाजके बीच दूसरे प्रकारके होते हैं, अधिकारी और कर्मचारीके बीच तीसरे प्रकारके होते हैं, अुसी प्रकार स्त्री और पुरुषके बीच आदर और व्यवहारके अेक प्रकारके शिष्ट नियम माने गये हैं और सभ्य पुरुष अुनके अनुसार ही व्यवहार करता है। अिसमें लिंगभान नहीं अैसा नहीं कहा जा सकता। परन्तु अुसका विकारी स्फुरण होता है या स्पष्ट स्फुरण होता है यह भी नहीं कहा जा सकता। वह अुसका सहज स्वभाव ही बन जाता है। जिस प्रकार वह सभ्य समाजके अुठने बैठने खान पहनने वगैराके नियम पालता है अुसी तरह अिन नियमोंको पालनेमें वह अपनी सभ्यता समझता है। अिससे अुसकी और समाजकी दोनोंकी रक्षा होती है और संस्कारिता बढ़ती है।

* * *

स्त्री-पुरुषके सम्बन्धमें आज तक कितने ही मार्ग और रूढ़ियां प्रचलित हुअी हैं कुछ दक्षिण और कुछ वाम।

जिनमें से जो आशयकी दृष्टिसे दक्षिणमार्गकी मानी जा सकनेवाली किन्तु अतिरेकयुक्त होनेके कारण विकृत माग पर ले जानेवाली, रूढ़ियां हो गयी हैं उनका भी विचार कर लेना चाहिये।

पहला तरीका ऋष्यशृंगी पालन-पोषणका है। यह तरीका ऐसा परहेज रखकर बच्चेका पालन-पोषण करनेका है जिससे वह जिस अज्ञानमें रहे कि दुनियामें स्त्री-जातिका अस्तित्व ही नहीं है। जिसमें विजातिका दर्शन ही न हो जिस ढंगसे नियंत्रण रखनेकी अलग-अलग पद्धतियां काममें ली जाती हैं। स्त्रियोंके परदे — घूंघटके पीछे कुछ हद तक यही विचार रहा है।

दूसरा तरीका विकारका अस्तित्व मानकर ही विकारोंका निर्माण हुआ है, ऐसा समझकर विकारोंके अस्तित्वसे ही अिनकार करके जिस विश्वाससे पालन-पोषण करना कि जो निर्दोषता दो-तीन सालके बच्चोंमें होती है वैसी ही निर्दोषता जीवनमें हमेशा रह सकती है। यानी जिस तरह दो-तीन सालके बच्चोंके व्यवहार पर लिंगभानकी दृष्टिसे कोअी अंकुश नहीं होता अुसी तरह सब अुमरवालोंके लिये भी माना जाता है। यानी जिसमें यह मानकर चला जाता है कि अंकुश या नियमोंके बन्धनसे पवित्रता रखनेका विचार न करके बच्चोंमें रहे शुभ बीजोंको पोसा जाय व ही बड़े होने पर छूटसे परस्पर सम्पर्कमें आने पर भी अुन्हें निर्दोष रखेंगे।

अिन दोनों मार्गोंमें अतिरेक होनेसे प्रकृतिकी सत्ता विकृतिका वेग और संस्कृतिका नियम — अिन तीनोंकी अुपेक्षा होनेसे थोड़ासा भी निमित्त मिलते ही अिन मार्गोंमें पल-पुसकर बड़े हुअे लोगोंका जल्दी ही पतन हो जाता है।

अिससे अुल्टा तरीका वाममार्गियोंका है। अिसमें मर्यादाभंगका मजाक है। शिक्षाशास्त्र समाजशास्त्र वेदान्तशास्त्र योगशास्त्र और भक्तिशास्त्र सभीमें अिसके प्रवर्तक मिलते हैं। अिसमें अनैतिकताका बाकायदा प्रचार होता है।

* * *

दोनों सीमाओंका त्याग करके बीचका रास्ता अपनानेसे ही स्त्री-पुरुषोंके परस्पर व्यवहारमें पवित्रता रखी जा सकती है और संस्कारिताको बढ़ाया जा सकता है। जो परिवार या व्यक्ति लालचमें नहीं फंसे हैं या फंसकर भी बचकर निकल गये हैं अुनसे पूछा जाय तो मुझे लगता है कि वे संस्कारी मर्यादापालनकी जरूरतको स्वीकारेंगे।

सिर्फ मन चंगा का सिद्धांत शरीरको पवित्र नहीं रख सकता। केवल शरीरके स्थूल नियमोंका पालन मनके बिगाड़को रोक नहीं सकता और अिसलिअे अन्तमें शरीरका भी बिगड़नेसे रोक नहीं सकता। शुद्ध संस्कारोंका मनको अभ्यास कराना और अच्छे नियमोंका पालन करना — अिन दो सिद्धांतोंको माने बिना गति नहीं।

मेरी दृष्टिसे ये संस्कार और नियम अिस प्रकार हैं

१ स्त्री और पुरुष दोनोंका शरीर अेक पवित्र वस्तु है। अुसे बिना कारण किसीके स्पर्शसे दूषित नहीं करना चाहिये। किसीको — यानी स्त्रीको पुरुषका या पुरुषको स्त्रीका ही नहीं बल्कि स्त्रीको स्त्रीका या पुरुषको पुरुषका भी — बिना कारण स्पर्श नहीं करना चाहिये। जरूरतके बिना किसीका स्पर्श हो जानेसे बुरा मालूम हो और किसीका स्पर्श करनेमें संकोच हो अैसा स्वभाव बन जाना चाहिये। अिससे बिना कारण किसीका आलिंगन करना, हाथ पकड़ लेना, किसीके गलेमें हाथ डालना, किसीसे लिपट पड़ना वगैरा बातें बुरी — अशिष्ट — समझी जानी चाहियें। जगह होते हुअे भी किसीसे सटकर बैठनेका ढंग असभ्य माना जाना चाहिये। चुंबन अेक गन्दी क्रिया है। छोटे बच्चोंको सब कोअी चूमते हैं, लेकिन बच्चोंसे पूछा जाय तो मालूम होगा कि मांके अलावा किसी दूसरेका चूमना वे शायद ही पसन्द करते हैं। अितना ही है कि वे अुसे सह लेते हैं। छोटी अुमरके बच्चोंकी बहुत छोटे शिशुओंको चूमनेकी अिच्छा होती है। लेकिन अुसमें अुन्मादकी वृत्ति नहीं होती। अुनके मनमें जिस तरहका प्रेम अुमड़ता है वह ठीक वैसा ही है जैसा किसानोंको खेतमें

चूमते हुओ कोमल ककड़ी टिंडोरा, गिल्की वगैरा शाकभाजी देखकर अुमड़ता है, — यानी खा जानेका। किसी छोटे शिशुके सुकुमार हाथ-पांव देखकर बच्चोंके मनमें अुन्हें खाना खा जानेकी अिच्छा होती है। कभी लोगोंने बच्चोंको अैसा कहते सुना होगा। मनको काबूमें रखकर वे छोटे शिशुओंको चूमकर ही रुक जाते हैं। कम समझवाले बच्चे कभी-कभी अुन्हें काट भी खाते हैं। लेकिन वे अिस बातको शायद ही पसन्द करते हैं कि दूसरे अुन्हें चूमें। किसी भी तरहसे चूमने या चूमने देनेकी बातका नापसन्द करनेकी भावना अुनमें पैदा करनी चाहिये। बच्चोंको मुंसे सह लेनेके लिये मजबूर नहीं करना चाहिये।

यह नियम मां-बेटे बाप-बेटी भाभी-बहन सबको लागू होता है। क्योंकि यहां नियम नहीं बल्कि संस्कार बताया गया है।

२ अत्यन्त परिचित स्पर्श आधा संभोग ही है। पूरे संभोगके लिअ अेक व्यक्ति और आधे संभोगके लिये दूसरा अेक या अनेक व्यक्ति यह पवित्र जीवन नहीं है। अिसलिये अपने शरीरको परिचित स्पर्श करने देनेका अधिकार — बिना किसी आपत्तिके — अेकको ही हो सकता है। वह है अपना (विवाह हो जानेके बाद) पति या पत्नी। हरअेक स्त्री या पुरुषको अैसी अपेक्षा रखनेका अधिकार है कि अुसके साथ विवाह करनेवाले पुरुष या स्त्रीने किसीके स्पर्शसे अपना शरीर भ्रष्ट नहीं किया होगा।* जिस दम्पतीने आपसके अिस अधिकारकी निष्ठापूर्वक रक्षा की होगी वह दम्पती पवित्र है। अुनका संयम और संभोग समाजका कल्याण करेगा।

३ मां-बेटे बाप-बेटी और भाभी-बहनके सहवासमें पावन पालनेवाला प्रेम अेक अच्छे प्रकारका प्रेम-सम्बन्ध है। आपत्तिको छोड़कर यह सहवास भी अेकांतमें नहीं हो सकता। अिसमें भी जरूरत

---

* यानी पुनर्विवाहमें अपने पूर्व पति या पत्नीका अपवाद समझना चाहिये।

बिना अेक-दूसरेका स्पर्श नहीं किया जा सकता। अिस मर्यादामें रहकर अूपर बताये हुअे सस्कारोंवाला गुरु शिष्याके शिक्षिका शिष्यके शिष्य या शिष्या गुरुपत्नी अथवा शिक्षिकाके पतिके या विद्यार्थी-विद्यार्थिनियां आपसमें अेक-दूसरेके परिचयमें आवें तो अुससे कोअी नुकसान नहीं होगा बल्कि समाजका या अुन व्यक्तियोंका भला ही होगा। जहां यह सस्कारिता नहीं है अिन मर्यादाओंके लिअे आदर नहीं है वहां विजातीय परिचय जोखिमभरा है।

४ सस्कारी गृहस्थ अपने घरको अेक पवित्र स्थान मानते हैं। अुसमें भोग है, पर वह नियमित मार्गसे है यानी जिस तरह देवको अर्पण किये हुअे भोजनमें प्रसादकी पवित्र भावना है अुसी तरह अिस भोगके बारेमें पवित्र कर्मकी भावना है। अिसलिअे घरकी पवित्रता कायम रखनेके लिअे अुन्हें किसी पेढ़ीकी साख बनाये रखने जितनी चिन्ता रहती है। अैसी संस्कारितामें पल-पुसकर बड़े होनेवाले बच्चोंका पतन आसानीसे नहीं होता। अुसमें भाभी-बहन देवर भौजाओी ससुर-बहू सब साथ-साथ रहते हैं और अेक-दूसरेको देखकर न तो परदा करते या छिप जाते हैं न बोलना बन्द करते हैं न परदेमें से बोलते हैं लेकिन अिस सहवासमें मर्यादा जरूर रखते हैं। स्कूल-कॉलेजोंमें यही पवित्रता होनी चाहिये। स्कूल-कॉलेज कोअी वर-वधू खोजनेका बाजार नहीं दूसरोंकी लड़कियोंके साथ असभ्य या अनुचित बरताव करनेकी, हंसी-मजाक करनेकी जगह नहीं। शिक्षक वहां अपनी लड़कियोंको देखें विद्यार्थी अपनी मां-बहनोंको देखें तो यह सहवास अेक-दूसरेकी वृत्तियोंको स्थिर और गंभीर बनानेवाला हो सकता है। अगर यह भावना न हो तो अुसमें मैल पैदा हुअे बिना रह नहीं सकता।

५ पच्चीस-तीस बरस तक पवित्रतासे ब्रह्मचर्यका पालन करना असंभव है यह भ्रम दूर करना चाहिये। बच्चोंमें यह सस्कार डालना भी अुचित नहीं कि गृहस्थाश्रममें प्रवेश करना पतन है या शरमानेवाली चीज है। संभोग केवल कामाचार है यह भावना गलत है। यह मानकर

चलना ही अुचित है कि सैकड़ों स्त्री और पुरुष समय आने पर काम वासनासे प्रग्नित होंगे ही। अिसलिअे अुन पर अिस तरह संस्कार डालने चाहियें जिससे अुन्हें धर्मसे विरुद्ध न जानेवाले कामकी दीक्षा मिले। धर्मसे विरुद्ध न जानेवाल कामकी शर्तें ये हैं शादीके पहले किसी स्त्री या पुरुषके प्रति कामातुर दृष्टिसे देखना पाप ह, कामातुर दृष्टिसे किसीका स्पर्श करना भी पाप है। अिस स्पर्शकी जरूरत नहीं अैसा अनावश्यक स्पर्श यदि निर्दोष लग तो भी नहीं करना चाहिये क्योंकि वह कर्तव्यरूप नहीं है। अिस दृष्टिसे विवाहका अर्थ होता है अपने पवित्र रखे हुअे शरीरको धर्मके विरुद्ध न जानेवाले संभोग द्वारा धार्मिक प्रजा अुत्पन्न करनेके लिअे अर्पण करनेका समारंभ।

६ अिसलिअे कामातुर होकर पत्नी या पतिको खोजनेकी वृत्ति या किसी स्त्री या पुरुष पर पहले कामासक्त होकर बादमें अुससे शादी करनेका निश्चय करनेकी प्रवृत्ति संस्कृति नहीं बल्कि विकृति है। हरअेक व्यक्ति अेक खास अुमरमें कामवासना या पति-पत्नी व्यवहारका मतलब समझता ही है। तब फिर अुसके लिअे यही विचार करना रह जाता है कि अिस वासनाका भान होते हुअे भी अुसका वेग अुसमें कितना तेज है, और कितने समय तक अुसके लिअे संयमधर्म पालना जरूरी ही है। अगर शरीरसंपत्ति और दूसरी परिस्थितियां अनुकूल हों वह योग्य अुमरको पहुंच चुका हो और अेक व्यक्तिके स्पर्श या संभोगको सहन कर लेने जितनी अुसकी स्पर्शघृणा कम हो गअी हो, तो कामकी दृष्टिसे नहीं बल्कि व्यवहारकी दृष्टिसे वह योग्य साथी खोजनेका प्रयत्न करे या अपने हितचिन्तकों द्वारा कराये।

७ कामवासनाको समझ सकनेवाले और पति-पत्नीके व्यवहारकी कल्पना कर सकनेवाले सम्कारी स्त्री-पुरुष अेक-दूसरसे थोड़े दूर रहें और किसीका भी स्पर्श करनमें तथा किसीको भी निगाह जमा कर देखनेमें ज्यादा सावधानी रखें तो अिसमें कोअी दोष नहीं बल्कि विनय — सभ्य व्यवहार — ही है।

यानी अिन नियमों द्वारा हजारों स्त्री-पुरुषोंके लिअे राजमार्ग सुझाया गया है किसी लोकोत्तर व्यक्तिके लिअे नियम नहीं बताया है। परन्तु कोअी लोकोत्तर पवित्र व्यक्ति अैसे नियम पालनेसे छोटा नहीं हो जायगा। वह धर्मके विरुद्ध न जानेवाला कामी नहीं बल्कि निष्कामी होगा। धर्मके अविरोधी कामकी बात सुनकर अुसे कामना पैदा होनेका डर ही नहीं है। और, अगर समाजमें हजारों दम्पती गृहस्थाश्रममें धर्मके विरुद्ध न जानेवाले कामका सेवन न करते हों तो अैसे निष्काम स्त्री-पुरुषोंके पैदा होनेकी आशा ही नहीं रखी जा सकती। जिस समाजके गृहस्थाश्रममें धर्म-अविरुद्ध कामका अभाव हो अुस समाजका नैष्ठिक ब्रह्मचर्यकी महिमा गाना बेकार है।

जिस समाजमें अैसे संस्कारोंको पोषण मिले अुसमें स्त्री-पुरुषोंकी मिली-जुली संस्थायें चल सकती हैं। जाग्रत सद्यालुकी देखरेखमें चलनेवाली अैसी संस्थाओंमें कमसे कम दोष होंगे। दोष होंगे ही नहीं अैसा विश्वास तो कौन दिला सकता है? लेकिन मुझे अैसा लगता है कि जिस समाज और संस्थाकी अैसी विचारधारा संस्कारिता और नियमावलि हो अुसमें यदि कोअी दोष हुआ तो वह व्यक्तिका रोग होगा संस्थाका नहीं। अुसी तरह वह रोग अुपद्रवका रूप भी नहीं लेगा।

प्रस्थान १९३५

१२

आदर्श (?) लग्न

काठियावाड़के मेरे दौरेमें धामलदास कॉलेजके विद्यार्थियोंकी तरफसे मुझसे अेक प्रश्न नीचका पूछा गया था

आदर्श लग्न किसे कहा जाय? 'दम्पतीका देव (या दिव्य?) प्रेम' यह कथन सत्य है या नौजवानोंको लग्नके प्रपंचमें फसानेकी अेक तरकीब है?

अिस विषयमें मेरी राय यह है

आदर्श लग्न अेक मनोरथ — कल्पना है। सच पूछा जाय तो हमेशा बदलनेवाले अिस संसारमें किसी भी विषयमें संपूर्णता सम्भव नहीं है। संसार हमेशा गतिशील रहता है, अिसीलिअे टिका हुआ है। अगर किसी क्षण वह पूर्ण बन जाय तो दूसरे ही क्षण अुसमें जो परिवर्तन होगा वह अुसे अपूर्ण बनानेवाला ही माना जाना चाहिये। वर्ना पूर्ण बनकर अुसे अेक जगह रुक जाना चाहिये यानी नष्ट हो जाना चाहिये।

अिस न्यायसे आदर्श यानी पूर्ण सतोषकारक लग्न सम्भव नहीं है। अिसके बारेमें कल्पना-जगतमें विहार करनेसे सिर्फ झूठी आशायें बंधती हैं। और जब वे आशायें पूरी नहीं होतीं तब भावुक युवक-युवतियां अपनी कल्पना-जगतकी भूलें देखनेके बजाय अपने आसपास भूलें खोजते हैं और हताश हो जाते हैं अुनका दिल टूट जाता है।

स्त्री और पुरुष हरअेकका अपना-अपना व्यक्तित्व होता है। चाहे जितनी कोशिश की जाय तो भी वह पूरी तरह नष्ट नहीं हो सकता या दूसरेके साथ पूरी तरह अेकरूप नहीं हो सकता। व्यक्ति व्यक्तित्वका अर्थ ही यह है कि वह किसी किसी बातमें दूसरेसे

अलग और मेल न खानेवाला स्वभाव रखे। जब कभी दूसरेके साथ अुसका मेल न बैठनेका मौका आवेगा तब कुछ न कुछ संघर्ष अवश्य होगा।

लेकिन अैसा होते हुअे भी ज्यादातर मनुष्योंमें — कहा जा सकता है कि ८० फी सदीसे ज्यादा मनुष्योंमें — अेक-दूसरेको निभा लेनेकी भारी शक्ति रहती है। अगर विरोधोंके होते हुअे भी मनुष्योंमें अेक-दूसरेको निभा लेनेकी शक्ति नहीं होती तो समाज जैसी कोअी चीज ही दुनियामें नहीं होती। पति-पत्नीमें भी यह शक्ति होती है। ८० फी सदीसे ज्यादा पति-पत्नी अिस तरह अेक-दूसरेको निभा लेनेकी कला सीख लेते हैं। और अिसलिअे कभी कभी लड़ाअी-झगड़ा हो जाने पर भी अेक-दूसरेमें सुख मान लेते हैं। दो-चार फीसदी पति-पत्नी ही अैसे निकलेंगे जिनके जीवनमें लड़ने झगड़नेके — विरोधी व्यक्तित्वके — मौके अितने कम आते हैं कि अुन्हें अेक-दूसरेको निभा लेनेकी शायद ही कोशिश करनी पड़ती हो। अैसे लग्न या विवाह आदर्श माने जा सकते हैं। अिसके खिलाफ, कुछ फीसदी विवाह बिलकुल असफल भी रह सकते हैं — यानी यह संभव है कि ये पति-पत्नी अेक-दूसरेको निभा ही न सकें। लेकिन ये दोनों स्थितियां अपवादरूप मानी जायेंगी। बहुत बड़ा भाग अैसे स्त्री पुरुषोंका होता है जिनके बारेमें न तो यह कहा जा सकता कि अुन्हें अेक-दूसरेको निभानेकी कोशिश ही नहीं करनी पड़ती न यही कहा जा सकता है कि निभानेकी कला अुनमें नहीं होती। आप लोगोंमें से भी बहुत बड़े भागमें यह शक्ति है ही। कभी किसी तरहका विरोध आपसमें पैदा ही न हो अगर पैदा हो तो तलाक दे दूं या आत्म हत्या कर डालूं या पागल हो जाअूं — असकी अैसी कल्पना करनेके बजाय मैं आपसे कहूंगा कि अपूर्ण स्त्री-पुरुष आपसमें लड़ाअी-झगड़ा जरूर करेंगे लेकिन साथ ही साथ अुनमें अेक-दूसरेको निभा लेनेकी जो स्वाभाविक वृत्ति होती है अुस पर आप विश्वास रखिये। अिसमें

ज्यादा तकदीरवाले या कमनसीब अपवाद तो रहेंगे ही लेकिन जिन अपवादों परसे हम साधारण नियम नहीं बना सकते।

लेकिन तब तो आप पूछेंगे कि जिस लग्नके झगड़ेमें फसा ही क्यों जाय? लग्नके झगड़ेमें फसने न फसनेका सवाल स्त्री-पुरुषके बहुत बड़े भागके लिये बुद्धिका सवाल ही नहीं है। 'दम्पतीके दिव्य प्रेम' के बारेमें तो थोड़े ही कवियोंने गाया होगा लेकिन बहुतसे साधु-सन्तोंने ब्रह्मचारी-जीवनकी महिमा गाअी है। वे संसारके जालमें न फसनेका अुपदेश दे गये हैं। गांधीजीने पुकार-पुकार कर यह कहा कि गुलामोंको सन्तान नहीं बढ़ानी चाहिये। लेकिन ये सब बुद्धिकी दलीलें हैं। बुद्धिमें विकारोंको हमेशा वशमें रखनेकी शक्ति नहीं होती। प्रकृतिकी नियामक शक्तिने प्रजातन्तु कायम रखनेके लिये प्राणीमात्रमें जो अेक बलवान विकार पैदा किया है, अुस विकारका तूफान बहुतसे स्त्री-पुरुषोंमें जितना तेज आता है कि वहां विवेककी दलीलें काम नहीं देतीं। किसी कविके कहनेसे नहीं बल्कि विकारके जिस तूफानके वश होकर आपमें से ज्यादातर युवक-युवति विवाहका विचार करेंगे और संभव है अुस वक्त आपको जो रोकने जाय अुससे आप नफरत करें।

लेकिन शायद आपने जिस विचारसे यह सवाल पूछा हो कि विवाहके पाशमें फसे बिना ही स्त्री-पुरुष अपने विकारोंको तृप्त करें तो कैसा? मैं जानता हूं कि अैसे विचारों पर आजकल काफी चर्चा चल रही है। नियतकालिक विवाह प्रयोगात्मक विवाह वगैरा शब्द प्रचलित हो रहे हैं। जिस बारेमें मैं कहूंगा कि ये विचार मानव-समाजको खड्डेमें डालनेवाले फन्दे साबित होंगे। हो सकता है कि जिन विचारोंके प्रवाहको और जिनके असरको मैं रोक न सकूं। लेकिन जिस बारेमें अपने विचार तो मैं जरूर बताअूंगा। मानव-समाजने आज तकमें जो संस्कृति निर्माण की है— गिरते पड़ते और ठोकरें खाते हुअे भी बीच-बीचमें अुच्च जीवनकी जो-जो श्रेणियां अुसने सर की हैं — अुसमें कौटुम्बिक जीवनका

सबसे बड़ा हाथ रहा है। लड़ने झगड़ने पर भी प्रेमसे, निष्ठासे अेक-दूसरेके साथ हमेशा रहनेवाले और अेक-दूसरेके लिअे तथा बच्चोंके लिअे अनेक मुसीबतें अुठाकर खपनेवाले पति-पत्नी और अुनकी देखरेखमें पल-पुसकर बड़ी होनेवाली प्रजा द्वारा जो संस्कारिता विकसित हुअी है, अुसने मानव-समाजके सामने महान गुणोंके अुदाहरण पेश किये हैं। भले कामविकार ही विवाहकी प्रेरणा करनेवाला कारण रहा हो, फिर भी लग्न-व्यवस्थाने सिर्फ विकारका ही पोषण नहीं किया, बल्कि बहुतसे सद्गुणोंका विकास भी किया है। लग्न-व्यवस्थाके नाशसे विकारकी निरंकुश तृप्तिका दरवाजा खुल जाता है, यह आरोप भले विचारने जैसा हो। लेकिन अुसका अिलाज लग्न-प्रथाका नाश नहीं, बल्कि दम्पती-जीवनमें संयमके अुपाय खोजना है। भिन्न विचारोंके प्रवाहमें न बहकर जब आपको विवाहकी अवश्य भूख मालूम हो, तब यथासंभव सावधानी रखकर हमेशाके लिअे अपना जीवनसाथी खोज लेना और अुसके साथ विवाह-संबन्धमें बंधकर जीवनभर अेक-दूसरेके वफादार मित्र बन रहनेका विचार बढ़ाना।

अैसे विवाहोंके कुछ ध्यानमें रखने लायक अुदाहरण हमारे साहित्यमें मिलते हैं। अुनमें से आप अपने स्वभावके अनुसार पसन्द कर सकते हैं। राम और सीता, नल और दमयंती, हरिश्चन्द्र और तारामती, शिव और पार्वती या शिव और सती तथा आप चाहें तो पाण्डव और द्रौपदी भी अनेक तरहसे दम्पती-जीवनके आदर्श पेश करते हैं। ये लग्न-सम्बन्ध बिलकुल निर्दोष चाहे न भी हों, फिर भी हरअेकमें किसी न किसी तरहकी विशेषता रही है, जिसका अनुकरण किया जा सकता है। विवाहके अैसे किसी आदर्शके लिअे कोशिश करनेकी और आदर्शोंकी जितनी ही मात्रासे सन्तोष माननेकी मैं आपको सलाह देता हूँ।

हरिजनबन्धु २१-१२-'३५

स्पर्शकी मर्यादा

जहां तक मैं जानता हूं हिन्दुस्तानमें — हिन्दू और मुस्लिम दोनों समाजोंमें — जो सदाचारधर्म माना गया है वह जवान मां बहन और बेटीको पराओ स्त्रीकी कोटिमें रखता है और दूसरेकी स्त्रीके साथ बरताव करनेमें जो मर्यादायें पालनी चाहियें अुन्हें ही अिनके साथके बरतावमें भी पालनेकी सूचना करता है। मैं हिन्दू आदेशको अिस तरह समझता हूं कि पराओ स्त्रीको मां बहन या बेटीके समान मानना चाहिये और मां बहन और बेटीके साथ भी अेक खास अुमरके बाद मर्यादायुक्त बरताव ही करना चाहिये। अिस तरह वह सभी स्त्रियोंके साथ अेकसा बरताव करनेका आदेश देता है।

यह बात विचारने जैसी है कि मां बहन या बेटीको भी अिस तरह दो हाथ दूर रखनेके रिवाजका खंडन जरूरी और अुचित है या नहीं, धर्म और समाजके सुधारके लिअ जरूरी है या नहीं। अेकाध लोकोत्तर विभूतिका व्यवहार अिस रिवाजके बंधनसे परे हो तो यह दूसरी बात है। अुसकी लोकोत्तर या अलौकिक विशेषताके कारण समाज अुसमें कोअी दोष न माने और अुसे दरगुजर कर ले। लेकिन 'दोष न माने' का अर्थ सिर्फ अितना ही है कि करोड़ों आदमियोंमें से अेकाधके लिअ हमेशा अपवाद रहता ही है।* लेकिन अगर सभी आदमी अुस रिवाजको तोड़ें तो समाज दरगुजर नहीं करेगा, यानी अुनकी निन्दा

* अिस वाक्यमें 'हमेशा अपवाद रहता ही है' के बदलेमें अब मैं यह सुधार करना चाहता हूं: 'समाज अुदारतासे या कमजोरीसे अुस पुरुषके दूसरे महान गुणोंको ध्यानमें रखकर अुसके दोषोंकी अुपेक्षा करता है।' (जनवरी १९४८)

किये बिना नहीं रहेगा। अिसलिअे अिस विचारके साथ मेरा बहुत विरोध नहीं कि अेकाध विरले पवित्र व्यक्तिके लिअे अिसका अपवाद हो सकता है।* लेकिन जो बाप अपनी मां, बहन या बेटीका निकटसे स्पर्श करनेमें — अुदाहरणके लिअे कंधे पर हाथ रखकर चलनेमें — संकोच रखता है, वह संकुचित मनोवृत्तिवाला है अैसा कहा जाय तो वह मुझे मंजूर नहीं।

सच पूछा जाय तो स्त्री-पुरुषके बीचकी जो मर्यादा है, वह स्त्री-स्त्रीमें या पुरुष-पुरुषमें पालनेकी नहीं है, अैसा भी नहीं कहा जा सकता। स्त्रियां स्त्रियोंके साथ और पुरुष पुरुषोंके साथ जानबूझकर जरूरतसे ज्यादा स्पर्श वगैरा करें, तो वह दोष ही माना जायगा। यानी स्त्री-पुरुषके बीच जो मर्यादायें बतायी गयी हैं, वे दो विभिन्न जातियोंके कारण ही *नहीं बतायी गयी हैं। बात सिर्फ अितनी है कि दो विभिन्न जातियोंके* लिअे अुनका ज्यादा खुलासा किया गया है — अुन पर ज्यादा जोर दिया गया है।

गांधीजी कहते हैं, जो ब्रह्मचर्य स्त्रीको देखते ही डर जाय, अुसके स्पर्शसे सौ कोस दूर रहे, वह ब्रह्मचर्य नहीं। साधनामें अुसकी जरूरत होती है। लेकिन अगर वह साध्य बन जाय, तो वह ब्रह्मचर्य नहीं। ब्रह्मचारीके लिअे स्त्रीका, पुरुषका, पत्थरका, मिट्टीका स्पर्श अेकसा होना चाहिये।

अिस भाषाको आवश्यक अध्याहारोंके साथ समझें, तो वह मुझे ठीक मालूम होती है। अध्याहार ये हैं: 'जो ब्रह्मचर्य मनमें पैदा हो जाने पर भी स्त्रीको देखते ही डर जाय ' तथा 'विवेक-बुद्धि रखकर ब्रह्मचारीके लिअे स्त्रीका ।' जिस तरह हम गीताजीके समदृष्टिवाले श्लोकमें अिन शब्दोंको अध्याहारसे स्पष्ट समझते हैं, अुसी तरह यहां भी समझना चाहिये। यहां जैसे समदृष्टिका अर्थ

* 'अिसलिअे अपवाद हो सकता है' — यह वाक्य मैं निकाल देना चाहूंगा। (जनवरी १९४८)

यह नहीं होता कि गायकी तरह ब्राह्मणको भी बिनौले और घास खिलाये जायं या ब्राह्मणकी तरह गायके लिअे भी आसन बिछाया जाय बल्कि यह होता है कि हर प्राणीके प्रति समानवृत्ति रखते हुअे भी हरअेककी विवेकयुक्त सेवा करनी चाहिये। अुसी तरह यहां भी हरअेकका समानवृत्तिसे परन्तु विवेकयुक्त स्पर्श ही किया जाय। दो वर्षकी बाला और २५ वर्षकी युवतीके स्पर्शके प्रति ब्रह्मचारीकी समानवृत्ति होनी चाहिये। फिर भी दो वर्षकी बालाको वह गोदमें बैठाये अुसके साथ बालोचित खेल खेले और आदत हाने पर कभी अुसे चूम भी ले तो यह सब निर्दोष माना जायगा। लेकिन २५ वर्षकी युवतीके साथ वह यह सब नहीं करेगा — नहीं कर सकता। यानी संकटका कारण पैदा हुअे बिना नहीं करेगा और चूम लेनकी तो संकटमें भी कल्पना नहीं की जा सकती। यह भेद किस लिअे? अिसका कारण यह ह कि दोनोंके बारेमें अेकसा निर्विकारी होन पर भी किसके साथ क्या बरताव अुचित है यह अुसकी आंखें जानती हैं, मन जानता है और बुद्धि जानती है। यही अुसका विवेक है।

अेक मनुष्य पूर्ण ब्रह्मचारी हो अपनी निर्विकारी अवस्थाके बारेमें अुसके मनमें जरा भी शंका न हो छाती ठोककर यह भी कह सके कि कैसी भी परिस्थितिमें अुसके मनमें विकार पैदा नहीं होगा फिर भी अगर वह मनुष्य-समाजमें साधारण जनताके लिअे सम्भाव्य जो नियम जरूरी हों अुनकी मर्यादामें रहे तो क्या अिसे अुसके ब्रह्मचर्यका दोष माना जायगा? और अगर अैसे नियम पालनसे वह अधूरा ब्रह्मचारी माना जाय तो तो अिससे क्या? क्योंकि खुद कितना निर्विकार है अिसकी अपने सन्तोषके लिअे परीक्षा लेनेकी या जगतके सामने यह सिद्ध कर दिखानेकी अुसकी जिम्मेदारी — पैदा हुआ धर्म — ही नहीं है। अुसकी जिम्मेदारी या धर्म तो यह है कि हर बातमें अुसका आचरण अैसा हो जिसका यदि अविवेकी पुरुष भी अनुकरण करे तो भी अुससे समाजमें दोषयुक्त

आचरणका निर्माण न हो। असका अनुकरण करनेसे समाजमें रसिक स्त्री-पुरुषोंकी मनोदशाको पोषण न मिले बल्कि संयमी स्त्री-पुरुषोंकी मनोदशा निर्माण हो और असे पोषण मिले।

किसी आदमीमें बड़ी-बड़ी संख्याओंका मुहस गुणाकार कर डालनेकी शक्ति होती है। यह असकी विशेष सिद्धि मानी जायगी। फिर भी अगर वह शिक्षक बन जाय तो असे बालकोंको संख्यायें लिखकर और अेक अेक अंक लेकर गुणाकी रीति असि तरह सिखानी होगी मानो असके पास अैसी कोअी सिद्धि है ही नहीं। अगर वह सिद्धि प्राप्त करनेका कोअी खास तरीका हो तो वह बालकोंको बताना चाहिये। यदि वह केवल जन्मसिद्ध शक्ति हो तो किसी समय वह भले असका अपयोग करे। लेकिन असिसे गुणाकार करनेकी गणितकी पद्धतिका निर्णय नहीं किया जा सकता। और बालकोंको सिखानेके लिअे वह असी पद्धतिका अपयोग कर सकता है। असी तरह जो दृढ़ ब्रह्मचारी हो असे अैसे नियमोंका शोधन और पालन बताना चाहिये जो समाजके प्रयत्नशील साधकों और योगियोंको ब्रह्मचर्यके रास्ते पर चलनेमें मददगार साबित हों। मैं असी दृष्टिसे अिस प्रश्न पर विचार किया करता हूं।

गांधीजीका अेक दूसरा वाक्य यह है — "धर्मके समझकर मैंने ढूंढ बिना अनायास ही स्त्रीका स्पर्श करनेका मौका आ गया तो ब्रह्मचारी असे स्पर्शसे भागेगा नहीं। अिस वाक्यमें भी 'धर्मरूपकी दृष्टिसे' 'धर्म समझकर' जैसे शब्द जोड़ने चाहियें। क्योंकि यह निश्चय करना कठिन है कि क्या क्या अनायास आ पड़ा है और क्या अनायास आ पड़ा मान लिया गया है। किसी क्रियाको करनेकी आदत डालनेसे वह सहज या स्वाभाविक हो जाती है। और फिर वह अनायास आ पड़ी मालूम होती है। अदाहरणके लिअे मुझे लेख लिखनेकी आदत है अिसलिअे कअी संपादक मुझसे लेखोंकी मांग किया करते हैं। अब अेक तरहसे यदि तो यह कहा जा सकता है कि लेख लिखनेका काम मुझ पर सहज या

अनायास ही आ पड़ता है। लेकिन हर समय वह धर्मके रूपमें आ पड़ता है अैसा कहना मुश्किल है। लेख लिखनेका धर्म आ पड़ा है अैसा तो कुछ अंशम भी तभी कहा जायगा जब अुस लेखके प्रकाशनकी जिम्मेदारी मुझ पर हो या कोअी विचार मुझे अितना महत्त्वपूर्ण मालूम हो कि अुसे जनता समक्ष तो अच्छा — अैसा मेरी विवेकबुद्धि मुझसे कहती हो। हम जानते हैं कि विवेकबुद्धिका अुपयोग करनेमें भी कभी-कभी हमें धोखा हो जाता है। परन्तु फिर भी यह तो माना ही जायगा कि यथासंभव हमने विवेकबुद्धिका अुपयोग किया। सारांश यह कि हरअेक अनायास आ पड़नेवाला कर्म धर्म नहीं ठहरता और अिसलिअे यह बचाव नहीं किया जा सकता कि कोअी कर्म अनायास आ पड़ा अिसलिअे किया। गीतामें यह अवश्य कहा गया है कि 'सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत्।' लेकिन जो धर्म न हो अुसे गीताने कर्म ही नहीं माना है। वह विकर्म है अिसलिअे अपकर्म है। अुसके लिअे अनायास आ पड़नेका बहाना नहीं किया जा सकता। फिर गीतामें 'सहज' का अर्थ 'अनायास' नहीं बल्कि अैसा है 'सह-ज — साथ अुत्पन्न हुआ — स्वाभाविक प्रकृति धर्मके अनुसार। कोअी कर्म सहज हो और कर्तव्यरूपमें आ पड़ा हो तभी दोषयुक्त होने पर भी वह नहीं छोड़ा जा सकता।

यह आप स्वीकार करते हैं कि ब्रह्मचर्यकी साधना बड़ी कठिन है। अिसका अर्थ यही है कि हमारे जमानेमें करोड़ों मनुष्योंके लिअे पूर्ण ब्रह्मचर्य असंभव-सा है। अधिक लिअे वह स्वाभाविक हो सकता है और अति पुरुषार्थीके लिअे प्रयत्नसाध्य है। अतः करोड़ोंके लिअे तो अैसा ही धर्म बताना होगा जिससे वे भोगमें मर्यादा पालें सकें अतिभोगकी तरफ न झुक जाय और मर्यादा पालनेवालोंकी दिनोंदिन संयमकी ओर प्रगति हो। मैं अैसा मानता हूं कि जिसके वंशमें पीढ़ियों तक अेकपत्नीव्रत और अेकपतिव्रत पाला गया होगा — अुसमें भी कितनी ही पीढ़ियों तक ब्रह्मचर्यके लिअे प्रयत्न किया गया होगा — अुसीकी पीढ़ीमें नैष्ठिक ब्रह्मचारी पैदा हो सकता है। अथवा अैसा कहा जा

सकता है कि जिसने जितने ही जन्म तक अेकपत्नीव्रत पाला होगा पत्नीके साथ भी ब्रह्मचर्य पालनकी कोशिश की होगी वह अेक जन्ममें नैष्ठिक ब्रह्मचारी होगा। मुझे लगता है कि ब्रह्मचर्यकी साधनाका मार्ग और मर्यादाके नियम जिस तरह सोचे जाने चाहियें।

जिस बारेमें हम सिर्फ कल्पनाके घोड़े दौड़ाना चाहें, तब तो कहींके कहीं पहुंच सकते हैं। यदि अैसा कहें कि जो स्त्रीके सहज या साधारण स्पर्शसे भागे वह ब्रह्मचारी नहीं तो जो अेकान्तवासम भाग या बलात्कारसे संभोग करने आनेवालेसे डरकर भागे मुसे भी ब्रह्मचारी कैसे कहा जाय? और शंकरकी कथामें बताया गया है वैसे गुस्सेसे कामदेवको जला देनेवाला भी ब्रह्मचारी कैसा? ब्रह्मचारी तो भागवतमें नारायणकी कथामें बताया गया है वैसको कहा जा सकता है। यानी जो अप्सराओंसे कह सके कि तुम भले *नाचो लेकिन मेरे तपके प्रभावसे मैं या तुम — दोनोंमें से किसीमें* भी यहां विकार पैदा ही नहीं होगा। विकारी वातावरणमें खुद तो निर्विकार रहे ही पर जो विकारीके विकारको भी शान्त कर दे वही सच्चा ब्रह्मचर्य है। अैसे ब्रह्मचर्यको साध्य मानें तो अुसकी साधना क्या है? जिसमें मुझे काजी शंका नहीं कि वह साधना अनावश्यक सामान्य स्पर्श करते रहना या स्त्री-पुरुषके साथ अेकांतवासके प्रयोग करते रहना तो हो ही नहीं सकती। मुझे तो लगता है कि जिस स्पर्शकी कोओी जरूरत ही नहीं अैसा हर तरहका स्पर्श त्याज्य ही माना जाना चाहिये। न सिर्फ स्त्री या पुरुषका ही न सिर्फ प्राणियोंका ही बल्कि जड़ पदार्थोंका भी अैसा स्पर्श त्याज्य है। स्पर्शेन्द्रिय सारी चमड़ी पर फैली हुआी है। और वह चाहे जिस जगहसे चाहे जिसके स्पर्शसे विकार पैदा कर सकती है। जितना ही है कि भागमें अुसकी सीमा है। जहां जड़ या चेतन — किसीका भी लिपटकर स्पर्श करनेकी अिच्छा होती है वहां *सूक्ष्म कामोपभोग है। जिस तरहकी स्पर्शेच्छा न हो और यदि* हो तो अुसके प्रति मन निर्विकार रहे — अैसी शक्ति और वृत्ति प्राप्त करना

ही ब्रह्मचर्यकी साधना है। जिसमें आखिर भागनेकी जरूरत न रहे यह सच है लेकिन शुरूमें या आखिरमें भी लिपटनेकी असे खोजनेकी या असकी आदत डालनेकी जरूरत नहीं हो सकती। सूक्ष्म स्पर्श अनायास नित्यके जीवनमें होते ही रहते हैं। आदतके लिअे परीक्षाके लिअे अुसन माफी हैं। जिस प्रकार त्वचा (चमड़ी) को जीतनेके लिअे सर्दी या धूपमें बैठना पचाग्निमें तपना कांटों पर सोना वगरा साधना जड़ और तामसी है अुसी प्रकार मिन स्पर्शोके दमनको साधना कहें तो वह रसिक और राजसी है। जिस रास्तेमें गिरे तो बहुत हैं लेकिन पार कौन लगे हैं यह प्रभु जाने!

अिस बारेमें हमें गांधीजीका अनुकरण करनेका मोह छोड़ देना चाहिये। गांधीजीकी तो सब मार्गोंमें पराकाष्ठा होती है। अुनके त्याग दीर्घयम और व्रतपालनका अनुकरण करके अुन्हें तो कोओ अपना जीवन धर्म बनाता नहीं। लेकिन अुनकी संगीतकी रुचि कलाकी रुचि स्त्रियोंके साथके निःसंकोच व्यवहार और कुछ सूक्ष्म सुघड़ताकी आदतोंका अनुकरण करनेका मोह होता है! लेकिन गांधीजीको जिस बातमें जिस क्षण अपनी भूल मालूम हो जाय अुसमें से अुसी क्षण पीछे हटते और सारे जगतके सामने अपना अपराध स्वीकार करके माफी मांगते अुन्हें संकोच नहीं होता। दूसरोंको तो प्रतिष्ठाके और अैसे दूसरे कितने ही विचार आते हैं।

मुझे लगता है कि गीताके अुस श्लोकको* आपने बहुत गलत तरीकेसे लागू किया है। आपके अर्थके अनुसार तो संयमके सारे प्रयत्न मिथ्याचारमें शामिल हो जायंगे। विवाहकी अिच्छा रखनेवाले अेक वृद्ध पुरुषको मन अिस श्लोकका अैसा ही अर्थ करते सुना है। वे कहते

* कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।
अिन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स अुच्यते॥ ३–६

कर्मेन्द्रियोंका संयम करके जो मूढ़ पुरुष मनमें विषयोंका स्मरण किया करता है वह मिथ्याचारी कहा जाता है।

कि अब मेरे मनमें तीव्र विषयवासना है तब मेरे स्थूल संयम पालनसे क्या होगा? यह तो केवल मिथ्याचार ही होगा। अिसलिअे मुझ चादी कर लेनी चाहिये। अ शराबके लिअ तड़पता रहता हा ब पराअी स्त्रीको कुदृष्टिसे देखता हो ग या किसीकी घड़ी चुरा लेनेका मन करता हो लेकिन वे अपनी अिन्द्रियोंको वशमें रखते हों तो क्या अिसे मिथ्याचार माना जायगा? अुन्हें क्या शराबका नशा व्यभिचार, चोरी वगैरा करना चाहिए? विषयोंका स्मरण हो अिच्छा भी हो जाय तो कर्मेन्द्रियोंका संयम गलत है — अैसा अिस श्लोकका अर्थ करना मुझ ठीक नहीं लगता। जैसा कि मैंने अूपर कहा है गीताके अनुसार जो कर्म धर्म्य नहीं वह कर्म ही नहीं है वह विकर्म है अपकर्म (बुरा काम) है। विकर्मकी तरफ चाहे जितना हमारा मन दौड़े हमें पागल भी बना द तो भी अुससे कर्मेन्द्रियोंको हमेशा हठपूर्वक रोकना ही चाहिये। परन्तु जो कम धर्म्य हों अुनमें अिन्द्रियोंका संयम करना चाहिये या नहीं यह प्रश्न पैदा हो तो गीता कहती है कि मनमें अुनकी आसक्ति रखना और स्थूल त्याग करना ठीक नहीं है। सबसे अुत्तम तो यह होगा कि आसक्ति न रखकर व कर्म किय जायं। गीताके प्रस्तुत विषयमें अर्जुन क्षात्र धर्म और क्षात्र स्वभाव दोनोंकी अुपेक्षा करके लड़ाअीसे स्थूल रूपमें निवृत्त होना चाहता था। वहां अुसका मिथ्याचार होनेकी संभावना थी। कितने ही कर्म अैसे होते हैं जिन्हें करनेकी धर्म — सदाचार — अिजाजत देता है लेकिन व अनिवार्य कर्तव्यके रूपमें नहीं होते। अैसे कर्मोंके बारेमें भी यह श्लोक लागू हो सकता है। अुनमें आसक्ति हो तो धार्मिक ढंगसे अुन्हें करते क्यों नहीं? लेकिन आसक्ति न हो तो कोअी करनेको कहता नहीं। पर आसक्ति है अिसलिअे अधर्मके ढंगसे करें, तो यह ठीक नहीं।

लेकिन आसक्ति हो तो भी वे कर्म करने ही चाहियें अैसा कुछ नहीं। साधक आसक्तिके समयमें ही संयमका प्रयत्न करता है। वह अिन्द्रियोंको रोकता है मनको मोड़ना चाहता है पर सफल नहीं होता। अुसका यह संयम कैसा है? सफलता नहीं मिलती अिसलिअे अुस समयके

लिअे हम भले अुस मिथ्याचार कहें। लेकिन यह अुसी तरह मिथ्या है, जिस तरह गणितका कोअी अटपटा सवाल सही रीतिसे किया जाने पर भी कहीं नजरचूकसे भूल हो जाने पर गलत अुत्तर दे और हम अुसे मिथ्या कहें। अिसमें अुत्तर गलत आया है लेकिन रीति सही है। अुसी तरह समझका प्रयत्न निष्फल गया लेकिन अुसकी रीति तो सही है। वह मिथ्याचार है अिसका मह मतलब नहीं कि वह सत्यविरोधी आचार है मतलब अुसका सिर्फ अितना ही है कि वह अुस क्षणके लिअे गलत — मिथ्याचार है। अुसे भी मिथ्याचार कहें तो अैसे सैकड़ों मिथ्याचार अुचित ही हैं।

अेक पत्र २५ ४ ३५

१४

प्रकीर्ण

मैं तो साफ देखता हूं कि भर जवानीमें पोसी हुअी अनेक अुमंगों और भोगोंकी आशाओंको बेरहमीसे खतम कर देनेमें ही हमारा पुरुषार्थ है।

भोगोंकी अिस आहुतियोंमें पहली आहुति विषयेच्छाकी होनी चाहिये। धर्म आध्यात्मिक जीवन आर्थिक स्थिति शारीरिक स्थिति राजनीति स्त्रीशिक्षा तत्त्वज्ञान अित्यादि — जिस-जिस दृष्टिसे भी मैं विचार करता हूं मेरे विचार मुझे ब्रह्मचर्यकी सीढ़ी पर ही लाकर खड़ा कर देते हैं। जब तक जनताकी सेवाके लिअे हजारों युवक-युवतियां अुद्देश्यके साथ और बुद्धिपूर्वक ब्रह्मचर्य पालनेका निश्चय नहीं करते तब तक हमारे देशके अुज्ज्वल भविष्यके बारेमें मुझे शंका ही है। हमारे शरीर निर्माल्य जैसे निकम्मे बनते जा रहे हैं। बालकोंको पौष्टिक खुराक नहीं दी जा सकती अुनकी देखभाल नहीं की जा सकती व्यवस्था या स्वच्छता नहीं रखी जा सकती फिर भी हमारा हिन्दू समाज अितना विवेकशून्य बन गया है कि क्या कहा जाय? अिस विवेकशून्यताको

किस तरहकी जड़ता समझना चाहिये? लेकिन याद रखिये कि ब्रह्मचर्यसे मेरा मतलब अविवाहित जीवनका नहीं है। मैं वीर्यकी रक्षा करनेकी बात कहता हूँ। यदि आपको अैहिक संकल्पों या पारमार्थिक संकल्पोंकी कोअी भी सिद्धि अिसी जीवनमें पानी हो तो मुझे ब्रह्मचर्यके बिना पानेकी आशा मत रखना।

गांधी जयंती नवम्बर, १९२४ ('साबरमती' से)

* * *

मैंने आपसे अविवाहित रहनेकी बात कही। अविवाहित जीवन पवित्रतासे बिताना चाहिये यह विद्यापीठके स्नातकोंसे तो कहनेकी जरूरत ही न होनी चाहिये। फिर भी अिस बारेमें कुछ कहनेकी जरूरत मालूम होती है। क्योंकि तरुण वर्गके बारेमें मुझे जो थोड़ा-बहुत अनुभव हुआ है अुस परसे मुझे अैसा लगा है कि कुछ तरुण मंडलोंमें पवित्रता और संयम पर कम जोर दिया जाता है और कभी-कभी अिनके बारेमें निरादर भी बताया जाता है। कुछ लोग यों भी दबे दबे कहते हैं कि पराक्रमी और देशोद्धारकके नाते आदर पाये हुअे बहुतसे पुरुषोंका खानगी जीवन अपवित्र था फिर भी वे अपने देशको विजयके रास्ते पर ले गये। नैतिक दृष्टिसे बात न करके सिर्फ व्यावहारिक दृष्टिसे ही कहूं तो जिनके पास कर्तव्य और साहसकी अपार कुदरती विरासत होती है, या जहां हत्याग्रही लड़ाअियां होती हैं और सैनिकों यानी दो पांवके पशुओंकी ही सेनामें भरती करनेकी अपेक्षा रखी जाती है तथा जहां कुल मिलाकर समाजका ही नैतिक स्तर पवित्र जीवनके लिअे कम आग्रहवाला होता है वहां शायद अैसा कहा जा सकता है कि पवित्र जीवन और देशके सुधारका आपसमें कोअी सम्बन्ध नहीं है। लेकिन हमने तो आग्रहपूर्वक या परिस्थितियोंसे मजबूर होकर सत्याग्रही लड़ाअीका रास्ता अख्तियार किया है। अिस रास्ते लड़ाअी करनेके लिअे हमें सारी जनताको तैयार करना है। लड़ाअीकी तैयारीके रूपमें स्वतंत्र रूपसे और लड़ाअीकी मददमें

नहीं हुअी अिसलिये बीचके समयमें हमें रचनात्मक कामक्रममें जुटना है — अिन सब कारणोंसे अगर आप लोग पवित्र जीवनका आग्रह न रखेंगे तो लड़ाअीमें आपकी भरती नहीं हो सकेगी।

अगर आप पवित्रतासे ब्रह्मचर्यका पालन करके सेवा करनेकी शक्ति या अुत्साह अपनमें न पाते हों तो आपके सामने अेक ही रास्ता रह जाता है जैसे दूसरी तरहसे हमारी शक्तिकी मर्यादाका अन्दाज लग गया है वैसे ही अिस बारेमें भी अन्दाज लग गया है अैसा समझकर सीधे शादी कर लें और अपने बादकी पीढ़ीके युवकोंसे यह कहकर सन्तोष मानें कि देशके भविष्य-निर्माणका काम तुम्हारे हाथमें है।

अविवाहित दशाके साथ जैसे पवित्र जीवन जरूरी है वैसे ही कार्यके प्रति अेकनिष्ठा भी जरूरी है। बहुतोंका यह अनुभव है कि अविवाहित पुरुष अपने काममें लगनके साथ जुटे ही रहेंगे अैसा विश्वास नहीं रखा जा सकता। अेक तरहकी स्वच्छन्दता लापरवाही या अस्थिरता अविवाहितोंका लक्षण बन जाती है। कुछ हद तक यह स्वाभाविक हो सकती है फिर भी विचारसे अुसे बचाया या बदला जा सकता है। अिस बात पर मैं आप लोगोंका ध्यान खींचता हूँ।

तृतीय स्नातक सम्मेलन
स्नातक धर्म नामक भाषणसे १२ १ '२९

* * *

जवानी यानी जीवनका वसन्तकाल। अुस समय हमारी नसोंमें जीवन फूटा पड़ता है। हमारे भीतरकी क्रियाशक्ति — अिस दिशामें काम करे या अुस दिशामें अिस तरह — बाहर निकलनेके लिअे तड़पती रहती है। भाव — शुद्ध हो या विकारी — अितने जोरसे अुठते हैं कि अुन्हें दबाना हमारे लिअे कठिन हो जाता है। कुछ भाव अशुद्ध अपवित्र त्याज्य हैं अैसे हमारे मन पर जबरदस्त संस्कार पड़े हों हमारी विवेकबुद्धिको भी अैसा लगता हो तो भी अुनके वश न होना हमारे लिअे कठिन होता है।

जवानीमें हजारमें से ९९९ आदमियोंमें विकार जोरसे अुठते ही हैं। परन्तु यदि हम पर बचपनसे माता-पिता या किसी पूज्य व्यक्तिकी या पालसखाकी भावनाओंका अिच्छापूर्वक आदर करनेका किसी खूब आदर्शको प्राप्त करनेका किसी प्रतिज्ञा या बड़े कामको पूरा करनेका देश या कुलके यशको मन्द या निस्तेज न होने देनेका या असा ही कोओ दूसरा अूंचा और बलवान संस्कार पड़ा होता है तो वह हमारे आवर्गोको योग्य दिशा देनेमें बहुत कीमती साबित होता है। हमारी विवेकबुद्धि हमें जो मदद नहीं कर सकती वह मदद हमें अिस तरहके बलवान सस्कारसे मिलती है। किसी व्यक्ति आदर्श व्रत प्रतिज्ञा मुद्रस्य देश कुल नाम वगैराके बारेमें हम बहुत ज्यादा आदरकी भावना रखते हों और अुसके लिये हम दिव्य शब्दका अुपयोग करें — तो असे *दिव्य के प्रति अत्यन्त आदर जवानीमें देरसबेर हमारा मजबूत माता* बन जाता है। जिसमें असे किसी दिव्य के लिये आदरका बलवान सस्कार नहीं होता अुसकी हालत टेनिसकी गेंदकी तरह अेक भाव और दूसरे भावके आवेगोंके बीच अुछलते रहनेकी हो जाती है।

जिसमें असे किसी भी अुदात्त दिव्य के लिये अत्यन्त आदरकी भावना नहीं होती अुसके दिलमें दूसरा आदमी असा आदर पैदा कर सकता है या जिसमें वह होता है अुसमें स्वयम् ही हो सकता है यह *मैं निश्चयके साथ नहीं कह सकता।* लेकिन अितना तो मैं निश्चय पूर्वक कह सकता हूं कि यह आदर मनुष्यकी अुन्नतिके लिये अत्यन्त आवश्यक है। और अगर आप यह पूछें कि आज असी कौनसी दिव्य चीज है जिसके लिये अत्यन्त आदरकी भावना रखकर आप अपनी सम्पूर्ण कर्तृत्वशक्ति और अपने परस्परकी भावोंके आवेगको सफल कर सकते हैं तो मैं कहता हूं कि वह दिव्य वस्तु हिन्दुस्तानके *मानव-समाजकी सेवा है।*

प्रस्थान १९२८
युवक और समाज नामक भाषणसे।

स्त्री पुरुष-मर्यादा

भाग दूसरा

लग्न-मीमांसा

अुपोद्घात*

यह लिखते हुअे मुझे अत्यंत संकोच हुआ है और होता रहता है। जब मैं कॉलेजमें पढ़ता था तभी से भावनाप्रेरक जीवनचरित्र लिखकर नौजवानोंके मनमें स्वदेशभक्तिका जोश भरनेवाले लेखकके रूपमें मैं श्री नरसिंहभाओीका नाम जानता था और अुनकी पुस्तकोंका रसपान मैंने किया था। अुनकी और मेरी अुमरमें अितना फर्क है कि वे मुझे अपना पुत्र समझ सकते हैं। लेखकके नाते अुन्होंने गुजरातमें अैसी प्रतिष्ठा पाअी है कि वे जो कुछ लिखते हैं अुसे गुजरातका ध्यानसे पढ़ना ही पड़ता है। अुनकी पुस्तकका अुपोद्घात (प्रस्तावना) लिखनेका मुझे क्या अधिकार है? यह विचार मेरे मनमें हमेशा रहा और अिस संकोचके कारण मैंने श्री नरसिंहभाअीसे बिनती की कि वे मुझे अिस बोझसे मुक्त कर दें।

अिसके अलावा दूसरे भी संकोचके कारण हैं। अुनमें से अेक कारण यह है — किसी मित्रने कहा है कि मुझे पुस्तकें लिखना आता है लेकिन प्रस्तावना लिखना नहीं आता। और यह टीका मुझे सही मालूम हुअी है। मुझे कअी बार विचार आता है कि मैं अपनी पुस्तकोंकी प्रस्तावनाको प्रस्तावना किस लिये कहता हूं? पुस्तकका अेक प्रकरण ही क्यों नहीं मानता? जब अपनी ही पुस्तकोंकी प्रस्तावना मुझे लिखते नहीं आती तब दूसरेकी पुस्तककी प्रस्तावना लिखने बैठूं तो तारतम्यका कितना भंग करूंगा अिसका डर तो मुझे था ही। और अिस कारणसे भी मुझे यह अुपोद्घात लिखनेमें संकोच होता था।

लेकिन श्री नरसिंहभाअीने अितने प्रेमसे आग्रह किया कि आखिरमें मुझे अुनकी बात माननी ही पड़ी। पर अैसा करके मैं बड़ी मुसीबतमें

---

* श्री नरसिंहभाअी अीश्वरभाअी लिखित 'लग्नप्रपंच' नामक गुजराती पुस्तकका।

भी फंसा गया हू। क्योंकि जैसे-जैसे मै लिखता गया, वैसे-वैसे मेरा लेख अुचित कल्पनाओंका अुपोद्‌घात बननेके बजाय अेक छोटीसी पुस्तक ही बनता गया। अुपोद्‌घातके रूपमें तो वह शोभा दे ही नहीं सकता। थोड़ेमें कितना लिखना अिसका मुझे अन्दाज नहीं रहा। फिर, यह कुछ अिस तरह लिखा गया कि अुसकी अुपयोगिता श्री नरसिंहभाअीकी पूरी पुस्तक पढ़ जानेसे पहले पढ़नेके बजाय पुस्तक पढ़ लेनेके बाद पढ़नेमें ज्यादा रहे। मुझे लगा कि अिसमें श्री नरसिंहभाअीके मूल विचारका खंडन किये बिना कुछ भिन्न प्रकारसे और पूर्तिके रूपमें जोड़ा गया है। अिससे मैंने सोचा कि अपना यह लेख मैं श्री नरसिंहभाअीकी पुस्तकके पूरक अध्यायके रूपमें अुन्हें सौंपूं। और अुनकी अिच्छा हो तो वे अिसका अुपयोग करें। अिसलिअे अुसमें जो नहीं लिखा गया अुतनेका ही अिस अुपोद्‌घातमें मैं जिक्र करता हू।

स्त्रीके बारेमें आज युवकोंके चित्त अजीब अुलझनमें फंसे हुअे हैं अैसा कहनेमें कोअी अतिशयोक्ति नहीं है। अुसमें भी पश्चिमके कुछ विचारकोंने अिस बारेमें नये-नये विचार फैलाये हैं और अुसका असर हमारे देशके स्त्री-पुरुषों पर भी पड़ा है। अैसे अनेक विचारोंके कारण अुलझनमें फंसी हुअी बुद्धिको स्थिर और निश्चित बनानेकी कोशिश श्री नरसिंह-भाअीने की है। अुनका आदेश तो स्त्री और पुरुष दोनोंके लिअे है। *लेकिन अगर पुरुषवर्ग न सुने तो भी स्त्रियां तो अपने मनमें लिअे अुसे सुनें ही* अैसी अुनकी स्त्रीजातिसे आग्रहभरी विनती है। गुजराती समाजमें पुरुषवर्गमें न गांधीजी और नरसिंहभाअीसे बढ़कर कोअी हिमायती स्त्रीजातिको अपने मित्र मिलनेकी बहुत कम संभावना है।

मानव-समाजमें विवाहकी प्रथाने — *बल्कि स्त्री-पुरुष सम्बन्धने* — *अलग-अलग देशों और जमानोंमें जो अलग-अलग रूप लिये हैं* अुनका पुराने जमानेसे लेकर आज तकका अितिहास *श्री नरसिंहभाअीने बहुत बारीकीसे अिस पुस्तकमें* जांचा है। कअी तरहकी पुस्तकें पढ़ी हैं और कअी तरहकी सूक्ष्म जानकारियां अिकट्ठी की हैं। अुनमें से कुछ तो विष-

भरस हैं और कुछ नफरतसे कपकपी पैदा करनेवाली हैं। कुछके बारेमें अैसा लगता है कि अैसी गन्दी जानकारी लोगोंके सामने न रखी जाती तो ही ठीक होता। कितनी ही बातोंमें मनुष्यका मन मक्खीकी तरह होता है। वह मिठाअी पर बैठी हो और पाससे मैलेकी गाड़ी निकले तो वहां भी मजेसे चली जाती है। भुसी तरह नफरत पैदा करनेके लिअे गन्दी जानकारी दी गअी हो तो भुसमें से भी मनुष्यका चित्त गन्दे संस्कार ले लेता है — भुसके साथकी नफरत भी रखता है, लेकिन नफरत दिखाकर भी वह गंदगी पर चिपक जाय अैसा भुसका चिपकनेका स्वभाव होता है। सहजानन्द स्वामीके वचनामृतों में अेक जगह भुनसे यह पूछा गया है कि असत्पुरुष शास्त्रमें से कैसी वृत्तिका ग्रहण करता है? भिसका भुन्होंने जो भुत्तर दिया भुसका सार यह है कि वह शास्त्रको भी भिस तरह समझता-समझाता है कि जिससे भुसके विकारोंको पोषण मिले। यह बात बिलकुल सच है। और भिस तरह संभव है भिस पुस्तकके कुछ भाग विकार पैदा करनेवाले साबित हों। श्री नरसिंहभाअी अैसा कभी नहीं चाहेंगे। लेकिन कुछ बातोंका अज्ञान कल्याणकारी होता है। अैसी अेक बात दुनियामें पहले हो चुकी और आज चलनेवाली बुराअियोंका अज्ञान है। साधारण पाठकोंके लिअे लिखी हुअी पुस्तकमें यह कचरा न डाला जाय तो अच्छा है। अत्यन्त विद्वत्ताभरे साहित्यके अमूल्य रत्नोंकी तरह भुसका अमूल्य कचरा भी महंगी कीमतकी विद्वानोंके पढ़ने लायक पुस्तकोंमें ही भरना चाहिये।

श्री नरसिंहभाअीने भिस पुस्तकमें जो विचार रखे हैं और भुनके साररूपमें नवनीत में जिन सूत्रोंका प्रतिपादन किया है, भुनमें से बहुतेरोंके साथ मैं पूरी तरह सहमत हूं। किसी किसी जगह भुनकी और मेरी विचारोंको रखनेकी पद्धतिमें फर्क होना स्वाभाविक है। श्री नरसिंह भाअीने यह विषय स्त्रीजातिके वकीलकी तरह पेश किया है और वह भी प्रतिवादीका वकील बनकर नहीं बल्कि वादीका वकील बनकर। फिर, भुनकी तात्त्विक दृष्टि अनीश्वर सांख्यवाले जैसी है। मैंने भिन भूमिकाओंके

आधार पर विचार नहीं किया फिर भी स्त्रीजाति द्वारा मढ़े जानेवाले अन्यायोंके बारेमें और पुरुषजातिके गुनाहोंके बारेमें मेरे मनमें कोअी शक नहीं है। फिर भी यहां तराजूका न्याय नहीं दिया जा सकता या पुरुषजातिको सजा नहीं दी जा सकती। अिसलिअे सारे समाजको गलत रास्ते चढ़ा हुआ मानकर ही कोअी अुपाय सोचना होगा।

स्त्री-पुरुषके सम्बन्धों और सुख-दुःखका विचार धर्म-विग्रही —यानी दोनोंके बीच मानो हितोंका विरोध हो दोनों विरोधी कैम्पोंमें मानो अेक-दूसरेको दबाने या छकानेके ही अिरादेसे बैठे हों अैसी दृष्टि रखकर करनेसे कोअी फायदा नहीं होगा। स्त्रीजातिको तो होगा ही नहीं। *श्री मशरूवाला भी अिस बातको अस्वीकार नहीं करते।* अुन्होंने मंगलाचरणमें स्पष्ट किया है कि मैंने अपनी पुस्तकमें पुरुषजाति पर स्त्रीजातिके साथ दगा करनेका जो अिल्जाम लगाया है अुस परसे कोअी सचमुच यह शंका कर सकता है कि जबसे मानव-समाजमें लग्नकी व्यवस्था हुअी होगी तभीसे क्या पुरुषने लग्नमें छल-कपटकी योजना की होगी? नहीं कभी नहीं, धीरे-धीरे ही अिस भावनाका विकास हुआ है।' मेरी दृष्टिसे अिसका यह मतलब होता है कि आज स्त्री-पुरुषके बीच जो विषम स्थिति है वह *काअी अिरादतन बनाअी हुअी योजना* नहीं बल्कि बहुत पुराने जमानेमें अेक बुरा बीज बो दिया गया था जिसने अितने लम्बे समयके बाद अेक बड़े वृक्षका रूप ले लिया है और वह बड़े-बड़े अनर्थोंका कारण बन गया है। अुसके नतीजे अिरादतन किये हुअे छल-कपट जैसे ही आय हैं। लेकिन सच पूछा जाय तो जाने अनजानमें स्त्री-पुरुष दोनोंने अुसे पानी पिलाकर बड़ा किया है। अिस अनर्थकारी वृक्षके फल पुरुषजाति और ज्यादा धृतिवाली जातियोंके बनिस्बत स्त्रीजाति और कम *धृतिवाली जातियोंके लिअे ज्यादा नुकसान* देह साबित हुअे हैं। यहां स्त्रीजातिका ही विचार हुआ है अिसलिअे अुसकी अत्यन्त करुण स्थितिका विचार करते हुअे श्री मशरूवालाका रोषसे जल अुठना अुचित ही है। अिस रोषने अुन्हें पुरुषको अिस

पुस्तकमें अिस प्रकार चित्रित करनेके लिअे प्रेरित किया मानो अुसने चिरावतन स्त्रीजातिको धोखा दिया हो और स्त्री लाचारीसे अुसका शिकार बन गअी हो।

श्री नरसिंहभाअी द्वारा रखे गये सिद्धांतोंमें अुन्होंने संयम और ब्रह्मचर्यकी जो व्याख्या की है (पृष्ठ ५४१ नवनीत १०) अुसने मेरे विचारोंको नअी दिशामें मोड़ दिया है। यह व्याख्या मेरे गले अुतर गअी है और में अैसा कहूं तो चल सकता है कि मेरे पूरक अध्यायके आखिरी दो परिच्छेद अुसमें से ही पैदा हुअे हैं।

अुनमें से जो नवनीत मुझे विस्तारसे चर्चा करने लायक मालूम हुअे अुन पर पूरक अध्यायमें विचार किया गया है। यहां दूसरे नवनीतों और विचारोंके बारेमें थोड़ी चर्चा करता हूं।

अुनका २० वां* नवनीत मुझे थोड़ा खटकता है। अुसमें आधा सत्य है। वह और २७ वां+ नवनीत मध्यम या धनीवर्गके लोगोंको

---

* नवनीत २० और तब यह सेवाके लिअे समझना चाहिये कि पति-पत्नी लग्नसे तो अेक हो गये परन्तु दूसरी तरहसे — शरीर और बुद्धिसे — वे स्वाभाविक रूपमें अलग-अलग काम कर सकते हैं। पुरुषमें बीजधर्म है अिसलिअे वह हमेशा स्वतंत्रतासे बाहर घूम सकता है अुसके अिस काममें कोअी बड़ा विघ्न नहीं पड़ता। स्त्रीमें क्षेत्रधर्म — जननीधर्म है अिसलिअे बाहर घूमनेमें अुसे बारबार विघ्न नड़ते हैं कअी प्रतिकूलतायें नड़ती हैं। अिसलिअे अुसे घरमें रहना ही अनुकूल पड़ता है। अिस कारणसे स्त्री घरमें रहकर सन्तान पैदा करे और अुसकी सेवा करे साथ ही साथ अनुकूल होनेसे घरकी व्यवस्था भी करे और पुरुष स्त्री तथा सन्तान — कुटुम्ब — के जीवन-निर्वाहकी व्यवस्था करनेके लिअे बाहर घूमे।

\+ नवनीत २७ कौटुम्बिक जीवनकी रक्षाके लिअे पैसेकी भी जरूरत है। सन्तान-सेवाका धर्म स्त्री अच्छी तरह पूरा कर सके अिस

ध्यानमें रखकर ही विचारा हुआ मालूम होता है। गरीब, मेहनत-मजदूरी करनेवाले लोगोंके लिअे यह संभव ही नहीं है। मैं तो यह मानता हूं कि स्त्री-पुरुषके कामके बीच अनुकूलताके अनुसार श्रमविभागकी चाहे जैसी व्यवस्था की जाय तो भी दोनोंके श्रमसे अेक ही धन्धा पैदा होना चाहिये। बच्चोंका पालन-पोषण, घरकी व्यवस्था और धनोपार्जन अिन तीनों बातोंमें दोनोंका कुछ न कुछ हिस्सा हो अितना ही नहीं बल्कि जिस धंधेसे धनोपार्जन होता हो वह धंधा दोनोंकी मददसे चलनेवाला हो। अेक डॉक्टर हो और दूसरा शिक्षक यह ठीक नहीं। लेकिन अेक डॉक्टर हो और दूसरा अुसीके साथ रहकर नर्स या कम्पाअुण्डरका काम करे तो चल सकता है। किसान-किसानिन दरजी-दरजिन सुतार-सुतारिनके जोड़े चल सकते हैं। फिर अेकका यदि सामाजिक पारमार्थिक धन अुत्पादन करनेका या बाहरी जीवन हो और दूसरेका सिर्फ व्यक्तिगत स्वार्थी धन खर्च करनेका या गृहजीवन हो तो ठीक नहीं।

श्री नरसिंहभाओी मातृगृह-संस्था (Matriarchal System— यह पुरानी व्यवस्था जिसके अनुसार यह माना जाता है कि माता ही सब कौटुम्बिक अधिकारोंकी जड़ है पिता नहीं।) के हिमायती हैं। मुझे अिस संस्थाका कोअी अनुभव नहीं है। जहां यह संस्था चलती है वहां अिसका स्त्री-पुरुष पर क्या असर हुआ है यह मैं नहीं जानता। अिसलिअे अिस बारेमें मैं कोअी निर्णय नहीं कर सकता।

श्री नरसिंहभाओीने खानगी जायदादकी प्रथाको गृहीत मानकर अुत्तराधिकारके बारेमें स्त्रियोंके अधिकारोंसे सम्बन्ध रखनेवाले अपने

लिअे अुसे पैसा कमानेकी चिन्तासे मुक्त कर देना चाहिये — पैसा कमानेकी जिम्मेदारी पुरुषको ही अपने सिर लेनी चाहिये। जिस तरह सन्तानके प्रति माता-पिताका अेकसा धर्म है अुसी तरह धनके प्रति भी पति-पत्नीका समान धर्म है समान अधिकार है। वे दोनों सहाधिकारी हैं। वे दोनों घरके दम्पती हैं।

विचार पेश किये हैं। खानगी जायदादकी प्रथाको गृहीत मानकर विचार करें तो व्यवहारकी दृष्टिसे मुस्लिम कायदा ज्यादा सरल और सीधा मालूम होता है। अुसमें स्त्रीके साथ पूर्ण न्याय नहीं किया गया है परन्तु न्याय करनेका पहला प्रयत्न जरूर है। ज्यादा सरल सीधा और न्याययुक्त तो यह होगा कि

(१) लग्नसे पति-पत्नीकी जायदाद और कमाअी मिलीजुली मानी जाय

(२) अुसमें से जमीन घर गहने शेयर वगरा द्वारा जितनी जायदाद पूंजीके रूपमें बदली गअी हो अुस पर दोनोंके जीतेजी दोनोंका समान अधिकार रहे और दोनोंकी स्वीकृतिके बिना अुनकी बिक्री वगरा नहीं की जाय।

(३) दोनोंमें से अेकके मरने पर पीछे जीवित रहनेवालेका आधा हिस्सा माना जाय और बाकीका आधा हिस्सा मरनेवालेके लड़के-लड़कियोंमें समान रूपसे बांट दिया जाय

(४) दूसरे साथीके मरने पर वह अपने हिस्सेमें से जो कुछ बढ़ा-घटाकर छोड़ जाय वह अुसके लड़के-लड़कियोंमें समान रूपसे बांट दिया जाय

(५) पुनर्विवाहसे अिस व्यवस्थामें किसी तरहका फरबदल करनेकी जरूरत नहीं

(६) यदि तलाक दे दिया जाय और कोअी सन्तान न हो तो जायदादका आधा हिस्सा किया जाय। यदि सन्तान हो तो जायदादके तीन बराबर भाग किये जाय अेक-अेक तीसरा भाग पति और पत्नी ले और बाकीका तीसरा भाग सन्तानमें बांट दिया जाय।

अिससे कोअी यह न मान कि मैं अुत्तराधिकारका पूरा कायदा बनानेकी कोशिश करता हूं। यहां मने कुछ अधिकारोंका स्थूल विचार ही किया है।

श्री नरसिंहभाअीने मंगलाचरण में स्त्रीजातिके प्रति रही अुनकी मूल तुच्छ भावना और अुसमें होनेवाले सुधारका अितिहास दिया है। श्री नरसिंहभाअीकी तरह मैं भी स्वामिनारायण सम्प्रदायमें बड़ा हुआ और लगभग १ बरस तक मैंने अुत्कट श्रद्धासे अुसका अनुसरण किया। अुन्हींकी तरह मुझमें भी स्त्रीजातिके प्रति तुच्छ भावनाके तीव्र संस्कार थे और मुझे नजदीकसे जाननेवाले लोग मानते हैं कि अुन संस्कारोंके असरसे आज भी मैं पूरी तरह मुक्त नहीं हुआ हूँ। श्री नरसिंहभाअी जैसा ही मेरा साम्प्रदायिक ममत्व छूट गया है। स्वामिनारायण सम्प्रदायमें — हिन्दूधर्मके दूसरे सम्प्रदायोंकी तरह ही — स्त्रियोंकी निन्दाके बहुतसे अुद्गार भरे हैं और यह नहीं कहा जा सकता कि अुनका असर मेरे मन पर नहीं पड़ा। फिर भी अुस सम्प्रदायके साथ न्याय करनेके खातिर मुझे यह कहना चाहिये कि अिस सम्प्रदायके कवियों द्वारा की गअी स्त्री-निन्दा सिर्फ अुसके परम्परागत साहित्यका अनुकरण मात्र है, लेकिन अुस सम्प्रदाय द्वारा बढ़ाअी हुअी स्त्रीजातिकी प्रतिष्ठा और की हुअी कद्र अिस सम्प्रदायकी अेक नअी देन है। पुरुषके हाथ स्त्रीजातिकी कितनी बेअिज्जती हुअी है, अिसका चित्र श्री नरसिंहभाअीने अिस पुस्तकके अेक-अेक पृष्ठ पर खींचा है। स्वामिनारायण सम्प्रदायने अुसमें अेक अनोखापन भी ला दिया है।* सहजानन्द स्वामीने अपनी शिष्याओंकी कितनी प्रतिष्ठा बढ़ाअी और रखी होगी, अुसका अन्दाज अिस परसे लगाया जा सकता है कि आज तक जितने आदरसे अुनके पुरुष भक्तोंका नाम लिया जाता है, अुतने ही आदरसे जीवुबा, लाडुबा वगैरा स्त्री-भक्तोंका नाम भी लिया जाता है। और पुरुष भक्तोंकी तरह अैसी स्त्री भक्तोंकी परम्परा भी चली आयी है।

सहजानन्द स्वामीने स्त्री-पुरुषके बीचकी मर्यादाओंको बहुत मजबूत बना दिया, लेकिन अिससे सम्प्रदायके भीतर तो स्त्रीजाति ज्यादा सुरक्षित

---

* अुपोद्घातके अन्तमें जोड़ी हुअी टिप्पणी देखिये।

यन गयी। स्त्रियोंको देखकर पुरुष दूर हटकर चलें' — अिस कथनमें स्त्रीजातिके प्रति नफरत बढ़नेका भाव किसीको लग सकता है, लेकिन अिसस स्त्रियोंके प्रति रहनेवाला विनय भी बढ़ा है।

यहां सहजानन्द स्वामीकी शिक्षापत्री में स्त्रीजातिकी रक्षाके लिअे दी हुअी कुछ आज्ञाओंकी जानकारी कराना ठीक होगा। अुदाहरणके लिअे

स्त्रीका दान नहीं करना चाहिये विधवा स्त्रीके पास अपना गुजर चलाने जितना ही धन हो तो अुसे धर्मके लिअे भी अुसका दान नहीं करना चाहिये ब्रह्मचारीका किसी भी तरह स्त्रीका संसर्ग नहीं करना चाहिये — फिर भी यदि अुसके या खुद अपने प्राणोंको नुकसान पहुचने जसा कोअी सकट पदा हो जाय तो अुस समय अुससे बोलकर या अुसे छूकर भी दोनोंकी रक्षा करनी चाहिये।

स्त्री पतिको अीश्वर तुल्य माने यह परम्परागत आज्ञा है। लेकिन विधवा अीश्वरको ही पति मान यह नया सूत्र है। स्वामी मुक्तानन्दने सती-गीता में कहा है कि जो स्त्री सकाम हो वही पतिकी मृत्युके बाद सती होकर स्वग जाय। निष्काम साध्वी स्त्रियां असा न करें वे तो पीछे रहकर मोक्ष धम स्वीकारें। मुझे लगता है कि अुस समयके लिअे तो यह बिलकुल नया ही विचार था।

मैंने श्री नरसिंहभाअीका यह दृष्टिकोण संक्षेपमें लिख भेजा और सुझाया कि स्त्रीजातिके प्रति हममें जो तुच्छ भावना है वह कोअी स्वामि नारायण सम्प्रदायकी नअी देन नहीं है सभवत वह समाजमें से सम्प्रदायमें घुस आय और स्वतन्त्र रूपसे समाजमें से मिले हुअे सस्कारोंका नतीजा है। अुल्टे संभव यह है कि निन्दा-साहित्यके होते हुअे भी स्त्रीजातिके प्रति न्यायवृत्तिका संस्कार डालनेमें स्त्रीजातिके प्रति मातृका बरताव करनेकी सम्प्रदायकी प्रत्यक्ष प्रथा बीजरूपमें कारण हो। श्री नरसिंहभाअी भी मेरे अिस विचारसे सहमत हुअे अिसलिअे अितना सुधारा किया है।

श्री नरसिंहभाओीने मंगलाचरण में स्त्रीजातिके प्रति रही अुनकी मूल तुच्छ भावना और अुसमें होनेवाले सुधारका अितिहास दिया है। श्री नरसिंहभाओीकी तरह मैं भी स्वामिनारायण सम्प्रदायमें बड़ा हुआ और लगभग ३० बरस तक मैंने अुत्कट श्रद्धासे अुसका अनुसरण किया। अुन्हींकी तरह मुझमें भी स्त्रीजातिके प्रति तुच्छ भावनाके तीव्र संस्कार थे और मुझे नजदीकसे जाननेवाले लोग मानते हैं कि अुन संस्कारोंके असरसे आज भी मैं पूरी तरह मुक्त नहीं हुआ हूं। श्री नरसिंहभाओी जैसा ही मेरा साम्प्रदायिक ममत्व छूट गया है। स्वामिनारायण सम्प्रदायमें — *हिन्दूधर्मके दूसरे सम्प्रदायोंकी तरह ही* — स्त्रियोंकी निन्दाके बहुतसे अुद्गार आते हैं और यह नहीं कहा जा सकता कि अुनका असर मेरे मन पर नहीं पड़ा। फिर भी अुस सम्प्रदायके साथ न्याय करनेके खातिर मुझे यह कहना चाहिये कि अिस सम्प्रदायके कवियों द्वारा की गयी स्त्री-निन्दा सिर्फ अुसके परम्परागत साहित्यका अनुकरण मात्र है, लेकिन अुस सम्प्रदाय द्वारा बढ़ाओी हुआी स्त्रीजातिकी प्रतिष्ठा और की हुआी कद्र अिस सम्प्रदायकी अेक नयी देन है। पुरुषके हाथ स्त्रीजातिकी कितनी बेअिज्जती हुआी है अिसका चित्र श्री नरसिंहभाओीने अिस पुस्तकके अेक-अेक पृष्ठ पर खींचा है। स्वामिनारायण सम्प्रदायने अुसमें अेक अमीसापन भी ला दिया है।* सहजानन्द स्वामीने *अपनी शिष्याओंकी कितनी प्रतिष्ठा बढ़ाओी और रखी होगी* अुसका अन्दाज अिस परसे लगाया जा सकता है कि आज तक जितने आदरसे अुनके पुरुष-भक्तोंका नाम लिया जाता है अुतने ही आदरसे जीवुबा लाडुबा वगैरा स्त्री भक्तोंका नाम भी लिया जाता है। और पुरुष भक्तोंकी तरह वैसी स्त्री-भक्तोंकी परम्परा भी चली आयी है।

सहजानन्द स्वामीने स्त्री-पुरुषके बीचकी मर्यादाओंको बहुत मजबूत बना लिया लेकिन अिससे सम्प्रदायके भीतर तो स्त्रीजाति ज्यादा सुरक्षित

* अुपोद्घातके अन्तमें जोड़ी हुआी टिप्पणी देखिये।

यन गयी। स्त्रियोंको देखकर पुरुष दूर हटकर चलें — अिस कथनमें स्त्रीजातिके प्रति नफरत बढ़नेका भाव किसीको लग सकता है लेकिन अिससे स्त्रियोंके प्रति रहनेवाला विनय भी बढ़ा है।

यहां सहजानन्द स्वामीकी शिक्षापत्री में स्त्रीजातिकी रक्षाके लिअे दी हुअी कुछ आज्ञाओंकी जानकारी कराना ठीक होगा। अुदाहरणके लिअे

स्त्रीका दान नहीं करना चाहिये विधवा स्त्रीके पास अपना गुजर चलाने जितना ही धन हो तो अुसे धर्मके लिअे भी अुसका दान नहीं करना चाहिये ब्रह्मचारीको किसी भी तरह स्त्रीका संसर्ग नहीं करना चाहिये — फिर भी यदि अुसके या खुद अपने प्राणोंको नुकसान पहुंचने जैसा कोअी संकट पैदा हो जाय तो अुस समय अुससे बोलकर या अुसे छूकर भी दोनोंकी रक्षा करनी चाहिये।

स्त्री पतिको अीश्वर तुल्य माने यह परम्परागत आज्ञा है। लेकिन विधवा अीश्वरको ही पति माने यह नया सूत्र है। स्वामी मुक्तानन्दने सती-गीता में कहा है कि जो स्त्री सकाम हो वही पतिकी मृत्युके बाद सती होकर स्वर्ग जाय। निष्काम साध्वी स्त्रियां असा न करें वे तो पीछे रहकर मोक्ष धर्म स्वीकारें। मुझे लगता है कि अुस समयके लिअे तो यह बिलकुल नया ही विचार था।

मैंने श्री नरसिंहभाअीको यह दृष्टिकोण संक्षेपमें लिख भेजा और सुझाया कि स्त्रीजातिके प्रति हममें जो तुच्छ भावना है यह कोअी स्वामिनारायण सम्प्रदायकी नअी देन नहीं है संभवतः यह समाजमें से सम्प्रदायमें घुस आये और स्वतंत्र रूपसे समाजमें से मिले हुअे संस्कारोंका नतीजा है। अुल्टे संभव यह है कि निन्दा-साहित्यके होते हुअे भी स्त्रीजातिके प्रति न्यायवृत्तिका संस्कार खिलानमें स्त्रीजातिके प्रति आदरका बरताव करनेकी सम्प्रदायकी प्रत्यक्ष प्रथा बीजरूपमें कारण हो। श्री नरसिंहभाअी भी मेरे अिस विचारसे सहमत हुअे अिसलिअे अितना खुलासा किया है।

हो तो अपने पिता वगैराके साथ वहां जाना चाहिये। वहां अनेक लोगोंका समुदाय हो तो स्त्रियां स्त्रियोंमें और पुरुष पुरुषोंमें बैठें। दूसरी तरह न बैठें। लेकिन यदि अुस स्थानके आसपास छोटी दीवाल या बाड़ हो तो स्त्रियां कभी अुसमें प्रवेश न करें। हे भक्तो स्त्रियां अपने अिष्टदेवके दर्शनके लिये भी दो अुत्सवोंको छोड़कर कभी रातमें न जायं। अेक जन्माष्टमीका और (दूसरा) मेरे जन्मका अुत्सव। और तब भी स्त्रियां अपने सगे-सम्बन्धियोंके साथ ही रातमें जायं। धर्म और शीलको भ्रष्ट करनेवाले कामरूप राक्षसजन रातमें घूमते रहते हैं अिसलिअे सावधानीसे ही जाना चाहिये।"

५ प्र० ४ अ ४४ (शिक्षापत्री) "अैसा वचन अपने गुरुका भी नहीं माना जाय, जिससे अपने ब्रह्मचर्यव्रतका भंग हो। जबरदस्ती पास आती हुअी स्त्रीको मुहसे बोलकर या अपमान करके भी तुरन्त रोकना चाहिये। (लेकिन) किसी समय स्त्रियोंके या खुदके प्राण जानेका संकट अुपस्थित हो जाय तब तो स्त्रियोंको छूकर या अुनसे बोलकर भी स्त्रियोंकी और अपनी रक्षा करनी चाहिये।

६ प्र० ४ अ० ५१ अपने दत्तक पुत्रोंको आचार्यपद पर बैठाते समय अुन्होंने अुन्हें जो अुपदेश दिया अुसमें स्त्रियोंको दीक्षा देनेका निषेध करनेके अलावा कहा है "स्त्रियां धर्मवंशके पुरुषों (यानी मेरे द्वारा स्थापित किये हुअे आचार्यों) से कभी दीक्षा न लें। जिस कलियुगमें हजारों स्त्रियां पुरुषोंसे दीक्षा ग्रहण करके पशुओंकी तरह भ्रष्ट हुअी देखी जाती हैं।

ये सब अुदाहरण यही दिखानेके लिअे दिये गये हैं कि सहजानन्द स्वामीके नियमनके पीछे पुरुषोंके ब्रह्मचर्यकी रक्षाकी जितनी चिन्ता रही होगी अुससे ज्यादा चिन्ता स्त्रियोंके सतीत्वकी रक्षाकी मालूम होती है। और अुस समयके धार्मिक पर्वोंमें घुसी हुअी सड़ांधका अुन्हें जो अनुभव हुआ था अुसीकी वजहसे स्त्री-पुरुष-मर्यादा पर वे अितना जोर देते थे। मैं यह हरगिज नहीं कहना चाहता कि अुनके बताये हुअे सारे नियम आज जैसेके तैसे रखे जाने चाहियें।

(जनवरी १९४८)

पूरक अध्याय

१

बाहुबल

आजके जमानेमें जीवनके सारे सवालों पर वर्गविग्रहकी परिभाषामें विचार करनेका रिवाज पड़ गया है। अैसा अेक वर्गविग्रह स्त्री-पुरुषका संघर्ष माना जाता है। भिन्न-भिन्न वर्गोंके बीच झगड़ा चलता आया माना जाता है। अुन सबमें शायद स्त्री-पुरुषके वर्ग अेक तरहसे सबसे लम्बे माने जा सकते हैं। और यदि वर्गविग्रह अनिवार्य चीज हो तब तो अिन दोनोंके बीचका झगड़ा मिटानेका शायद कोअी अुपाय भी न मिले। क्योंकि मालिक-मजदूर जैसे दूसरे सब वर्ग चाहे जितने पुराने हों फिर भी वे मनुष्यके बनाये हुअे हैं। अिसलिअे अुन्हें मिटानेकी आशा की जा सकती है। लेकिन स्त्री-पुरुषका वर्ग कुदरतका बनाया हुआ है अिसलिअे अुसे मिटानेकी आशा नहीं रखी जा सकती।

दूसरे वर्गविग्रहोंके मिटानेके दो रास्ते हैं और वे सुझाये भी गये हैं। अेक समन्वय यानी अहिंसाके द्वारा, दूसरा सत्ता यानी अेक वर्गका हिंसासे नाश करके। लेकिन स्त्री-पुरुषका वर्गविग्रह मनुष्य-जातिका ही नाश करनेका विचार किये बिना दूसरे रास्तेसे मिटानेकी तो कल्पना भी नहीं की जा सकती। अिसलिअे अिस वर्गविग्रहको मिटानेका समन्वयके सिवा दूसरा कोअी रास्ता ही नहीं हो सकता। फिर भले कोअी अिस समन्वयको सिद्ध करनेके लिअे सत्ताका थोड़ा-बहुत बल काममें लेनेका विचार या प्रयोग करे। पर अिसमें दोनों वर्गोंको कायम रखकर दोनोंके बीच समन्वय साधनेके सिवा दूसरा कोअी ध्येय नहीं रखा जा सकता।

पुरुषने अपने बड़े-बड़े बाहुबलसे स्त्रीजातिको हर तरहसे अपदस्थ कर रखी है यह अिस पुस्तकका अेक खास ध्रुवपद है। स्थूल

दृष्टिसे देखें तो यह बात गलत भी नहीं है। अिस पुस्तकमें अनेक सबूत देकर अिसे साबित करनेकी कोशिश की गयी है।

फिर भी अिस बारेमें ज्यादा गहराअीसे सोचने पर मुझे मालूम होता है कि कुल मिलाकर पुरुषके स्त्री पर अधिकार जमानेमें बाहुबलके बनिस्बत दूसरी दो चीजोंका पहला हाथ रहा होगा। अुनमें से अेक स्त्री-पुरुषकी अलग-अलग धृति और दूसरी मनुष्य-जातिकी दृढ़ नीति पर बहुत ज्यादा श्रद्धा।

यहां मैं धृति शब्दका गीताके अर्थमें अुपयोग करता हूं। अुसका अर्थ है धारणा या दृढ़ता किसी कार्य विचार या अुद्देश्यसे चिपटे रहनेकी चित्तकी शक्ति।

मुझे लगता है कि स्त्री अपने शारीरिक जीवनमें पुरुषके अधीन और अुसकी आश्रित बनी अुससे पहले ही किसी न किसी कारणसे अुसका धृतिबल कम हो चुका होगा या गुणमें घटिया बन गया होगा। यानी वह अपने मनसे ज्यादा पराधीन आश्रित और लाचार बन चुकी होगी। पुरुष मुझसे ज्यादा श्रेष्ठ है शरण लेने योग्य है या अुसका आधार जरूरी है या मैं पुरुषसे ज्यादा हीन हूं शरणार्थिनी हूं या अुसके बिना दुःखी लाचार, बेलकी तरह पंगु हूं —— अैसा विचार किसी कारणसे अुसके मनमें बस गया —— अैसी अुसकी धृति या पूर्वग्रह बन गया और वह बढ़ता गया। अिससे अुलटी धृति पुरुषके मनमें बंधी। अिन दो पूर्वग्रहोंको श्री मशरूवालाअीने क्रमसे स्त्रीमें दास्यवृत्ति (अिन्फिरिओरिटी कॉम्प्लेक्स) और पुरुषमें स्वामीवृत्ति (सुपिरियोरिटी कॉम्प्लेक्स) का नाम दिया है। स्त्री पुरुषके बाहुबल खुशामद गहने-गांठे या धन वगैराके वश हुअी अुसके पहले ही अुसकी धृति घट गयी होगी। अुसके पहले ही वह पुरुषके बनिस्बत दूसरी चीजोंकी या जीवन-लालसाकी ज्यादा मात्रामें दासी बन चुकी होगी और अुसने माना या अनुभव किया होगा कि ये चीजें पुरुषके पाससे ज्यादा आसानीसे पाअी जा सकती हैं। अिस तरह स्त्रीकी स्थूल अधीनता पुरुषके बाहुबलका सीधा नतीजा नहीं बल्कि वह पहलसे ही

भुसकी मानसिक धृति घट जानेके कारण भुसमें आभी होगी। अपवाद नियमको सिद्ध करता है भिस न्यायसे विचारने पर भी असा ही मालूम होता है। जिस स्त्रीकी धृति पुरुषसे ज्यादा है वह आज भी — आज स्त्री जातिके खिलाफ सारे कानून और रिवाज होते हुओ भी — जुल्मी पुरुषके आधीन भी नहीं रहती भुलटी भुस छकाती है हराती है और वशमें भी रखती है असे भुदाहरण देखनेमें आते हैं। यह बताता है कि प्रत्यक्ष बाहुबलके बनिस्बत धृति ज्यादा महत्वकी चीज है। भिस बारेमें आगे ज्यादा विस्तारसे कहना होगा।

स्त्रीजातिके सम्बन्धमें ही नहीं बल्कि मनुष्य समाजमें जहां-जहां अेक दूसरेके आधीन है वहां-वहां जांच करनेसे मालूम पड़ेगा कि बाहुबलका भुपयोग करनेवाले और भुसके वश होनेवाले दोनोंमें अेक श्रद्धा समानरूपसे पाभी जाती है। भिस श्रद्धाके कारण ही बाहुबलका भुपयोग होता है और वह राजीखुशीसे स्वीकार किया जाता है। आज तक सारी मानव-जातिमें दण्डशास्त्रके लिअे अटूट श्रद्धा चली आभी है। मनुष्य-जातिने पुराने समयसे अहिंसासे — प्रेमसे — समन्वयवृत्तिसे काम तो अनेक बार लिया है लेकिन श्रद्धाके अेक सिद्धांतके रूपमें तो वह दण्डशास्त्रमें ही विश्वास रखती आभी है। यह श्रद्धा सिर्फ पुरुषकी ही नहीं स्त्रीकी भी है यानी अपने क्षेत्रमें स्त्री भी भुसका भुपयोग करनेमें विश्वास रखती है। सिर्फ स्त्रीजातिका ही यह लागू नहीं होता बल्कि जहां-जहां अेकके द्वारा दूसरेको नियम या नियंत्रणमें रखनेकी जरूरत पैदा होती है वहां सभी जगह यह पाया जाता है। राज्यशासनके आजके नयेसे नये मत —समाजवाद (सोशियलिज्म) या साम्यवाद (कम्युनिज्म) —भी यह मानते हैं कि राज्यसत्ताका आखिरी आधार भुसकी दण्डशक्ति ही है। अपनी भिच्छाका जबरन अमल करानेकी शक्ति ही राज्यका प्राण है। भिस बारेमें पूर्वके या पश्चिमके पुराने या नये विचारकोंमें कोभी मतभेद नहीं है। विद्वानों और आम लोगोंमें भी मतभेद नहीं है। माना किसीके सिखाय बिना ही सबने यह मान लिया है कि समाज

व्यवस्थाका आखिरी वस्त्र दंड ही हो सकता है। राजा प्रजाको, मालिक नौकरको ग्वाला ढोरको गुरु शिष्यको पुरुष स्त्रीको बड़े-बूढ़े बच्चोंको बड़े लड़के छोटे लड़कोंको — जिस तरह चाहे जिस कारणसे बड़े बने हुये सभी लोग चाहे जिस कारणसे छोटे बने हुये सभी लोगोंको दंड से ही नियंत्रणमें रखते हैं। यही शास्त्रीय मार्ग है, और अिस कारणसे राजनीति समझनेवालोंकी दृष्टिसे अुनका धर्म भी है। ढोल गंवार शूद्र पशु नारी ये सब ताड़नके अधिकारी — अिसमें मनुष्य जातिकी वंडनीतिमें रही श्रद्धाका सादी भाषामें सार आ जाता है।

पुरुषमें ही मानव-जातिकी यह श्रद्धा रही है और आज भी है। अिसलिये पुरुषने स्त्री पर बाहुबलका प्रयोग किया हो तो कोअी अचरजकी बात नहीं। पुरुषने पुरुष पर और स्त्रीने स्त्री पर, और दांव लगने पर स्त्रीने पुरुष पर भी अिसका प्रयोग किया है। जिस समय शाकाहारका विचार ही पैदा नहीं हुआ था अुस समय लिखी हुअी रामायणमें राम-लक्ष्मणको मांस-मछलीका भोजन करनेवाले बताया गया हो तो अुसमें अचरज ही कौनसा है? अुसी तरह जब दंडबलकी मनाही करनेवाला विचार ही मानव-जातिमें पैदा न हुआ हो अुल्टे जहां यह माना गया हो कि दंड ही स्वाभाविक तर्कशुद्ध नीतिशुद्ध और शास्त्रीय मार्ग है वहां पुरुषने स्त्री पर अपने बाहुबलका प्रयोग किया हो तो कोअी अचरजकी बात नहीं। अैसा भी नहीं कहा जा सकता कि दंड देनेवालेको हमेशा दंडशक्तिका घमंड ही रहता है या जिसे दंड दिया जाता है अुसके लिये प्रेमका अभाव ही रहता है। अैसा भी हो सकता है कि प्रेमके होने पर भी अपनी कोमल भावनाको ठेस लगने पर भी दिलके टुकड़े हो जाने पर भी दंडको कर्तव्य-धर्म समझकर कोअी काममें ले। मां बच्चोंको मारती है और रोती है क्योंकि मारना जरूरी समझती है। लेकिन मारना अच्छा नहीं लगता अिसलिये अुसे रोना आता है। पुरुष अेकदम चाहे रो न पड़े लेकिन मनमें जलता या कुढ़ता तो है ही।

मानव-जातिमें आज तक पायण पाओी हुओी अैसी श्रद्धाका विचार करें, तो 'ढोल गंवार, शूद्र पशु नारी ये सब ताड़नके अधिकारी'— यह तुलसीदासजीकी टीकाका विषय बनी हुओी चौपाओी जितना ही बताती है कि अुनके जमाने तक यह मान्यता चली आओी थी कि दंड ही समाज-व्यवस्थाका आखिरी शस्त्र और शास्त्र है। सिर्फ जितने परसे ही यह नहीं कहा जा सकता कि अुनके मनमें गंवार, शूद्र पशु और नारीके लिअे घृणा थी। अैसा था या नहीं यह निर्णय तो अुनके जीवनके और साहित्यके दूसरे मार्गों परसे किया जाना चाहिये। अैसा नहीं मालूम होता कि अिन सबके प्रति अुनके मनमें घृणा थी। परन्तु अिस चर्चाका यह स्थान नहीं।

सच बात तो यह है कि महावीर बुद्ध या भीसा जैसे महापुरुषोंने अहिंसा या प्रेमकी महिमा चाहे खूब बढ़ाओी हो और अहिंसाधर्मके विकासमें महत्त्वका भाग लिया हो फिर भी यह मालूम नहीं होता कि अुन्होंने भी समाज-नियमनके जरूरी अुपायके रूपमें दंडनीतिकी बिलकुल मनाही की हो। यह विचार ही नया पैदा हुआ है। शायद टॉल्स्टॉय ने ही दंडनीति परकी श्रद्धाको मिटानेके लिअे सबसे जोरदार लसी प्रचार किया और गांधीजी जीवनके हर क्षेत्रमें यथासंभव प्रयोगके साथ अिसका प्रचार कर रहे हैं। शिक्षाके क्षेत्रमें — यानी गुरु शिष्यके सम्बन्धमें — गुजरातमें दंडशास्त्रके खिलाफ प्रचार करनेमें दक्षिणामूर्तिका सबसे ज्यादा हाथ माना जा सकता है। लेकिन यह सब दंडशास्त्र परकी मानवश्रद्धाको शूली बनानेकी शुरुआत ही कही जायगी। असी हालतमें 'अधिकारी' शब्दका अेक अलग ही अर्थमें अुपयोग करें तो सारे दलित वर्ग तुलसीदासजीकी चौपाओीको अेक करुण सत्यके रूपमें अपने पक्षमें भी अुद्धृत कर सकते हैं। 'अधिकारी' यानी जिस मामलेमें खुदको अधिकार है जो खुदके हाथकी बात है। जिस तरह 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' — कर्म करना अपने हाथकी बात है लेकिन फल पैदा करना अपने हाथकी बात नहीं — अुसी तरह बेचारे दलितवर्ग कह सकते

है कि मार सहना हमारे हाथकी — हमारे तकदीरमें लिखी हुआी — बात है।*

---

* तुलसीदासजीने कहीं किसी अर्थकी ता यहां कल्पना नहीं की हो? यह शका अुठनका कारण यह है कि यह चौपाओी सुन्दरकांडमें समुद्रके मुंहसे कहलवाओी गओी है। रामके बाणके वश होकर समुद्रको अुनके लिअे अनिच्छासे रास्ता बना देना पड़ता है। तब भयभीत और दीन बना हुआ समुद्र रामको रिझानेकी अिच्छासे कहता है

हे नाथ मेरे सब अवगुणोंके लिअे मुझे माफ कीजिये। आकाश वायु, अग्नि जल और पृथ्वी अिन सबकी क्रियायें हे नाथ स्वभावसे ही जड़ होती हैं। सब ग्रन्थ यह गाते हैं कि आपकी मायाकी प्रेरणासे ये सब सृष्टिके हेतुसे पैदा हुअे हैं। प्रभुकी आज्ञासे जहां-जहां जो हो वहां अुसी ढगसे रह तो सुख पाता है। हे प्रभु, आपन मुझे सजा दी यह अच्छा किया। सब मर्यादायें आपकी ही ठहराओी हुओी हैं। (यानी आपकी मर्यादाके अनुसार चलनेवालेको आप सजा दें यह कैसा शोभता है! या आपकी मर्यादाको बदलनेकी आपको सत्ता है। अिसलिअे यदि आप मुझे सजा देकर अुसे बदलवाना चाहें तो आप मालिक हैं मैं कैसे विरोध कर सकता हूं?) ढोल गवार, शूद्र पशु और नारी ये सब मार खानेके ही अधिकारी हैं। (अिससे आप मुझे मारें तो कोओी अचरज नहीं।) आपके प्रतापसे अब मैं सूख जाअूंगा और आप अपनी सेना पार अुतारना अिसमें मेरा कोओी बड़प्पन नहीं है। (यानी आप ही मेरा बड़प्पन मिटायेंगे।) सब श्रुतियां (वद) गाती हैं कि प्रभुकी आज्ञा तोड़ी नहीं जा सकती अिसलिअे अब आपको जो ठीक लगे वह जल्दी कीजिये।

अैसे नम्र वचन सुनकर कृपालु (राम) मुस्कराकर बोले हे भाओी अैसा अुपाय बताओो जिससे सेना पार अुतारी जा सके। यानी समुद्रके तानेसे राम शरमा गये अैसा भाव अिसमें है। अिसलिअे अैसा मालूम होता है कि यह चौपाओी यहां तानेके रूपमें है।

२

विकारबल

तो बाहुबलके प्रत्यक्ष अुपयोगके बनिस्बत धृति (धारणा या दृढ़ता) में पैदा हुआ दोष और ब्रह्मचर्यकी आवश्यकता तथा योग्यताके बारेमें मनुष्य-मात्रमें रही अत्यन्त श्रद्धा ही क्या स्त्री और क्या दूसरे दलित या पराधीन बने वर्ग सबकी दुर्दशाका पहला कारण मालूम होती है। अिसकी हम थोड़ी ज्यादा जाँच करें।

सच पूछा जाय तो सभी यह समझते हैं कि स्त्री और पुरुष दोनों मिलकर घर-संसारको चलानेवाले हैं। गाड़ीको बायाँ पहिया या बायीं तरफका बैल ज्यादा चलाता है या दाहिना पहिया या दाहिनी तरफका बैल ज्यादा चलाता है — यह चर्चा जैसे बेकार है, ताली बजानेमें बायाँ हाथ गतिशील और दाहिना हाथ स्थितिशील (स्थिर) रहता है यह चर्चा जैसे निकम्मी है, अुसी तरह स्त्री-पुरुषके बीच अैसा भेद ढूंढनेवाली चर्चा मुझे बेकार मालूम होती है। चौमासेमें जब बिजली चमकती है तब बिजलीकी गति बादलमें से धरतीकी तरफ होती है या धरतीमें से बादलकी तरफ अिस बारेमें अन्तिम नियम बताना कठिन है। दोनोंमें से किसमें 'पाजिटिव' और किसमें 'निगेटिव' नामसे पहचाना जानेवाला संचार होता है अिसका भी अन्तिम नियम मालूम नहीं पड़ता। अुसी तरह पुरुषों और स्त्रियोंमें सारे पुरुष गतिशील और सारी स्त्रियाँ स्थितिशील ही होती हैं अैसा कोअी अन्तिम सिद्धांत ठहराना कठिन है। मुझे लगता है कि जितनी ही बार पुरुष गतिशील होते हैं, तो कोअी बार स्त्रियाँ गतिशील होती हैं, कभी-कभी दोनों अेक-दूसरेके प्रति गति करते हैं। परन्तु आदतके कारण जैसे बहुतसे पुरुष दाहिने हाथसे काम करनेवाले होते हैं और बायें हाथसे काम करनेवाले पुरुषोंके बनिस्बत अैसी

स्त्रियां ज्यादा होतीं हैं, अुसी तरह यह संभव है कि अलग-अलग समाजकी रूढ़ियोंके अनुसार बहुतसी जगहोंमें पुरुषकी तरफसे पहल करनेकी अपेक्षा न रखी जाती हो या स्थितिशील पुरुषोंके बनिस्बत वैसी स्त्रियोंकी तादाद ज्यादा हो। लेकिन यह स्त्री-पुरुषके भीतरी भेदके बनिस्बत रूढ़ि या आदतका ही नतीजा ज्यादा हो सकता है।

परन्तु स्त्री और पुरुष दोनों जिस तरह गृहस्थीके समान चक्र होते हुअे भी अूपर कहे मुताबिक — साधारण तौर पर — अेकमें जो हीनताग्रह (अिन्फिरियोरिटी कॉम्प्लेक्स) और दूसरेमें श्रेष्ठताग्रह (सुपिरियोरिटी काम्प्लेक्स) पैदा हुआ है अुससे दोनोंके सुख-दुःखमें और घमंड-लाचारीमें बहुत फर्क पड़ गया है। अिस फर्कका अुनके शरीरबलसे कोअी सम्बन्ध नहीं है। यानी बाहुबल न रखनेवाले पुरुषमें भी श्रेष्ठताग्रह और मजबूत शरीरकी स्त्रीमें भी हीनताग्रह पाया जाता है। सच तो यह है कि साधारण पुरुष अेक दिन भी स्त्रीके बिना ठीकसे संसार नहीं चला सकता अुलटे साधारण पुरुषकी अपेक्षा साधारण स्त्री पुरुषके बिना ज्यादा अच्छी तरह संसार चलाती देखी जाती है। दुःख या कामकाजका बोझ सहन करनेकी शक्ति भी आम तौर पर स्त्रीमें ज्यादा होती है। फिर भी ज्यादातर पुरुषोंके मनमें यह झूठा घमंड भरा रहता है कि वे स्त्रीका आधार हैं और अुन्हें स्त्रीकी कोअी जरूरत नहीं। साथ ही ज्यादातर स्त्रियोंके मनमें भी यह भ्रम घुसा रहता है कि पुरुष ही अुनके जीवनका सहारा है और पुरुष न हो तो वे बिना मल्लाहकी नाव जैसी हैं। स्त्रीकी यह लाचारी और बेबसी ज्यादातर मानसिक ही है। हम हिन्दुस्तानियोंको यह बात आसानीसे समझमें आ जानी चाहिये। वास्तवमें अिंग्लैंडको ही हिन्दुस्तानकी ज्यादा जरूरत है और हिन्दुस्तानके बिना अिंग्लैंडकी हालत अुस पुरुषके जैसी हो सकती है जिसका बुढ़ापेमें स्त्रीके मर जानेसे घर टूट गया है। फिर भी अंग्रेजोंके मनमें हिन्दुस्तानके बेली होनेका झूठा घमंड है

अितना ही नहीं बहुतरे हिन्दुस्तानियोंके मनमें भी यह भ्रम घुस गया है कि अिग्लैंड न हो तो हिन्दुस्तान कहींका न रहे। यसी ही यह स्त्री-पुरुषकी घरण और घरण्यकी मनोदशा है। हिन्दुस्तान अिग्लैंडकी जबरदस्त ताकतके कारण लाचार बना हुआ है, यह कहना अितिहासका गलत अर्थ करना है। ताकत घटनेके कारण हिन्दुस्तान गुलाम नहीं बना बल्कि आज अुसकी ताकत कम हो तो वह भी अुसकी गुलामीका नतीजा है। अुसकी ताकत घटनके पहले अुसका धृतिवल घट गया था। अुसमें अुसे आश्रित और पराधीन बनानेवाली बीमारी या बीमारियाँ घुस चुकी थीं। स्त्रीजातिके बारेमें भी मैं वैसा ही मानता हूँ।

लेकिन अिससे ज्यादा हिन्दुस्तान-अिग्लैण्ड और स्त्री-पुरुषकी तुलना नहीं की जा सकती। हिन्दुस्तान और अिग्लैण्डका सम्बन्ध स्त्री-पुरुष जैसा नहीं है। ये दोनों हमेशाके लिअ अेक दूसरेसे अलग रह सकते हैं। स्त्री-पुरुषके बारेमें अैसा नहीं हो सकता। कुछ पुरुष या स्त्रियाँ भले अेक दूसरेके बिना जीवन बिता सकें अिनकी संख्या हजार पीछे अेकाध हो तो बहुत मानी जायगी। बाकीके ९९९ स्त्री पुरुषोंका ससार तो अेक दूसरेके साथ ही चल सकता है। स्त्री-पुरुष लड़ें झगड़ें या मिलकर रहें मातृक संस्था (Matriarchal System) बनाकर रहें या पैतृक सस्था (Patriarchal System) बनाकर रहें, अेक पत्नीका बहु पत्नीका अेक पतिका या बहु पतिका चाहे जो रिवाज रखें विवाहके बधन न टूटनेवाले रखें या टूटनेवाले रखें, सयमी जीवन बितायें या स्वेच्छाचारी जीवन बितायें सन्तान बढ़ानेवाले हों या सन्तति-निरोध करनेवाले हो अरबियन-नाअिट्सके बादशाहकी तरह रोज अेक अेक स्त्रीसे शादी करके दूसरे दिन अुसका सिर काट डालें या मकड़ी या बिच्छू जैसे जीवोंके बारेमें कहा जाता है वैसे स्त्रियाँ पुरुषोंका वध करनेवाली हों अीर्ष्यासे या प्रमकी निराशासे कोअी पुरुष बेवफा स्त्रीका खून करे या कोअी स्त्री अपने रास्तेका काँटा

बमनवाले पतिको खतम कर दे या दोनों साथ-साथ आत्महत्या करें पुरुष स्त्रीका मालिक बन बैठे और कानून ुसे स्त्री पर मह सत्ता दे या स्त्री ुसे गुलाम बनाकर रखे और मरजीमें आय तब ुस घरसे निकाल दनेका कानूनी हक हासिल करे पुरुष अपना 'स्वामीनाथ'पन दिखाते हुअे भी स्त्रीके बिना पंगु बन जाय या स्त्री खुदको पतिकी 'चरणरजदासी' मानते हुअे भी ुसे अिस तरह अपने वशमें रख कि जितना पानी वह पिलावे ुतना ही पति पीये —अिस तरह चाहे जैसे अच्छे-बुरे सुखमय-दुःखमय नैतिक-अनैतिक समान-असमान सम्बन्ध दोनोंके बीच दिखते हों तो भी जब तक पुरुष और स्त्री दोनों अेक योनिके प्राणी नहीं मिन्ते और अपने नर-नारीके भेद टाल नहीं सकते तब तक सौमें से निन्यानवे पुरुष स्त्रीजातिके और सौमें से निन्यानवे स्त्रियां पुरुषजातिके सहवासमें आये बिना रह नहीं सकते कभी वे अेक दूसरेके सहवासमें अिच्छासे आयेंगे कभी बलात्कारसे, कभी फंसकर, कभी दूसरोंकी कोशिश या सलाहसे तो कभी दूसरोंकी सलाहकी अुपेक्षा करके भी।

श्री नरसिंहभाअीके विवेचनके अनुसार पुरुषने स्त्रीजातिके खिलाफ जो प्रपंच रचा है ुसमें महत्वका साधन ुसका बाहुबल या ताकत है और खास प्रेरणा देनेवाला हेतु ुसकी कामलोलुपता है। अपनी निर कुश कामवासनाको बिना किसी रुकावटके तृप्त करनेके लिअे ही ुसने धर्मके नाम पर अनेक युक्तियां रची हैं।

बाहुबलके बारेमें मैंने अपनी राय अूपर बता दी है। पुरुष और स्त्रीकी कामलोलुपताका परस्पर क्या अनुपात होता है यह निश्चित करना खुद मुझे तो अशक्य मालूम होता है। पुरुषमें कामविकारका वेग कितना जोरदार होता है अिसकी कुछ कल्पना मैं अपने अनुभव परसे और दूसरे पुरुषों द्वारा किये हुअे अिकरारों परसे कर सकता हूं। परन्तु आम तौर पर स्त्रियोंमें कामविकार कितने जोरोंसे ुठता है और कितने समय तक टिकता है ुसकी कल्पना करनेमें मैं अपनेको असमर्थ समझता हूं। स्त्रियोंने अिस विषयमें कुछ लिखा हो तो वह मेरे पढ़नेमें नहीं आया। स्त्रियोंके

विकारके रूपमें महाभारतमें कुछ बातें दी तो गयी हैं लेकिन वे सब मुच किन्हीं स्त्रियोंके विकारों परसे लिखी गयी हैं या कविकी स्त्रीजातिके बारेमें जो राय थी अुस परसे अुसने अुनकी कल्पना कर ली है यह हम नहीं जानते। वे सच्चे विकारके आधार पर नहीं होंगी अैसा माननेके कभी कारण हैं।

सारी पुरुषजाति या सारी स्त्रीजातिके बारेमें व्यापक सूत्रोंके रूपमें पेश की जानेवाली मान्यताओंको मैं आम तौर पर अश्रद्धाकी दृष्टिसे देखता हूं। फिर भी यदि अैसी व्यापक बात कहनेकी मैं छूट लूं तो मुझे अैसा लगता है — स्त्री-पुरुष दोनोंमें कामविकार पैदा होता है, और यही कुदरतका नियम हो सकता है। वर्ना प्रजातन्तु कायम ही न रहे। लेकिन साधारण तौर पर जब पुरुषमें वह पैदा होता है तब अुसका वेग अदम्य होना चाहिये। पागलकी तरह वह जोरोंसे बढ़ता जाता है और अुन्मत्त दशामें मर्यादा छोड़कर काम कर डालता है तथा अनर्थोंको जन्म देता है। लेकिन अुतनी ही जल्दी वह अुतर भी जाता है और फिर सूख भी जाता है। और अिस कारणसे वैराग्यवृत्तिका भी अनुभव करता है। स्त्रीका वेग हमेशा बहनेवाली बड़ी नदीके जैसा हो सकता है। अुसमें रोज थोड़े-बहुत चढ़ाव-अुतार आते हैं बीच बीचमें पूर भी आ सकते हैं। लेकिन ज्यादातर वह धीरे-धीरे बढ़ता है और धीरे-धीरे अुतरता है यथासंभव कभी सूखता नहीं। बनते कोशिश वह मर्यादा नहीं छोड़ता फिर भी अपने वशमें ही रहता है और बिल्कुल मर्यादामें ही रहता है अैसा भी नहीं है। दो जातियोंके विषयमें यह कल्पना कितनी सच्ची है, यह मैं नहीं जानता।

सच बहु तो दोनोंके विकारोंकी मात्रा खोजना मुझे जरूरी नहीं लगता। दोनोंमें से अेक निर्विकारी ही रहता है अैसा तो किसी हालतमें नहीं कहा जा सकता। और अितना हमारे लिअे काफी है।

तब अितना हम मान लें मामूली दुनियाकी स्त्री-पुरुषोंका काम अेक-दूसरेके बिना चल ही नहीं सकता। दोनोंमें कम-ज्यादा कामविकार

तो होता ही है। यह विकार चाहे जितना बार बार अुठता हो फिर भी अिसमें कोअी शक नहीं कि अिसका अेकमात्र कुदरती हेतु प्रजावर्धन ही है। अैसी हालतमें हमें यह सवाल हल करना है कि कैसे आदर्शसे प्रेरित होकर और मानवजातिकी मौजूदा हालतको जांचकर समाजकी विवाह व्यवस्था कुटुम्ब-व्यवस्था जायदाद-व्यवस्था वगैरा करनी चाहिये कि जिससे मानवजातिका ज्यादासे ज्यादा कल्याण होनेके लिअे अनुकूल परिस्थिति पैदा हो।

२

गलत सूत्र

लेकिन मानवजातिका कल्याण किस बातमें है और कैसे होगा यह सोचनेके लिअे पहले अेक प्राथमिक शर्तको स्पष्ट कर देना चाहिये। वह यह कि गलत या अर्धसत्य धारणा बनाकर कल्याणका रास्ता नहीं खोजा जा सकता। सच्ची बातका पता चले अुससे पहले ही गलत मान्यता छोड़ देनी चाहिये और अर्धसत्य बातोंका अधूरापन ध्यानमें रखना चाहिये। सच्ची चीज मिल जाने पर गलत चीज छोड़ दूंगा अिस तरह सोचनेसे कभी सच्चा रास्ता हाथ नहीं लगेगा। पुरुषोंने स्त्रियोंके बारेमें या स्त्रियोंने पुरुषोंके बारेमें व्यापक रूपमें जो मान्यतायें बना रखी हैं, अुनमें से ज्यादातर अधसत्य अनुभवों पर बनी हुअी होती हैं। लेकिन अुनका प्रचार अितना बार बार किया जाता है कि बहुतसे स्त्री-पुरुषोंके मन पर अुनका अेक दृढ़ संस्कार ही जम जाता है और अुनकी सचाअीके बारेमें शंका करनेकी कभी कल्पना भी नहीं होती। दो और दो चारकी तरह अुन्हें निर्विवाद सत्यके रूपमें मान लिया जाता है। अैसे अर्धसत्य या गलत सूत्रोंके थोड़े अुदाहरण यहां देता हूं

पुरुष श्रेष्ठ प्राणी है, स्त्री घटिया है; या अिससे अुलटा

पुरुष पामर प्राणी है, स्त्री देवी है।

पुरुष शिकारी है, स्त्री हरिणी है या मुल्टा पुरुष नर मच्छी है स्त्री मछुआ है।

पुरुष बुद्धिप्रधान है स्त्री भावनाप्रधान है।

पुरुष बहिर्मुख है स्त्री अन्तर्मुख है।

पुरुष कठोर है स्त्री कोमल है या मुल्टा पुरुष दयालु है स्त्री निर्दय है।

पुरुष दीर्घ दृष्टिवाला है स्त्री अल्प दृष्टिवाली है।

पुरुष अुदार है स्त्री संकुचित है।

पुरुष गति—या आक्रमण—शील है स्त्री स्थिति—या रक्षण—शील है।

पुरुष ज्यादा विकसित है स्त्री कम विकसित है या जिससे अुल्टा।

पुरुष आधार है, स्त्री आश्रित है।

पुरुष बलवान है स्त्री कमजोर है।

पुरुषको स्त्रीके बिना चल सकता है स्त्रीको पुरुषके बिना नहीं चल सकता।

पुरुष अुत्पादक है स्त्री व्यवस्थापक और संरक्षक है।

पुरुषको घूमना पसन्द है, स्त्रीको घर।

पुरुषका कार्यक्षेत्र घरके बाहर है स्त्रीका घरके भीतर।

स्त्री पुरुषकी वामांगिनी या अर्धांगिनी है।

पुरुषके पेटमें बात रहती है स्त्रीके पेटमें नहीं रहती। या मुल्टा पुरुष निखालिस है स्त्री कपटी।

लड़का बाप जैसा निकलता है लड़की मां जैसी।

स्त्रियोंका गहने प्यारे लगते हैं अुन्हें झगड़ा पसन्द होता है आंसू ही अुनका हथियार है।

वर्तमान संस्कृति पुरुषकृत है। वगैरा वगैरा।

अैसे-अैसे व्यापक सूत्रोंसे पोषण पाये हुअे संस्कार दोनोंका हित सोचनेमें रुकावट डालते हैं। विचार करनेसे मालूम होगा कि पुरुषकी निन्दा या स्त्रीकी निन्दा अथवा पुरुषकी प्रशंसा या स्त्रीकी प्रशंसाके सब तरहके खयालोंके पीछे गलत कल्पनायें अर्धसत्य अनुभव या बहुत थोड़े अनुभव ही होते हैं। सच पूछा जाय तो अूपरके सूत्रोंमें से बहुतेरे काल्पनिक हैं और बिना अपवादवाला तो अुनमें से अेक भी नहीं है। हरअेकके बारेमें अुल्टे अुदाहरण मिल सकते हैं।

यथार्थमें मुझे तो अैसा लगता है कि स्त्री और पुरुषके बीच बहुत ज्यादा फर्क हो ही नहीं सकता। क्योंकि जैसे पुरुष स्त्रीके पेटसे जन्म लेता है वैसे ही स्त्री भी पिताके बिना पैदा नहीं होती। यानी हर पुरुषमें स्त्री अदृश्य रूपमें रहती है और हर स्त्रीमें पुरुष अदृश्य रूपमें रहता है। गहराअीसे जाँचेंगे तो मालूम होगा कि अेक भी पुरुष अैसा नहीं मिलेगा जिसमें अुसकी माताके गुण या रूप बिलकुल न हों और कोअी स्त्री भी अैसी नहीं मिलेगी, जिसमें अुसके पिताके गुणों या रूपकी छाया न हो। कोअी पुरुष अैसा न होगा कि जिसमें स्त्रीजातिमें आरोपित भाव न मिलें और कोअी स्त्री भी अैसी न होगी जिसमें पुरुषोंमें आरोपित भाव न मिलें। यह तो सब कोअी जानते हैं कि ज्यादातर महापुरुषोंके बारेमें यह बताया जाता है कि बड़प्पनकी विरासत अुन्हें अुनकी मातासे मिली है। कुछ स्त्री-पुरुष मैंने अैसे देखे हैं जो सूख जाने पर तो पिता जैसे दीखते हैं और शरीर भर जाने पर माता जैसे दीखते हैं। मैं मानता हूँ कि रूप और स्वभावमें माँके जैसे लड़के और पिताके जैसी लड़कियाँ काफी मिल जायँगी।

यह सब बताता है कि अूपरके सूत्रोंको मानने जैसा कुछ मालूम होता हो तो अुसका कारण स्त्री-पुरुषोंके कुदरती भेद नहीं बल्कि वह परिस्थितिका नतीजा है।

परिस्थितिके कारण — यानी मूलमें भरे विचारोंकी वजहसे जमे हुअे संस्कारों या मानी हुअी रूढ़ियोंके कारण — तो कभी खास-खास दोष

या विशेषतामें पदा हुओी हूं अैसा स्त्रीजातिके बारेमें पुरुषजातिके बारेमें और कुल मिलाकर सारी मानव-जातिके बारेमें भी कहा जा सकता है। यहां भिसका अेक ही अुदाहरण देता हूं। मोटे रूपमें यह कहा जा सकता है कि मानव-जातिमें अपनी जातिके खिलाफ जितनी दुश्मनी है अुतनी दूसरी किसी योनिमें नहीं पाओी जाती। और अुसमें भी जितनी स्त्रीजातिमें होती है अुतनी शायद पुरुषजातिमें नहीं होती। श्री नरसिंहभाओी पुस्तकके मंगलाचरणमें कहते हैं कि व २५ बरसके हुअे तब तक मारी जातिके बारेमें कोओी अूंची भावना (मुझमें) नहीं थी। आज रूढ़ियोंसे जड़ बने हुअे सारे समाजमें स्त्रियोंके लिअे जैसी हीन भावना फैली हुओी है वसी ही हीन भावना मुझमें भी भरी थी। मेरी खुदकी भी यही हालत थी। भिसका अेक कारण हमारे वैराग्य-साहित्यमें की हुओी स्त्रीनिन्दा जरूर था। लेकिन यह वैराग्य-साहित्य तो पीछसे सुना या पढ़ा। भुमन ये संस्कार मुझ पर डाले अैसा कहनेके बजाय वे पहले दूसरी जगहसे मिले और बादमें वैराग्य-साहित्यने अुनका पोषण किया अैसा — मुझे लगता है — साधारण तौर पर मालूम होगा। और यह भी मालूम होगा कि अैसे संस्कार डालनेमें पुरुषके बजाय स्त्री जातिके व्यवहार और सिखावनका ज्यादा हाथ होता है। यानी अैसा मालूम पड़नकी संभावना है कि स्त्रीजातिको तिरस्कार और अनादरकी दृष्टिसे देखना पुरुषोंके बजाय स्त्रियां ही ज्यादा सिखाती आओी हैं। सब कोओी जानते हैं कि कितनी ही स्त्रियों पर अुनके पति सास या ननदके सिखानेसे ही जुल्म ढाते हैं। अपने विरुद्ध जानेवाली पत्नीको सजा देकर सीधी न करनेवाले पतिको दूसरी स्त्रियां निकम्मा आदमी समझती हैं और तटस्थ स्त्रियां भी अैसे मामलेमें दंडनीतिका अुपयोग करनेकी सलाह देती देखी जाती हैं। फिर भी मैं यह नहीं मानता कि अपनी जातिसे दुश्मनी रखना स्त्रीजातिका कुदरती गुण है। यह तो परिस्थितिका गलत रूढ़ियोंका गलत सामाजिक व्यवस्थाका और अुसकी जड़में रही भूलभरी श्रद्धाओंका नतीजा है। क्योंकि भिनमें परिवर्तन होते ही स्वभावमें परिवर्तन होता है।

सब ये स्त्री-पुरुषका भेद दिखानेवाले गलत खयाल हमें छोड़ देने चाहियें। नर और नारीके बीच निश्चित भेद तो अेक ही मालूम होता है। वह है लगभग दस महीने तक सन्तानको अपने पेटमें आसरा देनेकी और पैदा होनेके बाद लगभग मुतने ही समय तक अपने दूधसे अुसका पोषण करनेकी स्त्रीकी शक्तिका। यह भेद भी सारे प्राणियोंमें नहीं पाया जाता। और जिन बड़े प्राणियोंमें यह भेद है अुनमें भी — नर जातिमें पाये जानेवाले स्तनचिन्हों परसे — असा अनुमान हो सकता है कि यह भेद भी बादमें पैदा हुआ होगा। परन्तु मूल स्थिति चाहे जो रही हो आज स्तन्य प्राणियोंमें नर-नारीके बीच यह निरपवाद भेद है। अिस बारेमें दो मत नहीं हो सकते।

लेकिन अिस भेदके कारण अेक दूसरी कल्पना या रूपक पैदा हुआ है जो मेरे विचारसे गलत या अर्धसत्य है और अुसे छोड़ देना जरूरी है। वह कल्पना पुरुषको क्षेत्रपति या बीजका स्वामी और स्त्रीको क्षेत्र माननेकी है। स्त्रीके पेटमें गर्भका पोषण होता है यह बात सच है लेकिन अिससे यह कहना बिलकुल ठीक नहीं कि वह नरका क्षेत्र है। सच बात यह है कि नरकी जीवनशक्ति और नारीकी जीवनशक्ति दोनों मिलकर संतति — अुस योनिके जीव — का रूप लेती है। नरकी जीवनशक्ति नारीकी जीवनशक्तिके बिना 'जीव' नहीं बनती, सिर्फ अेक तरहका जीवनकोष ही रहती है। अुसी तरह नारीकी जीवनशक्ति नरकी जीवनशक्तिके बिना 'जीव' नहीं बनती। अेक योनिका जीव बननेके लिअे अुन दोनों शक्तियोंका कहीं किसी न किसी तरह मिल जाना पड़ता है। कहा जाता है कि कुछ प्राणियोंमें यह अेकीकरण दोनोंके शरीरके बाहर होता है। दोनोंके मिलते ही 'जीव' बन जाता है। लेकिन अिस जीवको जीनेके लिअे सुविधा चाहिये। अुसकी अिस बहुत ज्यादा कमजोर और सूक्ष्म अवस्थामें अुसे अुचित आसरा और अुचित खुराक वगैरा मिलना चाहिये। मेंढक जैसे जिन प्राणियोंमें नर-मादाके शरीरसे बाहर जीव बनता है अुनमें पहलेसे ही माता-पितासे स्वतंत्र रहकर अपना

पोषण कर लेने और बढ़नेकी ताकत होती है। अुनमें माता गर्भ धारण नहीं करती। स्तन्य प्राणियोंमें यह ताकत नहीं होती। अुन्हें जिन्दे रखनेके लिअे ज्यादा सुविधाओंकी जरूरत है। अूपर कहे अनुसार यह सुविधा कर देनेकी ताकत नारीमें है। जिस तरह मनुष्य-जातिमें माता दस महीने तक संतानको अपने पेटमें पालती है। जिस कारणसे भले यह कहा जाय कि जीव बीज है और मां अुसका क्षेत्र है। परन्तु अिससे यह नहीं कहा जा सकता कि स्त्री पुरुषका या पुरुषके लिअे क्षेत्र है। खेतमें बीजको पोषण देनेकी ताकत है लेकिन अैसा नहीं है कि खेतकी जीवन शक्ति और बीजकी जीवनशक्ति मिलकर अेक वनस्पति-जीव बनता है। खेतके बिना भी बीज अुग सकता है और कुछ दिन टिक भी सकता है बादमें खुराकके बिना भूखमरीसे मर जाय यह दूसरी बात है। पुरुषकी जीवनशक्ति अिस तरहकी नहीं है वह स्त्रीकी जीवनशक्तिके बिना बीज ही नहीं बीज ही नहीं है।

फिर भी स्त्रीको क्षेत्र और पुरुषको क्षेत्रपति माननेका रिवाज पड़ गया है और बादमें अुस रूपकके आधार पर अनेक तरहके समाज व्यवस्थाके नियम बने हैं। खेतके मालिक खेत और फसलके बारेमें समाजके जो कुछ नियम हों वैसे ही नियम पिता माता और सन्तानको लागू करनेकी कोशिशें हुआी हैं। यह गलत रूपक छूट जाय तो अुसके आधार पर बने हुअे नियम और संस्कार अपने आप निराधार बन जायेंगे। अिस बारेमें यदि कोअी रूपक बनाया जा सके तो वह यह हो सकता है सन्तान रूपी विद्रस्टके माता पिता ट्रस्टी हैं। अुनमें माता ट्रेज़रर — संरक्षक — है और पिता व्यवस्थापक — मनेजिंग ट्रस्टी — है। सिर्फ मानव-जातिमें ही नहीं बल्कि दूसरे प्राणियोंमें भी गर्भकालमें और जन्मके बाद कुछ समय तक पिता अिस तरह व्यवस्थापक ट्रस्टीका काम करके संरक्षक ट्रस्टीकी मदद करता है। वह रत्न किसका है यह पूछा जाय तो मैं कहूंगा कि अुसके पैदा करनेवाले और पोषण करनेवाले माता पिता हैं अिसलिअे माता-पिताको अुससे कुछ सुख लाभ और मेहनताना

पानेका अधिकार हो सकता है लेकिन वह रत्न तो प्राणीसमाजका ही है। और अिससे भी आगे बढ़कर जिब्रानकी भाषामें कहूं तो

तुम्हारे बालक तुम्हारे बालक नहीं हैं।

"लेकिन जगत-जीवनकी अपने ही लिअे की गयी कामनाकी वे सन्तान हैं।

"वे तुम्हारे द्वारा आते हैं लेकिन तुममें से नहीं आते और व तुम्हारी बगलमें रहते हैं फिर भी तुम्हारे नहीं हैं।"
(विवाहके समय')

तब यह क्षेत्र और क्षेत्रपतिकी कल्पना तो छोड़ ही देनी चाहिये। अब हम फिर मूल बात पर आते हैं।

नरजातिने अपने शरीर द्वारा सन्तानके धारण-पोषणकी शक्ति खो दी या नारीजातिने अुसे प्राप्त किया और अभ्याससे बढ़ाया या (जूं वगैरा कीड़ोंकी तरह) सन्तानने अपनी कोशिशसे अेकके शरीरमें अपना घर बना लिया और समय पाकर अुसमें से आनुवंशिक नर-नारीका भेद पैदा हुअे यह हम नहीं जानते। अिस शक्तिभेदके कारण स्त्री और पुरुषकी शरीर रचनामें भेद पैदा हुअे हैं यह हम जानते हैं। लेकिन स्त्रीकी गर्भधारणकी खास शक्तिका मुकाबला कर सकनेवाली कौनसी विशेष शक्ति पुरुषजातिमें प्रगट हुअी है और अुसके बारेमें प्राणीशास्त्रियोंकी क्या मान्यता है यह मैं नहीं जानता। वैसे तो अेक ही बात पायी जाती है। वह यह कि मां बालकको पेटमें आसरा देकर पाली हो या दूध पिलाकर अुसका पोषण करती हो अुतने समय तक साधारण तौर पर अुसमें नये जीवन-कोषों (रज) का अुत्पादन बन्द रहता है। नरजातिमें सन्तानके धारण-पोषणकी शक्ति ही न होनेसे अुसमें जीवन कोषों (वीर्य) का अुत्पादन स्वभावतः बन्द नहीं होता बल्कि हमेशा चालू ही रहता है।

आम तौर पर यह कहा जाता है कि दूसरे प्राणी अेक खास ऋतुमें ही विकारी होते हैं। मोटे तौर पर यह भले ही कहा जा सके। लेकिन

बारीकीसे देखा जाय तो यह भी अधूरा सत्य है। अनुकूलता मिलने पर पशु-पक्षियोंके नर भी सारी ऋतुओंमें विकारी होते हैं। यानी अिसमें अेक बात अनुकूल परिस्थितिकी भी है। मानव-जातिमें खासकर सुधरी हुअी मानी जानेवाली जातियोंमें और अुनमें भी अूंचे और मध्यम वर्गोंमें अैसी अनुकूलता बहुत मिलती है और अिस हकीकतमें से पुरुषजातिके कामविकारकी समस्या खड़ी होती है।

मानव-जातिकी आज यह हालत है। अुसमें से हमें कल्याणका रास्ता खोजना है। अिस सवाल पर अब हम विचार करें।

४

मनुष्य पशु

विकासशास्त्रके वादोंको कम-ज्यादा रूपमें मान्य रखकर मानव समाजमें पैदा होनेवाली समस्याओं पर विचार करनेका विद्वानोंमें आज लगभग सर्वसम्मत रिवाज हो गया है। सृष्टिके आरंभसे अनंत योनियां हैं या अेक ही मूल योनिमें से आजकी अनंत योनियां पैदा हुअी हैं अिस बारेमें चाहे जो तर्क हो, लेकिन अिसमें कोअी शक नहीं कि सब योनियोंमें कुछ समान स्वभाव रहे हैं। यह बात हमारे देशके प्राचीन विचारकोंके ध्यानमें भी आ गअी थी। आहार, निद्रा, भय और मैथुन प्राणीमात्रमें समान हैं अैसा कहनेवालेने यह अवलोकन कमसे कम स्थूल रूपमें तो किया ही था। विकासशास्त्रियोंने अिस दिशामें बहुत बारीक छानबीन करके अिस अवलोकनको ज्यादा पूर्ण बनाया है।

लेकिन अैसा लगता है कि अिस अवलोकन परसे विकासवादियोंकी विचारधारा अुल्टे रास्ते चढ़ गअी है। मनुष्य पशुसे अूंचे प्रकारका प्राणी है यह दावा गलत है। वह पशु ही है और चाहे जितनी कोशिश करे, तो भी अुसका पशु-स्वभाव कभी छूटनेवाला नहीं है। अैसा विचारनेवाला अेक वर्ग अिस फैसले पर पहुंचा मालूम होता है कि

जिस कारणसे मनुष्यको अपने जीवनधर्म पशुके जीवनसे सीखने और ठहराने चाहियें। मनुष्यने धर्मके नीतिके रूढ़िके और किसी तरहके दूसरे बन्धन खड़े करके कभी तरहकी कृत्रिमतायें और झंझटें पैदा कर ली हैं। जिनके फलस्वरूप मनुष्य-जातिने कोओी खास भुन्नति की हो अैसा लगता नहीं। भुल्टे भुसने व्यवहारकी स्वतन्त्रता या वज़नका नुकसान ही भुठाया है। मानव-समाजका ज्यादातर हिस्सा जैसा दस हजार या बीस हजार वर्ष पहले कुत्तेकी तरह लड़ाकू स्वार्थी कामी दगाबाज और क्रूर या कुत्तेकी तरह ही भावुक प्रेमल वफादार और दयालु था वैसेका वैसा ही आज तक रहा है। जो व्यक्ति भिससे बिलकुल निराले ढंगके विशेष भुच्च स्वभावके दिखाओी देते हैं भुनकी संख्या बढ़ती हो अैसे कोओी चिह्न दिखते नहीं। धर्म वगैराके बन्धन बिलकुल न होते तो भी भितने अपवादरूप व्यक्तियोंका निर्माण होता ही रहता। अैसे लोगोंके स्वभावका झुकाव जन्मसे ही भिस तरहका होता होगा। धर्म वगैराके बन्धनोंके कारण वह अैसा हुआ होगा यह माननेके लिये कोओी प्रमाण नहीं है। भिस तरह धर्म नीति वगैराके बन्धनोंके खिलाफ विद्रोह करनेका विचार पैदा हुआ है।

भूपरकी विचारधारासे भुल्टे प्रकारकी लेकिन विकासवादके विचारमें से ही पैदा हुओी अेक दूसरी विचारधारामें से भी अैसा ही नतीजा आया है।

वह विचारधारा अैसी है मनुष्य भी पशु ही है यह सच है। लेकिन बुद्धिका विशेष विकास होनेसे वह पशु-समाजसे बिलकुल अलग पड़ गया है। दूसरे प्राणी अपने जीवन-व्यवहारमें स्वतन्त्र नहीं हैं। कुदरत जिस वक्त भुन्हें जैसी प्रेरणा करती है भुस वक्त वे वैसा काम कर डालते हैं। वे पूरी तरह कुदरतके वशमें हैं। मनुष्य भी अन्तःप्रकृतिके वशमें है। लेकिन बाह्य प्रकृतिका वह कुछ हद तक स्वामी बना है और ज्यादा ज्यादा बनता जाता है। भिसलिअे भुसके भोग सिर्फ कुदरतके वशमें रहनेवाले प्राणियोंके जैसे और जितने ही नहीं हैं। भुसके

लोगोंकी सभ्यता भाषा परम्परा संस्कारिता (अुसी तरह विकृति भी) — सब कुछ पशुओंसे अलग और ज्यादा है। सिर्फ पेट भरने जितने ही अुसके खानपान नहीं हैं सिर्फ सन्तान पैदा करनेके लिअे ही अुसका विषयभोग नहीं होता सिर्फ शरीर या बच्चोंकी रक्षाके लिअे ही अुसके कपड़े-लत्ते और मकान नहीं होते। बल्कि खानपान विषयभोग, घरबार वगैरामें स्वतंत्र रूपसे अुसे आनन्द आता है। अिस कारणसे अिन सबके लिअे अुसकी दौड़धूप और प्रवृत्ति बढ़ी हुअी है।

लेकिन अैसा करते हुअे अुसके रास्तेमें मुश्किलें भी बहुत आती हैं। अुसकी प्रवृत्तियां अुसे कअी तरहकी बीमारियों झगड़ों और दुःखोंमें फंसा देती हैं। अिन बुराअियोंसे बचनेके लिअे अुसे फिर नये अुपाय खोजने पड़ते हैं — खोजने चाहियें। अुसका अब केवल प्राकृत — कुदरती — प्राणी बना रहना असंभव है। अुसकी अिस दशाको 'कृत्रिम' कहो या संस्कृत अथवा 'सभ्य' कहो लेकिन अुसके लिअे अब यह दशा बनाये रखनेके सिवा कोअी चारा नहीं है। कृत्रिम कहकर गुस्सा होनेसे काम नहीं चलेगा। अिसलिअे अुसमें 'संस्कृति' या सभ्यता मानकर अिस संस्कृति या सभ्यताको ज्यादा ज्यादा शुद्ध बनानेका ही प्रयत्न करते रहना चाहिये। क्योंकि मनुष्य पशु हो तो भी वह बुद्धिमान पशु है। जिस तरह अूंटकी गरदन और हाथीकी नाक खूब बढ़ गअी है और अब अुनके छोटे होनेकी बहुत ज्यादा या निकट भविष्यमें कोअी आशा नहीं अुसी तरह मनुष्यकी बुद्धि दूसरे अंगोंके मुकाबले बहुत बढ़ गअी है और अुसके घटनेकी आशा अूपर बताये हुअे प्राणियोंसे भी कम है। क्योंकि अुसे बढ़ानेमें ही वह अपना कल्याण देखता है। अिसलिअे अुसका पुरुषार्थ अिसीमें है कि वह अिस बुद्धिका पूरा-पूरा अुपयोग करके अपने सुखोपभोग पशुसे ज्यादा बढ़ाये और अुसमें दूर नतीजोंसे बचनेके अुपाय खोजता रहे।

अिस तरह दो भिन्न दृष्टियोंसे विचार करने पर भी दोनों विचारक अन्तमें अेक ही निर्णय पर पहुंचते हैं। वह यह कि — मनुष्य

अेक पशु है और पशु ही रहनेवाला है। अुसमें रही भोग वगैराकी वृत्तियां कुदरतके नियमोंके अनुसार हैं अिसलिअे अुन्हें हम वगैराके बन्धनोंसे रोकनेकी कोशिश बकार है। लेकिन मानव-पशु दूसरे पशुओंसे बहुत ज्यादा आगे बढ़ा हुआ प्राणी है अिसलिअे अुसके जीवनके व्यवहार बहुत अटपटे और विविध प्रकारके बन गये हैं। और अिससे बहुतसे विघ्न और समस्यायें खड़ी हुमी हैं। अिन विघ्नों और समस्याओंका हल मिले और भोग सिद्ध हों अिसके लिअे बुद्धिसे खोजे जा सकनेवाले सारे अुपाय काममें लेने चाहिये।

आधुनिक युरोपके विद्वान जीवनसे सम्बन्ध रखनेवाली अनक बातोंकी अिन मतोंके आधार पर खोज कर रहे हैं। विवाह अिनमें से अेक है।

८

विवाहका पहला प्रयोजन

विकासवादी विचारकोंकी अैसी पुस्तकोंको अूपर-अूपरसे पढ़ने पर अुनमें भूल नहीं खोजी जा सकती और अुनमें अैसी दलीलें देखनेमें आती हैं कि अुनकी बातें हमारे गले अुतर जायं। अैसा कहना अन्याय होगा कि य लेखक दुष्ट हेतुसे प्रेरित होकर अैसी पुस्तकें छिखते हैं। अिनमें से कुछ लेखक तो अिन विचारोंको सत्य मानकर और सत्यका प्रचार करना हमारा धर्म है अैसा समझकर ये विचार प्रगट करते हैं।

लेकिन मुझे अैसा लगता है कि अिन सब विचारोंमें असल चीजको ही भुला दिया गया ह। अिसलिअे पहले अुसका विचार कर लेना जरूरी है।

विकासशास्त्रमें मनुष्य-शरीर और पशु-शरीर तथा अिन शरीरोंकी जनम मरण क्षय वृद्धि वगैरासे सम्बन्ध रखनवाली क्रियाओंके बीच मुकाबला करनेका अच्छा प्रयत्न किया गया है। अिन शारीरिक क्रियाओंमें जो बुद्धितंत्र — दिमागकी ज्ञानतंतु-व्यवस्था — स्थूल रूपमें काम करता

है और जो प्रेरणाओंका अनुभव कराता है अुसका भी अच्छा अध्ययन किया गया है। लेकिन मेरे खयालसे जिस महत्त्वकी चीज पर विकास शास्त्रमें विचार नहीं किया गया है वह तो अिन दोनों ही से परे और ज्यादा सूक्ष्म है। वह चीज है विवेक और गुणोत्कर्षके रूपमें प्राणियोंमें प्रगट होनेवाली भावना जो मनुष्यके बुद्धिविकासके साथ अुसमें विशेष रूपसे प्रगट हुअी है। यह बात जरा स्पष्ट समझा दूं।

सारे प्राणी ज्ञानवान हैं। वे जितना जानते हैं अुसका अुन्हें भान होता है। सब प्राणियोंको अपने ज्ञानका अन्दाज होता है। वे कामवश होते हैं तब कामको जानते हैं क्रोधके वश होते हैं तब क्रोधको जानते हैं लोभके वश होते हैं तब लोभको जानते हैं भूखे-प्यासे होते हैं तब भूख-प्यासको जानते हैं। अिस बारेमें मनुष्य और प्राणीके बीच बहुत भेद नहीं है। अिस तरह कहा जा सकता है कि सभी प्राणी ज्ञानी हैं। ज्ञानी होना मनुष्यकी ही विशेषता नहीं है।

लेकिन मनुष्यकी विशेषता यह है कि वह सिर्फ ज्ञानी ही नहीं बल्कि अज्ञानी भी है। यानी वह केवल अपने ज्ञानका ही साक्षी — जान-कार — नहीं बल्कि अपने अज्ञानका भी साक्षी होता है। दूसरा प्राणी जो जानता है अुसका भान तो अुसे होता है लेकिन जो वह नहीं जानता अुसके बारेमें अैसा जानता नहीं मालूम होता कि मैं यह नहीं जानता। अुदाहरणके लिअे वह पानीको देखता है जानता है और पीता है। लेकिन पानी क्या पदार्थ है यह जानता नहीं मालूम होता। अितना ही नहीं अैसा भी नहीं लगता कि पानीके विषयमें अपने अिस अज्ञानका अुसे भान हो। अुसी तरह वह पानीको जानता है पर शराबको नहीं जानता और वह शराबको नहीं जानता अैसा भी अुसे मालूम नहीं। शराब जैसी किसी चीजकी अुसके लिअे हस्ती ही नहीं है। यही बात अुसके दूसरे अज्ञानोंके बारेमें भी है।

मनुष्यमें यह शक्ति विशेष है। वह अपने अज्ञानको जानता है अितना ही नहीं बल्कि ज्यों-ज्यों अुसका ज्ञान बढ़ता है त्यों-त्यों अुसे

अपने अज्ञानका माप भी ज्यादा स्पष्ट होता जाता है ! सार्क्रेटीजके कथनानुसार ज्ञानी होनेका मतलब अज्ञानका स्पष्ट माप पा लेना है। ज्ञानी होनेका अर्थ अज्ञान-सागरकी अेक बूंद कम करनेसे ज्यादा कुछ नहीं है।

अिसी तरह जब प्राणी काम क्रोध या लोभके वश होता है तब अपनी अिस स्थितिको वह जानता है और अुसके अनुसार काम करता जाता है। लेकिन जब वह कामवश नहीं होता तब अैसा नहीं मालूम होता कि अुसे अिस बातका ज्ञान हो कि वह निष्काम है और अुसकी यह स्थिति किस प्रकारकी है। अिसी तरह अक्रोध निर्लोभ वगैरा स्थितिमें रहना क्या होता है अिसका भी अुसे ज्ञान नहीं होता। योग सूत्रोंकी परिभाषामें कहें तो वह सिर्फ 'वृत्तिकी सारूप्य अवस्था' को ही जानता है।

मनुष्यका अैसा नहीं है। वह जिस तरह अपनी विकारी स्थितिको जानता है अुसी प्रकार अुसे अपनी निर्विकार स्थितिका भी समाल है—भिदान कर सकता है। दोनों स्थितियोंके सुख-दुःख प्रसाद विषादको वह जानता है। अिस कारण यद्यपि प्राणियोंकी तरह ही अुसका भी विकारवश होनेका स्वभाव है फिर भी वह सिर्फ अिसके अनुसार काम करके और अुस समयके सुख-दुःखको भोगकर मुक्त नहीं हो जाता—नहीं हो सकता। अुसे अुसके भावकी और अुसके अभावकी स्थितिके प्रसाद और विषादका स्मरण रहता है।

चित्तका यह खास तरहका विकास है। अिसीका विवेक कहते हैं। अैसा विवेक प्राणियोंमें भी कुछ हद तक होगा फिर भी यह माननेमें कोअी हर्ज नहीं कि मनुष्य जितना नहीं होगा।

अिस तरह अपने अज्ञान अकाम (कामविकार रहित स्थिति), अक्रोध वगैराका ज्ञान होनेके कारण मानवचित्तका स्वभाव ही अैसा बना होता है कि वह अज्ञानमें से ज्ञानकी ओर, रागमें से विरागकी ओर और विवशतामें से अीश्वरता (प्रभुता) की ओर जानेकी कोशिश किया करता है।

अैसा वह सिर्फ धर्म या नीतिके किसी संस्कारके कारण ही नहीं करता। लेकिन जिस तरह प्रकाशकी तरफ झुकना वनस्पतिकी प्रकृति ही है, जिनसीका स्वभाव है, अुसी तरह यह अुसकी प्रकृति ही है। अैसा किये बिना अुससे रहा ही नहीं जा सकता।

यह स्वभाव ही धर्मकी अुत्पत्तिका मूल कारण है। सारे प्रचलित धर्मशास्त्रों और नीतिशास्त्रोंको जला डालें और सारे बच्चोंका किसी भी तरहके धार्मिक संस्कारोंके बिना पालनकी व्यवस्था करें तो भी धीरे-धीरे अुनमें धर्म और अधर्मके नीति और अनीतिके नियम पैदा होंगे ही। अिसी कारणसे सांख्यशास्त्री कहते हैं कि अधर्ममें से धर्ममें जानेका गुण चित्तके मूल स्वभाव ही में विद्यमान है। यह स्वभाव छूट नहीं सकता।

विवाह धर्मकी जड़ चित्तके अिस स्वभावमें है। अिस दृष्टिसे में विवाहकी अेक व्याख्या यह सुझाता हूं कामवश होनेकी स्थितिमें से निष्काम स्थितिमें या कामसे स्वाधीन रहनेकी स्थितिमें कैसे जाया जाय अिस विचारमें से पैदा हुअी स्त्री-पुरुष भोगकी व्यवस्था ही विवाह है। जो विवाह प्रथा अिस नतीजेको ध्यानमें रखकर कायम की गअी है वह शुद्ध है दूसरी अशुद्ध या कम शुद्ध है। अिस अुद्देश्यसे विवाहकी प्रथामें जो सुधार हों वे शुद्ध दूसरे अशुद्ध या कम शुद्ध।

विवाहके पीछे रहा यह अेक विचार हुआ।

६

विवाहका दूसरा प्रयोजन

अब अेक दूसरी दृष्टिसे विवाहके बारेमें सोचें। काम क्रोध, लोभ वगैराको हम विकार कहते हैं। ये विकार जिसलिअे कहे जाते हैं कि प्राणीको परवश जैसा कर डालते हैं। अिनसे प्रेरित होनेवाला प्राणी पागलकी तरह काम करता है। वह शुद्ध विरूप—बेढंगा बनता है या

अुसकी क्रिया विकृत — बदली बनती है। लेकिन अिस विकृत दशामें प्रगट होनेवाले रूप ही चित्तके अलग-अलग रूप नहीं हैं। ये तो अुसकी अव्यवस्थित निकृष्ट दशाको बतानेवाले हैं। अिस अव्यवस्था और निकृष्ट दशासे चित्त व्यवस्था और अुत्कृष्ट दशाकी तरफ जाता है। काम अहैतुकी भक्ति (=प्रेम) में क्रोध तेजमें लोभ सर्वोदयके लिअे किये जानेवाले प्रयत्नमें बदल जाता है।

काम क्रोध वगैरा विकारोंका अिस तरहका अुत्कर्ष कुछ हद तक प्राणियोंमें भी देखा जाता है। मनुष्यमें यह अुत्कर्ष ज्यादा शुद्ध मात्रामें हो सकता है और बार-बार हुआ भी है।

अिस तरहसे हम काम क्रोध लोभ वगैराका विचार करें, तो मालूम होगा कि हरअेक गुणमें दो दो धर्म रहे हैं। हमें विवाहके सिलसिलेमें कामका ही विचार करना है अिसलिअे यहां कामके ही अिन दो धर्मोंकी जांच करें।

प्राणीमें संयोगकी अिच्छा और क्रिया पैदा करनेवाला बल कामका अेक धर्म है। और प्रेमकी भावना या गुणके रूपमें बदलना कामका दूसरा धर्म है। कामवश होनेकी स्थितिमें से निष्काम स्थिति या कामसे स्वाधीन रहनेकी स्थितिमें जाना — अिस तरहकी निर्विकारिता सिद्ध होना — चित्तके अुत्कर्षकी अेक बाजू है और कामवश प्रेममें से अहैतुकी भक्तिमें चित्तकी भावनाका बदलना चित्तके अुत्कर्षकी दूसरी बाजू है।

अिस दूसरी दृष्टिसे देखने पर विवाह प्रेमके अुत्कर्षके बहुतसे साधनोंमें से अेक है। लेकिन यह अेक ही साधन है अैसा नहीं कहा जा सकता। मां-बाप बच्चे कुटुम्बी-जन मित्र गुरु देव और पशु भी अिस भावनाका अुत्कर्ष करनेमें साधन बनते हैं। लेकिन जवान बननेके बाद बहुतसे लोगोंके लिअे विवाह और विवाहके फलस्वरूप होनेवाली कुटुम्बवृद्धिके द्वारा ही अिस भावनाका अुत्कर्ष हो सकता है या अुसके बिना अिसका अुत्कर्ष नहीं हो सकता। अिससे विवाह अुनके लिअे अेक

अनिवार्य आवश्यकता बन जाता है। विवाहके अिस साधनकी आवश्यकता होने पर भी जो किसी कारणसे अिसके — यानी अिसकी शुद्ध प्रथाके — अनुसार स्त्री-पुरुष-सम्बन्ध नहीं कायम कर सकते अुनमें प्रेमभावनाका अुत्कर्ष नहीं होता अितना ही नहीं बल्कि वह विकृत रूप पकड़ लेती है और कभी तरहकी शारीरिक और मानसिक दुर्दशाका कारण बनती है।

अिस परसे विवाहकी दूसरी व्याख्या यह की जा सकती है कि कामके पीछे रही अव्यवस्थित और निकृष्ट प्रेमभावनाको सुव्यवस्थित और अुत्कृष्ट अहैतुकी भक्तिमें बदलनेके विचारमें से पैदा हुआी पति पत्नी-व्यवस्था और व्यवहार ही विवाह है। जो लग्नप्रथा अिस नतीजेको ध्यानमें रखकर कायम की गअी हो वह शुद्ध दूसरी अशुद्ध या कम शुद्ध। अिस ध्येयसे लग्नकी प्रथामें जो सुधार हों वे शुद्ध दूसरे अशुद्ध या कम शुद्ध।

७

विवाहका तीसरा प्रयोजन

अब अेक तीसरी दृष्टिसे विवाहका विचार करें।

मैंने अूपर कहा है कि चित्तकी अशुद्ध प्रेमभावनाका अहैतुकी भक्तिमें बदलना अुसके अुत्कर्षका अेक अंग है।

पति-पत्नी मां-बाप-बालक भाअी-बहन भाभी भाभी मित्र-मित्र गुरु-शिष्य स्वामी-सेवक देव भक्त मालिक-पशु वगैरा जोड़ोंमें कोअी भी स्वार्थ या आशा न रही हो तो भी अहैतुकी भक्ति हो सकती है। और अैसे अुत्कृष्ट प्रेमके अुदाहरण बार-बार देखनेका मिल जाते हैं। प्राणियोंमें भी अिस तरहका चित्तका अुत्कर्ष पाया जाता है। बार-बार देखनेमें आने पर भी यह नहीं कहा जा सकता कि ये अुदाहरण बहुत

मामूली है। अिसलिअे जब-जब अैसे मुत्कृष्ट प्रेमके अुदाहरण देखनेमें आते हैं तब जो खुद अैसी स्थितिका अनुभव नहीं कर सकते अुन्हें भी अैसे जोड़ोंका सम्यग् भादर्श लगता है और अिनके लिअे वे आदर दिखाये बिना नहीं रह सकते। अिस परसे यह दीखता है कि चित्तका कहां पहुंचनेका स्वभाव है।

पर यह अुत्कर्षकी चरम सीमा है अैसा नहीं कहा जा सकता। यदि अिस महेतुकी भक्तिका दायरा अपने जोड़ीदार तक ही फैलकर रह जाय और ये दोनों दो डालवाले झोंपड़ेकी तरह सिर्फ अेक-दूसरेको ही सहारा देनवाले और अेक-दूसरेके ही सहारे जीनेवाले बनकर रहें तो यह स्थिति आदरणीय होते हुमे भी दयनीय बन सकती है और कहीं-कहीं यह अनिष्ट भी मानी जा सकती है। जयदेव-पद्मावतीकी कथा काव्यमें शोभा पा सकती है। अुसे आदर्श नहीं मानना चाहिये।

आत्मा आलम्बनरहित और व्यापक है। वह सबका आधार है पर खुद किसीके आधार पर टिकी हुमी नहीं है। वह संकुचित दायरेमें बन्द भी हुमी नहीं बल्कि सब जगह समान भावसे बसी हुमी है। चित्तका मनोरथ अिस स्थितिको पहुंचनेका है। अिसलिअे यह महत्वकी चीज है कि जो महेतुकी भक्ति वह अेक जगह सिद्ध करे वही सब जगह फैले और वह अपने साथीके विनाशी स्वभावको पहचानकर स्थूल रूपमें अुस पर आधार रखकर न जीये। स्थूल रूपमें साथीसे बिछुड़नेकी हमेशा संभावना रहती ही है। बहुत ज्यादा भक्ति होने पर भी साथीके स्थूल वियोगको सहनेकी अुसमें ताकत होनी या आनी चाहिये।

अिसलिअे विवाह मनुष्यको अुसकी प्रेमकी भावनाको संकुचित दायरेमें से व्यापक दायरेमें फैलानेकी शिक्षा देनेवाला होना चाहिये। अल्पमें से महानकी ओर ले जानेवाले साधनके रूपमें अुसका विचार होना चाहिये। कन्नकी अिस प्रथामें अैसा करनेकी ताकत हो वह शुद्ध दूसरी अशुद्ध या कम शुद्ध है।

८

विवाहका चौथा प्रयोजन

और भी दूसरी दृष्टिसे विवाहका विचार करें।

स्त्री और पुरुषके संयोगका कुदरती परिणाम प्रजावृद्धि है।

संयोग होते हुअे भी प्रजावृद्धि न हो तो अिसमें कुदरतके नियमकी निष्फलता है। क्योंकि संयोगका जो परिणाम आना चाहिये वह नहीं आया। धरतीमें बीज बोया हो तो भी वह न अुगे तो कहा जायगा कि कुदरत असफल रही।

यह निष्फलता चाहे जिस कारणसे हो लेकिन जैसे निष्फल गया हुआ बीज सुझाता है कि कहीं तो भी दोष है अुसी तरह यह भी सुझाती है कि कहीं न कहीं दोष जरूर है। संयोगकी अिच्छा होते हुअे भी प्रजाकी अनिच्छा — यह बीज बोनेकी अिच्छा होते हुअे भी अुसके न अुगनेकी अिच्छा करने जैसा है।

लेकिन अिस प्रजावृद्धिका अर्थ क्या? कुदरतकी दृष्टिसे देखें तो यह अुसकी विकासकी साधना है। विकासवादी जिस अुत्क्रांति (क्रमशः अुत्तमता और पूर्णताकी ओर बढ़ना) का नियम संसारमें देखते हैं अुस नियमकी सिद्धिके लिअे सारे प्राणियोंमें प्रजाकी वृद्धि होना अनिवार्य है। जो प्राणी निर्वंश होकर मर गये अुनका विकास हुआ या ह्रास यह कुदरतकी दृष्टिसे कहना संभव ही नहीं। जिनका वंश चलता है अुन्हींके द्वारा कुदरतकी प्राप्त की हुआी विकास-सिद्धि प्रत्यक्ष देखी जा सकती है। यह विकासकी सांकल हजारों कड़ियोंकी बनी होती है और अेक-अेक कड़ीकी रचना प्रजाकी सैकड़ों पीढ़ियां द्वारा की जाती है। अितनी धीमी यह प्रगति है। प्रकृतिवादीकी रायमें तो अिसमें प्रकृति अपनी अितनी ज्यादा शक्ति खर्च करती है कि अेक प्राणी पैदा हो और पूर्णावस्थाको पहुंचकर मरे यह अितने सारे प्राणियोंके जगतमें होने पर भी प्रकृतिके लिअे अनोखे सौभाग्यकी बात ही माना जा सकती है।

क्योंकि जितने प्राणी पूर्णावस्थाको पहुंचते हैं अनुसे हजारों गुने ज्यादा प्राणी मानो बेकार ही पैदा हुअे हों अिस तरह निष्फल बन जाते हैं।

अिस बारेमें भूअमीनुं जीवन (दीमकका जीवन) नामक गुजराती पुस्तकमें मैंने कुछ विचार पेश किये हैं। अुन विचारोंमें कोअी फेरफार करने जैसा आज भी मुझे नहीं लगता। अुसमें से कुछ मैं मनुष्य-जातिके सम्बन्धमें थोड़े वाक्य जोड़कर यहां देता हूं

क्या यह प्रकृतिकी जड़ता होगी? क्या अैसा होगा कि वंशकी वृद्धिके लिअे जिस प्रकारकी शक्तिकी जरूरत है वह शक्ति पैदा होते होते मूल हेतु सिद्ध होनेके लिअे जितनी जरूरी हो (या मनुष्य-जातिमें अुसके लिअे सुविधारूप हो) अुससे अनेक गुनी ज्यादा मात्रामें पैदा हो जाती है और बादमें बेकार बरबाद हो जाती है या नष्ट हो जाती है (या असुविधारूप बन जाती है)? या अिसके पीछे कोअी दूसरा हेतु रहा होगा? क्या अैसा नहीं हो सकता कि अिस शक्तिका खास काम कोअी दूसरा ही हो और वंशवृद्धि अिसका अेक अतिरिक्त गौण और अनायास पैदा होनेवाला परिणाम ही हो?

मुझे अैसा ही होना संभव लगता है। जीवमात्रमें रही हुअी वंश बढ़ानेकी शक्ति — जिसके फलस्वरूप नर-मादाके भेद और कामादि विकारोंका निर्माण होता है — अिस शक्तिका खास काम नहीं बल्कि गौण अतिरिक्त परिणाम ही होगा अैसा मुझे लगता है।

"जिस तरह बहुत बड़े विस्तारमें फैली हुअी भाप अुचित साधनों द्वारा गाढ़ी बन जाती है और अंजलीभर पानीमें बदल जाती है जिस तरह चारों ओर फैल जानेका स्वभाव रखने वाली बिजलीकी शक्ति मशीनों और तारोंके जरिये अिकट्ठी होकर अेक छोटेसे दीयेको जलाने जैसी बन जाती है अुसी

तरह मुझे लगता है कि व्यक्त या दृश्य संसार अुससे करोड़ों गुना ज्यादा विस्तारमें फैली हुअी अनंत प्रकारकी अव्यक्त या अदृश्य शक्तियोंका अेक ठोस स्वरूप ही है। (फिर) जिस तरह घर पर चढ़ाया हुआ तार बादलमें रही बिजलीको खींच लेनेका साधन बनता है अुसी तरह अलग-अलग जातिके जीव (विश्वमें फैली हुअी अनेक) शक्तियोंको खींचकर अुन्हें अिकट्ठी करने अुनमें कुछ फेरफार भी करने और अुन्हें प्रगट करनेके यंत्र साधन या निमित्त हैं। अुसी तरह ये यंत्र खुद भी अनेक तरहकी अव्यक्त शक्तियोंका सुविधाभरा ठोस व्यक्त रूप ही है।

फिर (विश्वके अनेक तत्त्वोंकी) विविध प्रमाणमें और विविध प्रकारकी रचना होनेसे अिन्हें वनस्पति और प्राणियोंके शरीरमें अद्भुत सामग्री होती है। अैसा कहें तो भी चल सकता है कि (तत्त्वोंकी) नअी-नअी रचना करनेके लिअे जीव अलग-अलग रासायनिक कारखाने हैं।

संसारके जीव अदृश्य शक्तियोंके दृश्यरूप हैं अलग-अलग शक्तियोंका अनेक तरहसे समन्वय करके नये प्रकारकी शक्तियाँ — माल —तैयार करनेके कारखाने भी हैं। और वे नये मालके कोठार भी हैं। जिस तरह जीवका तीन प्रकारका स्वरूप होनेके कारण अैसा हो सकता है कि अेक जीवरूपी कोठारमें बना हुआ और अिकट्ठा हुआ माल जब दूसरी तरहका माल पैदा करनेके लिअे अुपयोगमें आवे तब यह कारखाना और कोठार —या सारा शरीर — नष्ट हो जाय। फिर, ये कारखाने और कोठार मिलावटी या टूटफूट और कअी तरहकी दुर्घटनाओंसे भी नष्ट हो जाते हैं। अैसा होते रहनेके कारण अैसे कारखानोंकी परम्परा चालू रखनेकी कुदरतने जीवोंमें ही योजना बना रखी है। माल पैदा करनेके लिअे और कारखाने व कोठारके अच्छी

हालतमें चालू रहनेके लिये जो खास शक्ति जीवोंके शरीरमें काम करती है अुसे हम अुन जीवोंकी प्राणशक्ति वीर्यशक्ति या जीवनशक्ति कहेंगे। अिस जीवनशक्तिमें ही अपने जैसे दूसरे कारखाने पैदा करनेकी शक्ति भी रखी गयी मालूम होती है।

'यह तो हमने सिर्फ मानों स्थूल दृष्टिसे ही जीवोंका विचार किया। लेकिन अव्यक्त ब्रह्माण्डमें कभी वासनायें गुप्त विचार, कल्पनायें वगैरा भी रहते मालूम होते हैं। हमारे हृदयमें जो विचार, तरंगें अिच्छायें वगैरा अुठती हैं संभव है वे हमारे ही हृदयमें पैदा न होते हों बल्कि वातावरणमें अदृश्य रूपमें विद्यमान रहे हों और हमारी दिमाग रूपी मशीनके जरिये (रेडियोके जरिये पकड़ी जानेवाली आवाजकी तरंगोंकी तरह) पकड़ा कर अुसमें आते हों शायद पकड़ानेके बाद अुनका कोअी रूपान्तर भी होता हो और वे क्रियावान बनते हों तथा हमें अुनका केवल दर्शन या भान ही होता हो। अिस तरह जीव जिस प्रकारकी अव्यक्त शक्तियोंको भी प्रगट करनेके साधन बनते मालूम होते हैं। क्या असा नहीं हो सकता कि जीवकी वीर्यशक्ति या जीवनशक्तिका खास अुद्देश्य अिस शरीरको अिस कामके लिये तेजस्वी बनाये रखना हो और गौण अुद्देश्य असे दूसरे जीव निर्माण करना हो?

"यदि यह विचार ठीक हो तो जीवकी जीवनशक्तिका खास अुद्देश्य किसी प्रकारकी भौतिक या आध्यात्मिक अव्यक्त शक्तिका व्यक्त करनेका किसी तरहका नया भौतिक या आध्यात्मिक माल तैयार करनेका अुसका भंडार बननेका और अन्तमें भंडारके रूपमें कोअी दूसरी तरहका माल तैयार करनेमें कच्चे माल या आधे तैयार मालकी तरह खप जानेका है। अितना होनेमें ही अिस जीवका पैदा करनेका या पैदा होने देनेका प्रकृतिका अुद्देश्य पूरा हो जाता है। लेकिन अिसके साथ ही अिस कामको हमेशा

चालू रखनेके लिअ कुदरत भिस शक्तिका वंशवृद्धिके लिअे भी अुपयोग कर लेती मालूम होती है।

भिस दृष्टिसे देखें तो जीवोंको पैदा करनेमें कुदरतका हेतु अपनमें अप्रगटरूपसे रही हुअी अनेक तरहकी भौतिक और आध्यात्मिक शक्तियोंको प्रगट करना अुनके जरिये नये प्रकारके भौतिक और आध्यात्मिक रूप सिद्ध करना (यानी क्रमसे अपना विकास करना) अिन विविध रूपोंमें कोठारकी तरह अुनका अुपयोग करना फिर कोअी दूसरी तरहके रूप निर्माण करनेमें अुन भण्डारोंका कच्चे माल या आधे तैयार मालकी तरह अुपयोग कर डालना और अन्तमें भिस कामको हमेशा चालू रखनेके लिअे वंशपरम्परा द्वारा अुन जीवोंकी परम्परा चालू रखना मालूम होता है। जो विवाह-प्रथा प्रकृतिके अिस हेतुको अच्छीसे अच्छी तरह सफल बनाने वाली हो वह शुद्ध दूसरी अशुद्ध या कम शुद्ध है।

९

विवाहका पांचवा प्रयोजन

और फिर भी अिस विचार पर भानमें हमने सिर्फ जड़ प्रकृति वादीकी ही दृष्टि अपने सामने रखी है। भिससे आगे बढ़कर अब हम चैतन्य दृष्टिसे अिस प्रश्न पर विचार करें।

कामविकार जैसा अनुभव किस लिअे होता होगा? वंशवृद्धिकी प्रेरणा अभिलाषा भी क्यों होती है? अिस विकार पर विजय पानेमें कठिनाअी क्यों होती है? प्रकृतिवादीने तो कह दिया कि यह प्रकृतिका अपना विकास करनेके लिअ अपनाया हुआ रास्ता है। लेकिन जड़ प्रकृतिको विकासकी अिच्छा भला क्यों? अुसकी सिद्धि भी किस लिअे?

भिसका विचार करने पर मुझे अैसा मालूम हुआ है —

प्राणियोंके अन्दर रहे काम (=कामना अिच्छा कुछ जानने पाने या सिद्ध करनेकी अिच्छा) और अुनके अन्दर रहा काम (विकार)

दो अलग-अलग नहीं हैं। जब तक किसी प्राणीमें कोअी भी काम यानी वासना है तब तक अुसमें कामविकारका बीज रहेगा ही। प्राणी जीवनमें अपनी अनेक तरहकी कामनायें पूरी करनेका प्रयत्न करते हैं। लेकिन सारी कामनायें तो जीवनमें पूरी नहीं कर सकते। जिन्हें वे पूरा नहीं कर पाते अुन्हें छोड़ देते हैं या वे छूट जाती हैं अैसा नहीं। जिन्हें वे स्वयं तत्काल पूरा नहीं कर सकते और पूरी न हों तब तक अुन्हें मनमें भी पचाकर नहीं रह सकते अुन कामनाओंका प्राणियोंके शरीर पर होने वाला अेक परिणाम कामविकार है। तब कामविकारका अर्थ है पूरी न हुअी वासनाओंसे पैदा होनेवाली अुत्तेजना। जिसमें से और जिसीलिअे सन्तानकी अभिलाषा पैदा होती है। प्राणियोंमें सन्तानकी अभिलाषा बिना कारण ही पैदा नहीं होती। बल्कि जिन वासनाओंको वे खुद पूरा नहीं कर सकते अुन्हें सन्तानके ज़रिये पूरा करनेकी अभिलाषा रखते हैं। खुद जो काम पूरा न कर सके हों अुसे सन्तान पूरा करे अैसी माता-पिताकी अिच्छाको कौन नहीं जानता? जाने या अनजानमें माता-पिताके मनमें यह बात रहती है कि हमारी सन्तान हमारी वासनाओंकी जीती-जागती अमानत है अुनका बीज या वृक्ष है। अुसके ज़रिये माता पिता स्थूल रूपमें नहीं तो वासनारूपमें तो जीते ही हैं।

अिस तरह, जब तक किसी जीवको अपने बारेमें कोअी न कोअी अपूर्णता मालूम होती है कुछ न कुछ जानना या पाना रहता है और अिस अर्थमें जब तक वह सकाम है तब तक अुसे कामविकारका अनुभव होनेकी संभावना रहती ही है। हो सकता है अिस विकारको वह दबा दे अुस पर अितना काबू पा ले कि अुसके शरीर या मन पर अुसका ज़ोर न चले अुसे भीतर ही भीतर पचा दे और अिस तरह सन्तान द्वारा नहीं बल्कि अपने जीवनकालमें ही या (संभव हो तो) मरनेके बाद भी अपनी जानने-पानेकी अिच्छा पूरी करनेकी शक्ति बढ़ावे और अुसका संग्रह करे। लेकिन जब तक जीवनके बारेमें दूसरी अपूर्णता है, तब तक कामविकारकी संभावना भी रहने ही वाली है।

अिस तरह कामविकारको थोड़े-बहुत अंश तक अन्दर ही अन्दर पचा सकनेवाले कुछ आदमी होते हैं जो सन्तानके बदले शिष्योंमें अपनी वासनाओंका आरोपण कर जाते भी देखे गये हैं। विकारके जरिये स्थूल शरीरका निर्माण करनेमें काम आनेवाली शक्ति अुसका अच्छी तरह निरोध होनेके फलस्वरूप दूसरोंकी सन्तानका अपनी वासनाओंके आरोपणके लिअे अपनी सन्तान बना लेनेकी कम-ज्यादा शक्ति प्राप्त कर लेती है। यह शक्ति भी पीढ़ियों तक चलती देखी जाती है और कभी बार पटकी सन्तान पर आरोपित शक्तिसे ज्यादा बलवान भी होती है। अिस तरह वासनावाले मनुष्योंके लिअे कामविकारकी जीत भी दूसरी तरह वीर्यवान बनती है ताकि अुनकी वासनाअें अुनके जीवनकालमें नहीं तो भविष्यमें अिस जगतमें पूरी हों।

मनुष्य यदि अिस दृष्टिसे अपने कामविकारको देखे तो वह अिसे जवानीका अेक वेग या रोग या अुत्तेजना या विजातिके प्रति होनेवाला आकर्षण समझकर स्वतन्त्र रूपसे अिसके बारेमें विचार नहीं करेगा। बल्कि अपने जीवनकी सारी वासनाओं और अभिलाषाओंके विस्तार जानकी संभावनाका प्रतीकरूप मानकर विचार करेगा। जिन वासनाओंको पूरा करनेकी मनुष्य कोशिश करता है परन्तु जिन्हें अभी तक पूरा नहीं कर सका और जिन्हें पूरा करनेकी अिच्छा अुसमें खूब खलबली मचा रही है अुस खलबलीका अेक चिह्न अुसमें दिखाअी देनेवाला कामविकार है। अपनी अनेक प्रकारकी वासनाओंको पूरा करनेके लिअे मची हुअी अिस खलबलीको यदि मनुष्य धीरजसे काबूमें न रख सके धीरे धीरे अुन्हें सिद्ध करनेके पुरुषार्थमें लग रहनेके सिवा दूसरी तरह दिमाग न खो बैठना चाहिये — अैसा सोचकर यदि वह अपनी वासनाओंको पचाकर न रख सके तो संभव है वह अपने कामविकारको भी वशमें न रख सके। कामविकारको वशमें न रखा जा सके तो या तो वह सन्तति पैदा करनेमें अुपयोगी हो सकता है या दूसरी तरह नष्ट हो सकता है। दोनोंका तात्कालिक परिणाम तो यही होगा कि मनुष्यका अपनी

१०

लग्न-प्रथा

अब हम अिस बातका विचार करें कि किस प्रकारकी लग्न-प्रथा यह सब सिद्ध करने लायक मानी जायगी।

यहां अेक बात पहलेसे कह देना जरूरी है। जब कोअी वस्तु प्रथाका रूप ले लेती है तब अुसके केवल निर्जीव बन जानेकी और अुसकी आड़में अशुद्ध व्यवहारोंके चलनेकी भी संभावना हमारी अिस अपूर्ण दुनियामें हमेशा बनी रहती है। अुसका अिलाज यही है कि बार-बार अुस प्रथाको शुद्ध किया जाय या अशुद्ध व्यवहारोंका निषेध किया जाय। किसी प्रथाके गुण-दोषोंका विचार करनेमें यदि अितना कहा जा सके तो बस है कि शुद्ध व्यवहारके लिअे अुसीमें ज्यादासे ज्यादा गुंजािअश है। अितना खुलासा ध्यानमें रखकर अब अिस प्रश्नका विचार करें।

सबसे पहले स्त्री-पुरुषकी परस्पर आवश्यकताके बारेमें श्री नरसिंहभाअी दोनोंको अध-लकड़की जोड़ीकी अुपमा देते हैं। मुझे यह अुपमा ठीक नहीं लगती। यद्यपि अिससे व्यवहारमें बहुत ज्यादा फर्क नहीं पड़ता फिर भी हीन रूपकका संस्कार बुद्धिमें हीनग्रह (कॉम्प्लेक्स) पैदा करता है और वह अेक अरसे बाद कोअी न कोअी दाग पैदा किये बिना नहीं रहता। अिसलिअे अिसे सुधारनेकी जरूरत मालूम होती है।

मेरे विचारसे स्त्री-पुरुषकी जोड़ी अधे-लकड़ेकी या दो दालवाले मकान जैसी या अेक दूसरेके अर्धांग जैसी भी नहीं है और न होनी चाहिये। जहां अैसी स्थिति है वहां अुसे मैं ठीक नहीं मानता। दोनों व्यक्तियोंके रूपमें अेक दूसरेसे स्वतंत्र रहकर भी जीवनकी शोभा बढ़ा सकते हैं और अैसा करते अुन्हें आना चाहिये। जैसे अेक मन्दिरकी कमानके दो खंभे अलग-अलग स्वतंत्र रूपसे खड़े रहते हैं, अुसी तरह स्त्री-पुरुष दोनों स्वतंत्र रूपसे खड़े रह सकते हैं — अुन्हें खड़े रह सकना चाहिये।

लेकिन भैंसे या स्वतंत्र और समान शक्तिवाले खभोंका मन्दिरकी अेक ही भूमिका पर मेल हो जाय तो संभव है वे दोनों मिलकर अपने पर का बोझ अुठा सकते है वह दोनोंकी अलग-अलग शक्तिसे कभी गुना ज्यादा हो। लेकिन अगर दोनोंकी शक्तिमें बहुत फर्क हो या दोनों समान भूमिका पर नहीं बल्कि अलग-अलग भूमिका पर हों और दोनोंका समन्वय नहीं बल्कि व्यन्वय (विपरीत सम्बन्ध) हो जाय तो दोनोंकी शक्ति बढ़नेके बजाय अुसका ह्रास हो और दोनों मिलकर स्वतंत्र रूपसे अुठा सकने लायक बोझसे भी कम बोझ अुठावें और शायद अेक-दूसरेका नाश भी कर डालें। मन्दिरमें अेक तरफ पत्थरका और दूसरी तरफ पतले बांसका खंभा रखें या दोनों अथवा अेककी नींव साहुलसे बाहर जाय या दोनों छोटे-बड़े हों तो क्या नतीजा होगा?

वैज्ञानिक दृष्टिसे भी मेल-लगावका रूपक अुचित नहीं मालूम होता। पुरुष और स्त्री दोनोंकी जीवनशक्ति दो स्वतंत्र जीवन – काय हैं। अब खास मर्यादामें और परिस्थितिमें दोनों स्वतंत्र रूपसे वृद्धिक्षयशील — यानी जीवनधर्मवाले — हैं और दोनोंकी अपने-अपने शरीरका टिकाव रखनेमें स्वतंत्र अुपयोगिता है। लेकिन अिन दोनोंका अुचित ढंगसे समन्वय होनेसे अिन दोनोंमें से दोनोंसे ज्यादा विलक्षण और कभी गुनी शक्तिवाला जीव बनता है। लेकिन यदि ये दो शक्तियां अैसी हों कि पत्थर और बांसके खंभोंकी तरह अेक-दूसरेके साथ मिल ही न सकें तो अेक या दूसरेका अथवा दोनोंका नाश भी कर सकती है। यही सम्बन्ध अिन जीवनशक्तियोंको धारण करनेवाले स्त्री-पुरुषके बीच भी समझना चाहिये। दोनों अेक खास मर्यादामें स्वतंत्र है और स्वतंत्र रूपसे अुपयोगी भी हो सकते हैं। लेकिन अगर दोनोंका अुचित रूपमें समन्वय हो जाय तो जैसे मन्दिरके समान खंभे अपने सिर पर बड़ी अिमारतका भार अुठा सकते हैं अुसी तरह स्त्री-पुरुष मिलकर अपनी अलग-अलग शक्तिसे कभी गुनी ज्यादा शक्ति पैदा कर सकते हैं। यदि दोनोंका समन्वय न हो तो अेकका या दोनोंका ह्रास या नाश भी हो सकता है।

मिसलिये सुखद दंपती-सम्बन्ध कायम करनेके लिये तीन शर्तें जरूरी हैं। दोनोंमें स्वतंत्र रूपसे अपने-अपने जीवनको अुपयोगी बनानेकी लगभग अेकसी शक्ति होनी चाहिये। अिन दो शक्तियोंका समान भूमिका पर योग होना चाहिये। और यह योग समन्वयात्मक होना चाहिये व्यन्वयात्मक (विपरीत सम्बन्धवाला) नहीं। जिस हद तक अिन तीन शर्तोंमें कमी रहेगी अुतनी हद तक दंपती-सम्बन्ध दोषवाला होगा।

यह सच है कि दोनोंकी भूमिका कब समान और कब असमान कही जाय यह निश्चय करना बहुत सरल नहीं है। बाहरी रूप रंग देश जाति कुल स्वभाव शिक्षा अुम्र वगैरा हरअेकका मिसमें हिस्सा होता है। लेकिन अिन सबमें स्थूल दृष्टिसे बहुत फर्क होने पर भी समान भूमिका हो सकती है और ये दोनों देखनेमें अकसे हों तो भी हो सकता है दोनोंकी भूमिका बिलकुल अलग हो। पहले काममें लिये हुअे शब्दोंका फिरसे अुपयोग करके कहूं तो जीवनके मुख्य ध्येय और व्यवसायके लिअ तथा अेक दूसरेसे चिपट रहने और अनुकूल होनेके लिअे दोनोंकी धृति और प्रीति अेकसी हो तो दूसरे बहुतसे भेदोंके रहते हुअे भी दोनोंकी भूमिका समान हो सकती है। दोनोंकी अेक-दूसरेसे चिपटे रहने और अनुकूल बननेकी अिच्छा और शक्तिका विवाहको सफल बनानेमें महत्वका भाग होता है। ये दोनों हों तो दूसरे भदोंका महत्त्व कम हो जाता है। जिस विवाहके पीछे ये न हों यह छोटे छराको बड़े बनानेवाले बन्दरकी गरज पूरी करता है।

अिसका काव्यमय होते हुअे भी बहुत अूंचा अुदाहरण पांच पाण्डवों और द्रौपदीका है। वह अनेक-पति-लग्न होते हुअ भी स्त्री-पुरुषके अुचित समन्वयकी बातें सुन्दर ढंगसे पेश करता है। पांचों पाण्डवोंके स्वभावमें अेक-दूसरेसे अनोखा फर्क है और द्रौपदी भी अेक मानिनी स्त्री है। लेकिन छहोंमें धृति और प्रीति अेकसी होनेसे छहोंका संसार अनेक तरहके सुख-दुःखोंके बीच बड़े अच्छे ढंगसे चलता है।

विवाहको दुःखदायी बनानेवाली अेक बात है वह है घमण्ड और दूसरेके प्रति अनादर। जहां दोनोंमें से अेकको भी अपनी किसी सच्ची या कल्पित विशेषताका घमण्ड रहता हो या दूसरेके किसी दोषके लिअे मनमें तिरस्कार पैदा होता रहता हो वहां दोनों चाहे जितने गुणवान हों, अुनका मेल नहीं बैठ सकता। घमण्ड और अनादर धृति और प्रीतिके विरोधी हैं।

अेक दूसरे विचारमें भी थोड़ा सुधार करना जरूरी मालूम होता है। वंश बढ़ानेकी प्रेरणाके बिना विवाह नहीं करना चाहिये यह सूत्र ठीक है। लेकिन जिससे अुलटे कोअी ये सूत्र बनावे कि वंश बढ़ानेकी प्रेरणा हो तो विवाह करना ही चाहिये अथवा वंश बढ़ाना ही विवाहका अेकमात्र अुद्देश्य है तो ये दोनों गलत हैं। वंश बढ़ानेकी प्रेरणाके बिना स्त्री-पुरुषका संयोग नहीं होना चाहिये और विवाह द्वारा ही अैसा संयोग होना चाहिये। लेकिन अिसका कोअी अैसा अर्थ करे कि मनुष्यको हमेशा वंशवर्धनकी प्रेरणा वश होना ही चाहिये तो यह अुल्टा अर्थ है। अुसी तरह जो यह मानता है कि विवाहसे केवल वंश बढ़ानेका ही अुद्देश्य पूरा करना है वह भी भूल करता है। तब विवाहको वंशवर्धनका अनिवार्य साधन मानना ठीक है लेकिन विवाह द्वारा समाजका और पति-पत्नीका जो अनेक तरहका विकास सिद्ध किया जा सकता है अुसे गौण न समझना चाहिये। और विवाह-सम्बन्ध तय करते समय अिस विकासकी क्षमता और आवश्यकताका विचार भी साथ ही साथ कर लेना चाहिये। केवल वंशवर्धनकी दोनोंकी अिच्छा और योग्यता ही विवाह सम्बन्ध तय करनेका निर्णायक कारण नहीं मानी जानी चाहिये। दूसरे कारण अितने महत्त्वके लगने चाहियें और अुनका खयाल अितना साफ होना चाहिये कि अुनके सामने वंशवर्धनकी प्रेरणाका अनुभव जरूरी होते हुअे भी वह आखिरी निमित्त कारण कहा जा सके।

जिस दृष्टिसे विवाह करना चाहनेवाले स्त्री-पुरुषमें किस तरहकी योग्यता होनी चाहिये जिसका सार निकालें

दोनोंमें अपने जीवनको स्वतंत्र रूपसे सफल और सुज्ज्वल बनानेकी शक्ति होनी चाहिये

दोनोंके सामने जीवनमें आहार, विहार निद्रा मैथुन वगैरा व्यक्तिगत वासनाओं और वृत्तियोंसे परे कोओ स्वतन्त्र ध्येय या वासना होनी चाहिये

जिस ध्येय या वासनाके बारेमें दोनोंकी भूमिकाका समन्वय हो सकना चाहिये। समन्वय कभी तरहसे हो सकता है। अुदाहरणके लिखे लंगडे-अंधेकी जोडीकी तरह वे अेक-दूसरेकी कमी पूरी करें या साथ मिलकर बोझ खींचनेवाले दो बैलोंकी तरह आपसमें सहकार करें या चक्कीकी कील-मकडीकी तरह अेक-दूसरेके साथ अपना मेल बैठायें या दूध-पानीकी तरह दोनोंमें से अेक व्यक्ति दूसरेके साथ अकरूप हो जाय या दूध-शक्करकी तरह अेक व्यक्ति दूसरेमें घुलमिलकर दूसरेके गुणको बढ़ाये या दो अर्ध वृत्तोंकी तरह अेक-दूसरेके योगसे पूर्ण बननेवाले हों या जमीन और बरसातकी तरह दोनों मिलकर संसारको प्राणवान बनानेवाले (सहवीर्य कर्तारौ) हों या तानेबानेकी तरह दोनों अेक-दूसरेमें ओतप्रोत हो जायं या व्यंजनमें मिले हुअे स्वरकी तरह अेक व्यक्ति दूसरेको पूर्ण बनावे — वगैरा कभी तरहसे दोनोंकी भूमिकाका समन्वय हो सकता है। जिन सारे समन्वयोंमें खास जरूरी चीज है दोनोंकी धृति — अेक-दूसरेसे चिपटे रहनेकी और अनुकूल होनेकी जिच्छा और शक्ति — तथा आपसकी प्रीति। और अन्तमें सन्तान द्वारा दोनोंकी अपनी कामनाको दुनियामें रोप जानेकी जिच्छा और असुके लिखे शरीर और मनकी योग्यता।

यथावृद्धिकी प्रेरणासे ही लग्न करना चाहिये — जिसका अर्थ अैसा नहीं करना चाहिये कि जिन शादी करनेवालोंके मनमें सिर्फ जितना ही

विचार है कि वंश बढ़े तो भले बढ़े अुनमें वंशवृद्धिकी प्रेरणा पैदा हुअी है। लेकिन हमें सन्तानका सुख चाहिये या हमें अपना वंश चालू रखना है अैसी स्पष्ट अिच्छाको ही वंशवृद्धिकी प्रेरणा मानी जाय। लेकिन अिसका अर्थ अैसा भी नहीं समझना चाहिये कि यह अिच्छा है अिस लिअे विवाह करके सन्तान पैदा करना ही सबसे पहला कर्तव्य है और अिसे न विवाहित जीवनका आदि और न अन्त ही माना जाय। बल्कि विवाहित जीवनके कअी अुद्देश्योंमें से यह भी अेक हो सकता है और अुचित समय पर कर्तव्य या सत्कर्मकी भावनासे अिसे सिद्ध करनेकी कोशिश की जा सकती है। लेकिन अैसा भी हो सकता है कि कर्तव्यरूप न मालूम होनेसे या अिससे ज्यादा महत्त्वके कर्तव्योंमें दोनोंके लगे रहनेसे यह अिच्छा खतम ही हो जाय और अन्तमें यदि किसी कारणसे वंशवृद्धिका अुद्देश्य पूरा न हो तो विवाह असफल रहे करने जैसा या असमय न लगे अिस हद तक अिस अुद्देश्यका महत्त्व धीरे धीरे मनमें घटता जाय। क्योंकि जैसा म पहले कह चुका हूं संयमी स्त्री-पुरुष अपने भीतर पैदा होनेवाले कामविकारको आम तौर पर अपनी पूरी न हो सकी वासनाओंके फलस्वरूप पैदा होनेवाली अुत्तेजना समझें काम रत होनेसे अुन वासनाओंको अपने ही जीवनमें सिद्ध करनेकी अुनकी शक्तिको मन्द करनेवाला मानें और अिसलिअे अुस विकारके शरीरमें बलवान बननेसे पहले ही अुसे दबा डालनेका प्रयत्न करें। जब अैसा न कर सकें और साथ ही अपनी कामनाओंको सन्तान द्वारा दुनियामें रोप जानेकी अिच्छा भी बलवान मालूम हो तभी वे सन्तान पैदा करें। गीतामें कहा है

> शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात्।
> कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः ॥५-२३॥

—शरीरसे बाहर निकल अुसके पहले ही जो काम क्रोधके वेगको शरीरमें ही सहन करनेकी शक्ति रखता है वह पुरुष योगी है और वही सुखी होता है।

विवाहके पहले और बादमें भी संयमी स्त्री-पुरुषोंका यही आदर्श होना चाहिये।

अिसमें से लग्नके बारेमें दूसरे नियम भी निकलते हैं। वे ये हैं

अुचित रीतिसे पल-पुसकर बड़े हुओ स्त्री-पुरुषोंको तो २५ से ३० वर्ष तक सन्तान द्वारा अपनी वासनाओंको दुनियामें रख जानेकी या सम्भोगसुख भोगनेकी तीव्र अिच्छा होनी ही नहीं चाहिये। अुनके मनमें अपने ध्येयोंको अपने जीवनकालमें ही सिद्ध करनेकी आशा और शक्ति मालूम होनी चाहिये। यदि अिससे छोटी अुम्रमें अैसी अभिलाषा जोर करे, तो मानना चाहिये कि अुनके पालन-पोषणमें कोअी दोष रह गया है या वे अपवादरूप व्यक्ति हैं। अथवा वे अपने कामविकारके साथ अिस वृत्तिका मिश्रण देनेवाले होने चाहियें कि सन्तति हो तो भले हो। २५ ३० वर्ष बाद यह अभिलाषा मनमें पैदा हो तो भी ३५ से ४० वर्ष तक अिस अिच्छा पर संयम रखा जाय तो अच्छा है।

पच्चीस वर्षके पहले यदि कामविकारका वेग अुठे विजातीय व्यक्तिके सहवासके लिअे रुचि पैदा हो या जीवनका साथी पानेकी अुत्कट अिच्छा हो तो अुसे वंशवृद्धिकी प्रेरणा नहीं समझना चाहिये बल्कि दूसरी वासनाओंकी अुत्तेजना ही समझना चाहिये। २५ वर्ष तक अिस अुत्तेजनाको महत्त्व न देनेकी कोशिश करनी चाहिये यानी कामविकारके वेगको मनमें ही दबा देनेका अभ्यास करना चाहिये। विजातीय व्यक्तिका सहवास मर्यादामें निर्दोष भावसे और सामाजिक तथा कौटुम्बिक जीवनमें अनायास जितना मिल जाय अुतनेको ही अुचित मानना चाहिये। बीस वर्षकी अुमर तक तो अिस सहवासमें से जीवनका साथी खोजनेकी वृत्तिको मनमें स्थान ही नहीं देना चाहिये। बीस वर्ष बाद अगर जीवनका साथी प्राप्त करनेकी अुत्कट अिच्छा जागती जाय तो अुसके बादके पांचसे दस वर्ष तक संयमपूर्वक साथीकी खोज की जाय या पराजी जाय। अिस खोजमें श्री नरसिंहभाअीके कहे मुताबिक

शादी करते समय खूब सावधानी रखनी चाहिये। स्त्री पुरुषको प्रेमान्ध बनकर नहीं बल्कि बहुत सोच-विचारकर

शादी करना चाहिये। अपना अिष्ट ध्येय साधनेके लिअे अुसके अनुकूल जीवन-साथी खोज लेना चाहिये। प्रेमके नाम पर बिना सोचे-विचारे शादी करनेवालेको बादमें पछताना पड़ता है। तब अगर विरुद्ध स्वभाववाले स्त्री-पुरुष प्रेमके नाम पर मोहसे धोखा खाकर शादी करें, तो अुसका नतीजा बुरा ही होगा। अिसीलिअे शादी करते समय अिष्ट स्वजनोंकी सलाह भी लेनी चाहिये।

(लग्नप्रपंच नवनीत छठा पृ० ४६६)

साथीकी अिस खोजमें खुद ढूंढनेवालेने या सलाह देनेवाले स्वजनोंने दोनोंकी केवल सन्तान पैदा करनेके काममें शामिल होनेकी योग्यताका ही नहीं बल्कि दोनोंकी दूसरी बातोंमें भी अेक-दूसरेके साथी बननेकी योग्यताका विचार करना चाहिये। अिन दूसरी बातोंका महत्त्व पहलीसे जरा भी कम न समझना चाहिये। अिस मामलेमें दोनोंकी वृत्ति महत्त्वका काम करती है। अपने बारेमें बहुत ज्यादा घमण्ड रखनेवाले और साथियोंके लिअे अनादरकी भावना रखनेवाले स्त्री-पुरुष सुखी विवाहके लिअे अयोग्य समझे जायँ। अुसी तरह जिन स्त्री-पुरुषोंकी वृत्ति और प्रीति चेतनकी अपेक्षा जड़ (जैसे पैसा गहना खान-पानकी सुविधा धर्म या रूढ़िके जड़ नियमोंका पालन विलास वगैरा) से ज्यादा अनुराग रखनेवाली और अुसे ज्यादा आदर देनेवाली हो अुन्हें सुखी विवाहके लिअे अयोग्य समझना चाहिये।

लग्न करनेवालेके मनमें प्रयोग करनेका खयाल नहीं होना चाहिये। साथीके साथ निभ सकनेमें जब तक जरा भी शक हो तब तक लग्न किया ही नहीं जा सकता। दोनोंके अेक साथ न निभ सकनेकी परिस्थिति किसी अनसोचे ढंगसे पैदा हुअी होनी चाहिये। बहुत सोच-समझकर लग्न करनेके बाद भी दोनोंके बीच व्यत्यय (विपरीत सम्बन्ध) पैदा करनेवाले अैसे किसी स्वभावभेद या आदर्शभेदके मालूम होनेकी संभावना रह सकती है जो साथी खोजनेवाले या स्वजनोंकी कल्पनामें न आया हो। अैसी हालतमें अगर लग्नका हेतु सफल होनेकी सारी आशायें टूटती मालूम

हा तो अैसे स्त्री-पुरुष दोनों अपनी अिच्छासे या दोनों से अेककी अिच्छासे भी अिस सम्म सम्बन्धका तोड सकते हैं।" (नवनीत सातवां, पृ० ८७१) जिसीमें अुन दोनोंका और समाजका कल्याण है। अर्थात् यह भी विवाहित जीवनमें पैदा हुअी जवाबदारियोंका और तलाकसे पैदा होने वाले नतीजोंका खयाल करके ही किया जा सकता है।

फिर, शादी करनेवालों और सलाह देनेवालों दोनोंको विज्ञानकी अूपर बताअी सीख याद रखनी चाहिये। वह यह है कि स्त्री और पुरुष जो सन्तान पैदा करते हैं वह अुनके द्वारा अिस दुनियामें आती है अितना ही समझना चाहिये। लेकिन वह अुनकी नहीं है बल्कि भगवानकी यानी मनुष्य-जातिकी सम्पत्ति है। वह सन्तान कीमती रत्न जैसी निकले अिसकी सबको फिक्र होनी चाहिये।

सब सामाजिक सद्‌गुणोंका मूलस्थान कुटुम्ब है। अिसलिअे ब्याहके द्वारा कुटुम्बजीवन पैदा होना चाहिये। पति-पत्नी गृहस्थ (घरबार बसाकर रहनेवाले) होने चाहियें और घर व कुटुम्बमें गृहस्थ भाव — स्वभावकी सज्जनता — का पोषण होना चाहिये यह बात घर गृहस्थीमें कामोंके अेकसा रस लेनेसे और जो व्यक्ति जिस कामके ज्यादा अनुकूल हो अुसके लिअे दूसरे व्यक्ति द्वारा सुभीता जुटा देनेसे सिद्ध हो सकती है।

अिस परसे सम्म तय करते समय समझने लायक अेक दूसरी बात याद आती है। कुछ स्त्री-पुरुष संकोचशील (रिसेसिव) स्वभावके होते हैं और कुछ प्रभावशील (डॉमिनन्ट) स्वभावके होते हैं। जहां स्त्री और पुरुष दोनों अेकसे प्रभावशाली स्वभावके होते हैं वहां अगर दोनोंके बीच धृति और प्रीति भी अितनी ही बलवान हो तो अच्छे नतीजे आनेकी संभावना रहती है। अगर दोनोंमें धृति प्रीतिके गुण न हों तो दोनोंका मन बैठना कठिन है। लेकिन संभव है अैसे लोग व्यापारवर अपना रास्ता निकाल भी लें। दोनोंमें से अेक प्रभावशील और अेक संकोचशील हो और अगर प्रभावशील व्यक्तिमें धृति व प्रीति हो तो दोनों निभ सकते

और यह कहा जा सकता है कि आम तौर पर ८० फी सदी लोगोंके मेंमें असा ही होता है। *अगर प्रभावशील व्यक्तिमें धृति और प्रीतिकी* हो तो असे मामलेमें दूसरे व्यक्तिकी (फिर वह पति हो या पत्नी) तु आझी समझिये। अगर दोनों सकोचशील स्वभावके हों और धृति वाले हों तो अुनका ससार अच्छी तरह चलता मालूम होता है न शायद वह मूल्यहीन अच्छा (good-for nothing) भी हो। धृति और प्रीति न हो तो दोनों जिन्दगी भर लड़ते-झगड़ते , न सम्बन्ध जोड़कर रह सकेंगे न तोड़ सकेंगे।

स्वभावकी अिस प्रभावशीलता या सकोचशीलताको बुद्धिकी तेज या जड़ताके साथ नहीं मिला देना चाहिये। संकोचशील स्वभावके तेजस्वी बुद्धि और प्रभावशील स्वभावके साथ जड़ बुद्धि हो सकती अुसी तरह विद्वत्ता और बुद्धिको भी अेक न समझना चाहिये। प्रखर ताके साथ भी जड़ बुद्धि हो सकती है और निरक्षरताके साथ ही स्वी बुद्धि भी हो सकती है। मेल बैठानमें विद्वत्ता और बुद्धिकी स्विताकी अपेक्षा स्वभावकी प्रभावशीलता और सकोचशीलता तथा के साथ धृति और प्रीतिका ज्यादा महत्त्व है। अिसी कारणसे अूपर मुताबिक यह निश्चय करना बहुत सरल नहीं है कि स्त्री-पुरुषकी का समान और मेल खानेवाली है या नहीं। और अिसी कारणसे य है कि विचारपूर्वक किये हुअे विवाह भी आधे ही सफल हों। विश्वास कहते हैं अुस तरह कभी यह भी लग सकता है कि बिलकुल से जोड़े मिलानेमें जड़ विधाता या ब्रह्माको बहुत यश नहीं मिला।

अिस कारणसे भी अगर स्त्री-पुरुष विवाह-सम्बन्धमें बंधनेसे पहले के बजाय हजार बार भी सोचें-विचारें तो कोअी हरकत नहीं। जितने असे लम्बे समय तक पवित्र संयमपूर्ण जीवन बिताया जा सके बिताना हिये और अन्तमें साथी बिना रहना असंभव-सा हो जाय तथा बढ़ानेकी अिच्छा प्रबल हो जाय तो ही विवाह किया जाय। वाहके बिना तो असा सम्बन्ध किया ही नहीं जा सकता।

अिन सब विचारों परसे अितना तो साफ हो ही जाता है कि विवाहके पहले और विवाहके बाद संयमसे रहनेवाले स्त्री-पुरुष आम तौर पर अेक ही लग्नसे तृप्त रहेंगे। २५, ३० वर्षकी या अुससे भी ज्यादा बड़ी अुमरमें जिसने शादी की हो और जिसकी यह भावना न हो कि शादी भोग-विलास खाने-पीनेकी सुविधाओं या पैसे कमानेमें भागीदार पानेका ही साधन है वह अपने साथीके मरने पर दुःखी होगा पर दूसरे साथीकी रट नहीं लगायेगा। लेकिन यह भावना यदि अितनी अुत्कट नहीं हुअी तो संभव है कुछ समय बाद मृत साथीकी याद धुंधली हो जाय और अुसीके जैसा दूसरा साथी पानेकी अिच्छा पैदा हो जाय। कभी मृत साथीको भुला देनेवाले किसी व्यक्तिके मिल जानेके कारण भी यह अिच्छा पैदा हो सकती है। यदि सन्तानका हेतु पूरा न हुआ हो, तो भी अैसी अिच्छा पैदा हो सकती है। अैसी हालतमें किसी तरीकेसे पुनर्विवाह करनेका रास्ता खुला रखे बिना चारा नहीं। अैसा रास्ता आदर्श रास्ता नहीं यह कहकर स्त्री या पुरुष किसीके लिअे भी अुसे बन्द करनेसे कोअी लाभ न होगा।

सन्तान पैदा करनेके लिअे ही विवाह और संयोग हो तो ही बच्चोंकी संख्याकी मर्यादा रह सकती है। कर्तव्यकी भावनासे ही संयोगकी प्रेरणा पानेवालोंको अेक सन्तानसे सन्तोष हो सकता है। सिर्फ सन्तान-सुखकी अिच्छा रखनेवालोंको शायद दो-तीन बच्चोंकी चाह रहे। अितने बच्चोंके बाद भी कोअी यह कहे कि अुन्हें ज्यादा बच्चोंकी अिच्छा है और जिसके पीछे कोअी खास कारण न हो तो या तो यह अुनकी जड़ता हो सकती है या कम-से-कम यह थोड़ा अपवादरूप होना चाहिये। किसी खास कारणसे समाज या कुटुम्बके लिअे ज्यादा बच्चोंकी जरूरत हो सकती है। संभव है अैसी स्थितिमें सन्तान बढ़ानेकी अिच्छा कर्तव्यरूप मालूम हो।

जिस तरह अेक बार विवाह 'हुआ सो हुआ' वाली वृत्ति विवाहित जीवनमें भी जहां तक बने वहां तक पूरा रखनी

लेकिन सन्तानकी तीव्र अिच्छा या अुसके कर्तव्यरूप लगने पर सयोग और दो-तीन बच्चोंसे तृप्ति — यही आदर्श स्थिति मानी जायगी। लेकिन अिसमें पुनर्विवाहकी और खास स्थितिमें ज्यादा बच्चोंकी अिच्छा पर रोक नहीं लगायी जा सकती। अुसी तरह खास परिस्थितिमें तलाकका रास्ता भी बन्द नहीं किया जा सकता।

११
सन्तति नियमनका सवाल

अिस सारी चर्चामें से अेक ही चीज निश्चित रूपसे समझमें आती है। केवल निरीश्वर (अीश्वरको न माननेवाले) निश्चैतन्य (जड़) प्रकृतिवादीकी दृष्टिसे विचारें या शुद्ध चैतन्यवादीकी दृष्टिसे विचारें, या सिर्फ सामाजिक और पारिवारिक जीवनकी पूर्णताकी दृष्टिसे विचारें अितना तो निश्चित है कि स्त्री और पुरुषकी जीवन-शक्तिका अुपयोग अुचित रीतिसे दो ही बातोंके लिअे हो सकता है या तो अपने शरीर-यन्त्रको अुचित दशामें रखनेके लिअे या दूसरे शरीरका निर्माण करनेके लिअ।

बिल्कुल सीधी दृष्टिसे देखें तो अैसा लगे बिना नहीं रहेगा कि अूपरकी बातमें किसीको कोअी शक ही कैसे हो सकता है। हा सकता है कोअी किसान अपने अधिक बीज अिकट्ठे करके रख दे अपने कुटुम्बके पोषणमें काम भर डाले अिकट्ठे न कर सके तो सड़ने दे अथवा डाले या खेतके सिवा कोअी दूसरी जगह अिस तरह फेंक दे कि वे अुग न सकें। लेकिन पहले, बीजके अंकुरित होनेवाले भागको ध्यानसे तोड़कर या खेतको साबुनके पानी या दूसरे किसी रासायनिक पदार्थसे बिगाड़कर या अुस पर गरम-गरम राख डालकर, मानो बुवाअी करना चाहता हो अिस तरह बीज बोने नहीं जायगा। अिसी तरह अपनी जीवन-शक्तिको सभालकर न रख सकनेवाले स्त्री-पुरुष अिस शक्तिका नष्ट होने दें तो लाचारी होते हुअे भी यह चीज समझी जा सकती है। लेकिन अुस

बिरादतम निरंकुश बनाकर या गर्भाशयको निःसत्त्व करके या अुसका नाश करके जिस तरह बरतें मानो जीव निर्माण करना चाहते हों तो यह समझमें न आनेवाली मूर्खता या असह्य दुष्टता लगनी चाहिये।

फिर भी बहुतसे सयाने और विचारशील मनुष्य, कुशल डॉक्टर और वैद्य तथा खुद स्त्रियाँ भी मानो अिस युगकी यह ताजीसे ताजी खोज हो और मानवजातिके कल्याणकी अचूक जड़ी-बूटी हाथ लग गअी हो अिस विश्वाससे ब्रह्मचर्यको छोड़कर दूसरे रास्तेसे संतति-निरोधके विचारों और अुपायोंका प्रचार करनेमें आज लगे हुअे हैं।

सच पूछा जाय तो मुझे लगता है कि ये विचार और अुपाय कोअी नये नहीं हैं। मेरी धारणा यह है कि बहुत प्राचीन समयसे अैसे अुपायोंकी खोज होती रही है। और कभी न सुधरनेवाली व्यभिचारी स्त्रियाँ परम्परासे अिसका कुछ न कुछ ज्ञान रखती आअी हैं। अैसा लगता है कि अिन अुपायोंकी खोजकी जड़में व्यभिचारको निर्विघ्न बनानेका ही हेतु रहा है। आधुनिक डॉक्टरी विज्ञानने अिन अुपायोंको ज्यादा सुरक्षित बनाया होगा अितना ही कहा जा सकता है। लेकिन अब यह सलाह दी जाती है कि जो साधन मुख्य व्यभिचारी स्त्रियोंने काममें लिये अुन्हें अब साध्वी स्त्रियोंको भी काममें लेना चाहिये। यह अितना ही बताता है कि स्त्री और पुरुष दोनों बहुत ज्यादा मात्रामें कामलोलुप हैं। व्यभिचारी और अव्यभिचारीमें अितना ही फर्क है कि अव्यभिचारी स्त्री-पुरुषकी कामलोलुपता दोके बीच ही चलती है। जो स्त्री-पुरुष व्यभिचारी नहीं हैं वे अव्यभिचारी हैं लेकिन अैसा नहीं कहा जा सकता कि वे साध्वी-साधु हैं। यह तो तभी कहा जायगा जब वे आपसमें संयोगके समय अेक पवित्र धर्म करनेका सात्त्विक भाव अनुभव करते हों और अुसकी सफलताके लिअे अुत्सुक हों, — जब अुनके भीतर मानो अेक अैसी प्रार्थना निकलती हो कि अिस संयोगके फलस्वरूप अीश्वरके अुद्देश्यको सफल बनानेवाली और हमारी अच्छी वृत्तियोंको मूर्तिमन्त करनेवाली सन्तान पैदा हो।

असी पवित्र भावना न हो तो अव्यभिचारी और व्यभिचारी स्त्री-पुरुषके बीचका भेद सिर्फ अेक पति-पत्नी और अनेक पति-पत्नी प्रथाके भेद जसा माना जायगा। अिसलिअे अव्यभिचारी स्त्री-पुरुषोंको व्यभिचारी स्त्री-पुरुषोंके अुपाय और साधन स्वीकारने जैसे लगें तो अिसमें कोअी ताज्जुब नहीं। क्योंकि जहां दोनों अेक ही — काम विह्वलता — के रोगके शिकार हों वहां दोनों अेक ही तरहके अुपाय काममें लेंगे। अिसलिअे मूल आवश्यकता कामविह्वलताको रोकनेका अुपाय खोजनेकी है।

यह समस्या स्त्रीजातिके बनिस्बत पुरुषजातिके लिअे ज्यादा मुश्किल होती है। क्योंकि जसा, मैंने पहले कहा है गर्भधारण करनेकी शक्ति न होनेसे नरजातिमें जीवनकोषोंकी अुत्पत्ति बन्द होनेके मौके बीच-बीचमें नहीं आते।

तो अिस विषयमें थोड़ा विचार करें।

१२
ब्रह्मचर्य विचार

किसीको असा लग सकता है कि यह सारी सात्त्विक चर्चा ही है। आदर्शके नाते यह सब बड़ा सुन्दर है। सभी लोग असा आचरण कर सकें तो सोनेमें सुगन्ध हो जाय। लेकिन हम जिस तरहके संस्कारोंमें पले हैं अुनको ध्यानमें रखते हुअे अिस चर्चामें से हमें अपने वर्तमान जीवनके लिअे कोअी व्यावहारिक हल नहीं मिलता। या यह कहेंगे कि हम चाहते हैं कि हमें कामविह्वल नहीं होना चाहिये बल्कि अच्छी सन्तानके लिअे ही और बुरे पैदा करना कर्तव्यरूप लगे तथा असा करनेकी सब बातें मौजूद हों तभी संयोगकी अिच्छा करनी चाहिये। लेकिन अिस काम विह्वलताको रोकनेका अुपाय हम नहीं जानते। यदि आप अपने जीवनके अनुभवों परसे यह अुपाय बता सकें तो बताअिये। केवल आदर्श प्रस्तुत

करके मत बैठ जाअिये। क्योंकि आदर्शका ज्ञान अुल्टी परेशानी पैदा कर देता है। आदर्श समझमें आ जाता है जिससे यह नहीं कहा जा सकता कि वह गलत है। लेकिन आदर्श पर जीवनमें अमल करना लगभग असंभव मालूम होता है। अिसलिअे न तो हम आदर्श पालनका सन्तोष पा सकते हैं और न जिसे आप हमारा पामर जीवन कहेंगे अुसीका स्थूल सन्तोष पा सकते हैं। और संयमकी सारी कोशिशें *आत्मपीड़न — सप्रेशन — का ही रूप ले लेती हैं।* अगर आप सचमुच हम पर कोअी अुपकार करना चाहते हों तो हमें कामविकारको रोकनेके कोअी व्यावहारिक नियम बताअिये।

मुझे कबूल करना चाहिये कि अिस शिकायतमें सचाअी है।

अेक तरफ जो सहजानन्द स्वामी या रामकृष्ण परमहंस जैसे सौभाग्यशाली यह कह सके कि जन्मसे लेकर जीवनमें किसी भी दिन अुनके लिअे जाग्रत अवस्था स्वप्न या सुषुप्तिमें स्त्रीसम्बन्धी (या स्त्रीके लिअे पुरुष सम्बन्धी) विकार पैदा करनेवाला प्रसंग आया ही नहीं अुनसे हमें अिस विषयमें बहुत मार्गदर्शन नहीं मिलता। क्योंकि अुनकी यह स्थिति ज्यादातर जन्मसिद्ध ही होती है। अुन्होंने अैसा शायद ही कभी कहा है कि यह स्थिति अुन्हें किसी खास साधना या साधनसे प्राप्त हुअी है। जिनकी अैसी स्थिति नहीं है वे अुसे कैसे पायें अिस विषयमें अुनमें से कोअी अीश्वर-कृपाके सिवा दूसरा कोअी अचूक साधन बताता नहीं है। सादे जीवन अच्छी संगति वगैरा पर जरूर जोर दिया जाता है। लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि ये साधन अचूक हैं। अितना ही है कि कामविकारको शांत करनेवाली दवाओंकी तरह ये साधन थोड़ा-बहुत आराम पहुंचाते हैं। अुल्टे वैराग्य साहित्यमें तो अैसा भी गाया गया है

भूमि शयन तन बसन करी फल भखत आराम
निशदिन रहत अरण्यमें तेहु सतावत काम।

काम नहीं यह काल है काम अपबल वीर (?),
जब भुगमत है यहमें ज्ञानिन करत अधीर।

और यह बिल्कुल सच बात है। जो खूब खा-पीकर शरीरको तगड़ा बनाते हैं और विलासी जीवन बिताते हैं वे ही कामविह्वल होते हैं असी बात नहीं। हमेशा फटेहाल अधभूखे रहनेवाले स्त्री-पुरुष भी गन्दा जीवन बिताते देखे जाते हैं।

सब सहजानन्द स्वामी या रामकृष्ण परमहंस जैसे जन्मसिद्ध निष्कामी पुरुषोंकी तरफसे कामवश होनेवाले त्यागी न बन हुये संसारी लोगोंको अैसा कोअी क्रमिक अुपाय नहीं मिलता जिस व खुद ममलमें लाकर कामको जीत सकें।

दूसरी तरफ जिन्हें कामविकारका अनुभव हो चुका है अुनमें से भी आज तक कोअी असे मार्गदर्शक देखनमें नहीं आये जो यह कहें कि अिस तरीकेसे यह विकार पैदा नहीं होता या पैदा होते ही शांत हो जाता है। अुल्टे संयमका आदर्श बतात हुअ भी अुन्हें अिसी तरह बोलने या लिखनेकी आदत होती है पहले तो वे अपने अनुभव परसे यह बताते हैं कि कामविकार बड़ा बलवान ह और आज भी अुनके जीवन पर अुसका जोर चल सकता है बादमें वे अिस विकारके अनेक तरहके दोष बताकर अुसके वश न होनेका अुपदेश देते हैं। कामविकारको वशमें करनेके अुपायके रूपमें अुनके पास भी सादा जीवन सत्संग वगैराके सिवा दूसरे कोअी अचूक अिलाज नहीं होते। लेकिन अिन सबके होते हुअे भी काम किस तरह सता सकता ह अुसका वर्णन अूपर आ गया है।

अिस तरह विवाहके पवित्र आदर्शोंमें विश्वास रखनेवाले कुछ संयमी वृत्तिवाले लोग भी अिस बारेमें परेशान होत हैं। अुनकी परेशानियोंका समभावसे विचार करना चाहिये। संतति-निरोधके हिमायतियोंमें अच्छे-अच्छे लोग भी हैं अुसका कारण अिस परेशानीके लिअ अनका समभाव ही है।

लेकिन परेशानीके लिये समभाव होते हुये भी अगर सुझाये जानेवाले अुपाय जड़से ही गलत आधार पर सोचे गये हों तो न सिर्फ अुनसे अिष्ट हेतु सिद्ध नहीं होगा, बल्कि वे अनेक अनर्थोंको भी जन्म देंगे। सन्तति-निरोधके कृत्रिम या बनावटी अुपायोंका दोष यह है कि अनका मूल आधार ही गलत है। अुनमें कामविकारको कम करनेका खयाल ही नहीं है, बल्कि अुस विकारके अनिवार्य नतीजोंको ही हटानेकी कोशिश है। अिसलिये वे कामविकारको बढ़ानेका नतीजा ही पैदा कर सकते हैं। अुनके साथ या बादमें पौष्टिक दवाअियोंकी जरूरत पैदा होगी ही, और जो लोग ये दवाअें न लें या न ले सकें, वे लोग — अुनकी मानसिक दुर्बलताकी बात जानें दें तो भी — अल्पायुष और रोगके ही शिकार होंगे। हो सकता है कि कुछ सुखहाल लोग तरह-तरहकी दवाअियोंकी मददसे अिस रास्ते पर चलकर भी दीर्घायुषी और बलवान बने दिखाअी दें। लेकिन आम जनताका तो नाश ही होगा।

तब अिस परेशानीका समभावसे विचार करके भी तुरन्त फल देते मालूम होनेवाले लेकिन अुलटे रास्ते बतानेमें कोअी लाभ नहीं। जो भी अुपाय हों, वे विकारको शांत करनेवाले होने चाहिये, सिर्फ अुसके नतीजोंको ही रोकनेवाले नहीं होने चाहियें। ये अुपाय ज्यादासे ज्यादा वैसे ही कहे जा सकते हैं, जैसे किसी गोदाममें आग पकड़नेवाले पदार्थ पड़े हों और अुनके मालिकको आग न लगनेके अुपाय पूछने पर कोअी अुसे बीमा करानेकी सलाह दे। बीमा करानेसे आग लगने पर शायद मालिकको आर्थिक नुकसान न हो, पर वह कोअी बचावकी रक्षाका अुपाय नहीं कहा जा सकता। और आगकी दुर्घटनासे होनेवाले आर्थिक और दूसरे संकटों, चिन्ताओं, अव्यवस्था वगैराका बीमामें क्या बदला मिल सकता है?

लेकिन अिस बारेमें मुझे ऐसा लगा है कि शरीर, मन तथा अिन्द्रियों और अुनके भोगोंके प्रति देखनेके हमारे तरीकेमें भी अेक

भारी दोष है। और भोगपरायण तथा संयमपरायण दोनों तरहके लोगोंके विचारका मूल स्थान अिस बारेमें अेकसा ही है। दोनोंकी बुद्धिमें यह चीज समान रूपसे बैठी हुअी मालूम होती है कि कुदरतके नियमके मुताबिक सारे प्राणियोंके मन और अिन्द्रियोंकी स्वाभाविक प्रवृत्ति अपने सुखमें लगी रहनेवाली और भोगकी अभिलाषा रखनेवाली ही होती है और प्रकृति पर बलात्कार करके ही अुन्हें अिस प्रवृत्तिसे रोका जा सकता है। लेकिन भोगी और संयमीमें अितना ही भेद है कि भोगी प्रकृति पर अैसा बलात्कार करनेमें विश्वास नहीं रखता बल्कि अुसे तृप्त करनेमें विश्वास रखता है जब कि संयमी व्यक्ति अिस बलात्कारको जरूरी अुचित और अुन्नतिकारक समझता है। अिसी कारणसे मन और अिन्द्रियोंको वशमें करनेके अभ्यासके लिअे दमन निग्रह वश' विजय वगैरा बलात्कार—शत्रुता तथा युद्धसूचक शब्द काममें लाये गये हैं और शरीर, मन तथा अिन्द्रियोंको आत्माकी अुन्नतिके रास्तेमें खड़े शत्रु चोर डाकू वगैरा माननेके संस्कारका दुनियाके सारे धर्मोंमें अेकसा पोषण मिला है। मुकुन्दमाला के कवि प्रार्थना करते हैं

> अन्धस्य मे हृतविवेकमहाधनस्य
> चौरैः प्रभो बलिभिरिन्द्रियनामधेयैः ।
> मोहान्धकूपकुहरे विनिपातितस्य
> देवेश देहि कृपणस्य करावलम्बम् ॥*

अिसी तरह, निष्कुलानन्द स्वामी कहते हैं कि योगी तो अिन्द्रिय मननी अूपरे रह शत्रु सदाये जी —योगी हमेशा अिन्द्रियों और मनका शत्रु रहता है। और ब्रह्मानन्द स्वामी कहते हैं

> "मन घोड़ा मस्तान महाबल वश करि ताहि फिराअूँ री,
> भूले हि रंच करे मस्ताअी, तो चाबुक चोट लगाअूँ री।

---

* हे प्रभु, अिन्द्रिय नामके बलवान चोरोंने मुझ अंधेका विवेकरूपी महाधन लूटकर मुझे मोहके अंधकूपमें फेंक दिया है। हे देवेश मुझ दीनको तुम्हारे हाथका सहारा दो।

काया कोट कर्‌ं मैं कबजे भामीराज चढ़ाजूं री
काम क्रोध मारूं कफरामा हरिका हुकम बजाजूं री।
पांचू चार पकड़ बश करके, साहब सनमुख लाजूं री
ब्रह्मानंद स्यामके पासे मोक्ष अरतरति पाजूं री।"

सभी धर्मोंके साहित्यमें से असे-अैसे भुद्‌गार निकाले जा सकते हैं। भुनमें रहे प्रयत्नका निषेध करनेके लिअ ये भुद्धरण मैं यहां नहीं दे रहा हूं। बल्कि शरीर, मन और अिन्द्रियोंको जीवके शत्रु माननेका जो संस्कार पोषित हुआ है, भुसके प्रमाणके तौर पर ये वचन यहां दिये गये हैं। अिसका मतलब यह हुआ कि मन और अिन्द्रियोंका स्वभाव मोक्ष यानी आत्माके भुत्कर्षका विरोधी है। हमें अवश्य भुन्हें अैसा करनेसे रोकना है। अगर यही सच्ची स्थिति हो तो मुझे लगता है कि मन और अिन्द्रियोंको वशमें रखनेकी सारी कोशिशें आखिरमें बेकार ही साबित होंगी — शायद वे नुकसान भी पहुंचावें। लेकिन मेरे विचारसे यह दृष्टि ही गलत है। यह अनुभवकी कसौटी पर खरी नहीं भुतरती — भुलटी हमारी कोशिशोंको कमजोर बनाकर गलत रास्ते ले जाती है। देहदण्डके, *अिन्द्रियनिग्रहके और मनको मारनेके अनेक कृत्रिम प्रयत्नोंका नाश करनेवाले और आत्माको पीड़ा पहुंचानेवाले व्रतों और साधनाओंका बीज* शरीर, मन और अिन्द्रियोंको शत्रुभावसे देखनेकी अिस दृष्टिमें रहा है। बेशक प्रकृतिके नियमके मुताबिक आंख देखेगी ही, कान सुनेंगे ही, जीभ स्वाद लेगी ही, मन विचार-कल्पना वगैरा करेगा और भावनाओंका अनुभव करेगा ही। लेकिन प्रकृतिका नियम अैसा नहीं है कि आंख, कान, जीभ, मन वगैरा कब, कैसे और किन विषयोंको देखने सुनने वगैराका काम करें — अिसकी विवेकयुक्त शिक्षा देकर भुन्हें संस्कारी न बनाया जा सके और वे प्राणीके शत्रु जैसे ही बरतें।

मैं तो चाहता हूं कि अिन्द्रियोंका संयम 'निग्रह' वगैरा बलात्कार सूचक शब्दोंके बदले हम अिन्द्रियोंका 'संयोजन' कहें। यानी हमारा ध्येय मन और अिन्द्रियोंकी भुचित योजनाका ज्ञान प्राप्त करना

है। हमें अुनके प्रति अिस दृष्टिसे नहीं देखना चाहिये कि वे हमारे शत्रु हैं और अुन्हें हराकर हमें दंड देना — मारना है। बल्कि हमें अिस दृष्टिसे अुनके बारेमें सोचना है कि वे हमारे कल्याणके साधन हैं और अुन्हें नीरोग व्यवस्थित स्वाधीन और संस्कारी बनाकर अपनेमें रही अनेक तरहकी शक्तियोंको प्रगट करनेमें हमें अुनका अुपयोग करना है। अगर कोअी ड्राअिवर अपने अिंजिनको अपना दुश्मन समझे और अुसके अलग अलग द्वारों (वाल्व) को अुसे सम्भालनमें विघ्नरूप समझे तो अुन द्वारोंको कभी खोलने और कभी बन्द करनेका काम कभी भाप छोड़ने और कभी रोकनेका काम तथा अिंजिनके अलग-अलग चक्कों पर निगाह रखनेका काम अुसके लिअे अेक भारी झंझट हो जाय और अत्यन्त नीरस व प्रसन्नताका नाश करनेवाला साबित हो। अिसके खिलाफ अगर वह अपने अिंजिनको अेक बड़ा खिलौना माने अुसके अलग-अलग द्वारोंको अपनी मर्जीके साधन समझे और अिसलिअे सिर्फ खिलवाड़के खातिर ही मनमें आवे तब अुन्हें खोले या बन्द करे और भापका छोड़े या रोके तो अुसका यह काम भयंकर दुर्घटनाका ही कार्यक्रम बन जायगा। लेकिन अगर वह अैसा समझे कि अुसका अिंजिन अुसके काबूमें आअी हुअी अेक बलवान शक्ति है और अुसके अलग-अलग वाल्व और चक्के अुसका अच्छसे अच्छा अुपयोग हो सकनके लिअे अिरादतन रखे हुअे साधन हैं तो अुन द्वारोंके नियमन और संभालका काम अुसकी व्यवस्थाकी हरअेक क्रिया ध्यानसे करनेकी होते हुअे भी अुसे दुःखदाअी और प्रसन्नताको मारनेवाली झंझट मालूम नहीं होगी बल्कि अपनी विद्याको आजमानेका और अुस मनका जरूरतके मुताबिक अुपयोग करनेका मौका देनेवाली ही लगेगी। और अुसके मनमें अैसा विचार कभी नहीं आयेगा कि मैं अिस अिंजिनके साथ खिलवाड़ करूं। अिसी तरह अगर हमारे मनमें यह बात बैठ गअी हो कि पूर्वजन्ममें अिकट्ठे हुअे पापकर्मोंके फलस्वरूप यह शरीर है और मन तथा अिन्द्रियां पापों द्वारा अपना व्यापार जमानेके लिअे खोली हुअी दुकानें हैं तो अुनके नियमनकी हरअेक

काया कोट करूं में कब्जे, नामनिशान चढ़ाऊं री
काम क्रोध मारू कफराना हरिका हुकम बजाऊं री।
पांचू चोर पकड़ बस करके साहब सनमुख लाऊं री।
ब्रह्मानंद श्यामके पासे आज परमगति पाऊं री।"

सभी धर्मोंके साहित्यमें से अैसे-अैसे अुद्‌गार निकाले जा सकते हैं। अुनमें रहे प्रयत्नका निषेध करनेके लिअे मैं अुद्धरण मैं यहां नहीं दे रहा हूं। बल्कि शरीर, मन और अिन्द्रियोंको जीवके शत्रु माननेका जो संस्कार पोषित हुआ है अुसके प्रमाणके तौर पर ये वचन यहां दिये गये हैं। जिसका मतलब यह हुआ कि मन और अिन्द्रियोंका स्वभाव मोक्ष यानी आत्माके अुत्कर्षका विरोधी है। हमें जबरन अुन्हें अैसा करनेसे रोकना है। अगर यही सच्ची स्थिति हो तो मुझे लगता है कि मन और अिन्द्रियोंको वशमें रखनेकी सारी कोशिशें आखिरमें बेकार ही साबित होंगी शायद वे नुकसान भी पहुंचावें। लेकिन मेरे विचारसे यह दृष्टि ही गलत है। यह अनुभवकी कसौटी पर खरी नहीं अुतरती अुलटी हमारी कोशिशोंको कमजोर बनाकर गलत रास्ते ले जाती है। देहदंडके अिन्द्रियनिग्रहके और मनको मारनेके अनेक कृत्रिम प्रसंगोंका नाश करनेवाले और आत्माको पीड़ा पहुंचानेवाले व्रतों और साधनाओंका बीज शरीर, मन और अिन्द्रियोंको शत्रुभावसे देखनेकी अिस दृष्टिमें रहा है। बेशक प्रकृतिके नियमके मुताबिक आंख देखेगी ही कान सुनेंगे ही जीभ स्वाद लेगी ही, मन विचार-कल्पना वगैरा करेगा और भावनाओंका अनुभव करेगा ही। लेकिन प्रकृतिका नियम अैसा नहीं है कि आंख कान जीभ मन वगैरा कब कैसे और किन विषयोंको देखने सुनने वगैराका काम करें — अिसकी विवेकयुक्त शिक्षा देकर अुन्हें संस्कारी न बनाया जा सके और वे प्राणीके शत्रु जैसे ही बरतें।

मैं तो चाहता हूं कि अिन्द्रियोंका संयम, 'निग्रह' वगैरा बलात्कार सूचक शब्दोंके बदले हम अिन्द्रियोंका 'संयोजन' कहें। यानी हमारा ध्येय मन और अिन्द्रियोंकी अुचित योजनाका ज्ञान प्राप्त करना

है। हमें अुनके प्रति अिस दृष्टिसे नहीं देखना चाहिये कि व हमारे शत्रु हैं और अुन्हें हराकर हमें दंड देना — मारना है। बल्कि हमें अिस दृष्टिसे अुनके बारेमें सोचना है कि वे हमारे कल्याणके साधन हैं और अुन्हें नीरोग व्यवस्थित स्वाधीन और सहकारी बनाकर अपनेमें रही अनेक तरहकी शक्तियोंका प्रगट करनेमें हमें अुनका अुपयोग करना है। अगर कोअी कारीगर अपने अिंजिनको अपना दुश्मन समझ और अुसके अलग अलग द्वारों (वाल्व) को अुसे सम्भालनेमें विघ्नरूप समझे तो अुन द्वारोंको कभी खोलने और कभी बन्द करनेका काम कभी भाप छोड़ने और कभी रोकनेका काम तथा अिंजिनके अलग-अलग चक्रों पर निगाह रखनेका काम अुसके लिअे अेक भारी झंझट हो जाय और अत्यन्त नीरस व प्रसन्नताका नाश करनेवाला साबित हो। अिसके खिलाफ अगर वह अपने अिंजिनको अेक बड़ा खिलौना माने अुसके अलग-अलग द्वारोंको अपनी गम्मतके साधन समझे और अिसलिअे सिर्फ खिलवाड़के खातिर ही मनमें आवे तब अुन्हें खोले या बन्द करे और भापको छोड़ या रोके तो अुसका यह काम भयंकर दुर्घटनाका ही कार्यक्रम बन जायगा। लेकिन अगर वह अैसा समझे कि अुसका अिंजिन अुसके काबूमें आअी हुअी अेक बलवान शक्ति है और अुसके अलग-अलग वाल्व और चक्र अुसका अच्छेसे अच्छा अुपयोग हो सकनेके लिअे अिरादतन रखे हुअे साधन हैं तो अुन द्वारोंके नियमन और संभालका काम अुसकी व्यवस्थाकी हरअेक क्रिया ध्यानसे करनकी हालते हुअे भी अुसे दुःखदाअी और प्रसन्नताको मारनेवाली झंझट मालूम नहीं होगी बल्कि अपनी विद्याको आजमानेका और अुस यंत्रका जरूरतके मुताबिक अुपयोग करनेका मौका देनेवाली ही लगगी। और अुसके मनमें अैसा विचार कभी नहीं आयगा कि मैं अिस अिंजिनसे साथ खिलवाड़ करूं। अिसी तरह अगर हमारे मनमें यह बात बैठ गअी हो कि पूर्वजन्मके अिकट्ठे हुअे पापकर्मोंके फलस्वरूप यह शरीर है और मन तथा अिन्द्रियां पापों द्वारा अपना व्यापार जमानेके लिअे खोली हुअी दुकानें हैं तो अुनके नियमनकी हरअेक

किया हमें अप्रसन्न बनानेवाला और कठोर कार्यक्रम लगेगा और वैसे विचारसे बनाये हुओ सारे साधन और अभ्यास दम-दमन-पीड़नके ही तरीके मालूम होंगे। हमारे व्रत तप और संयमका विचार ज्यादातर अिसी दृष्टिकोणसे किया गया है।

मुझे लगता है कि मन और अिन्द्रियोंके प्रति अिस दृष्टिकोणसे देखना हमें छोड़ देना चाहिये। शरीर हमारे मशीनमें लिखी बेगार नहीं है न वह हमें मिला हुआ अेक खिलौना ही है बल्कि वह हमें मिला हुआ अेक अैसा पवित्र यंत्र है जिसके भीतर अनेक तरहकी शक्तियां भरी हैं। और, मन तथा अिन्द्रियोंकी शिक्षा शरीरको पीड़ा पहुंचानेके लिअे नहीं बल्कि असकी व्यवस्थाके लिअे — अस सबकी शक्तियोंका अच्छेसे अच्छा और ज्यादासे ज्यादा अपयोग करनेके लिअे — अिरादतन रखे हुअे द्वार हैं। अिस दृष्टिकोणसे विचार करके शरीर, मन और अिन्द्रियोंको स्वाधीन बनानेका विवेकपूर्ण मार्ग खोजनेकी जरूरत है। जिस प्रकार अकुशल आदमीका खुदको सौंपे हुअे अिंजिनके द्वार खोलना या बन्द करना भी भारी आफतका कारण हो सकता है अुसी प्रकार बिना विवेकके किया हुआ भोग और दमन दोनों मुसीबत और अप्रसन्नताके कारण बनते हैं। क्या ब्रह्मचर्य और क्या दूसरे व्रत सबकी तरफ हमें कठोर तपश्चर्या — जबरन की जानेवाली बगार — की दृष्टिसे नहीं बल्कि अपनेमें भरी हुअी अनेक तरहकी शक्तियोंका संगठित व्यवस्थित प्रसन्नताका बढ़ानेवाले और बलवान रूपोंमें प्रगट करनेवाली विद्याओंके रूपमें देखना चाहिये।

अेक तरफ तो मनुष्य संसारमें प्रजातंतुको कायम रखनेके लिअे निर्माण हुअी प्रेरणाका बार-बार अनुभव करे और दूसरी तरफ अेक अैसा संस्कार मनमें जमा ले कि यह प्रेरणा पापरूप है और शर्मकी बात है, तब तो ब्रह्मचर्य मनको दुःखी बनानेवाला, प्रसन्नताका और कभी कभी आरोग्यका नाश करनेवाला—सप्रयोजनका—प्रयत्न बन जाता है। लेकिन यदि मनुष्य अिस प्रेरणाके प्रति पापकी दृष्टिसे देखनेके बजाय

मुसे संसारचक्रको चालू रखनेके लिअे चैतन्यके संकल्पसे बनी हुअी अेक जरूरी और पवित्र योजना समझे और असा संस्कार दृढ़ करनेकी कोशिश करे कि सर्वोदयकी दृष्टिसे सोचे हुअे धर्ममार्गसे वंशकी वृद्धिके लिअे अिस पवित्र शक्तिका अुपयोग करना अेक यज्ञकर्म बन सकता है और वैसे प्रयोजनके बिना किया हुआ अुसका अुपयोग शरीरयन्त्रका मूर्खताभरा और नाशकारी अुपयोग है तो वह ब्रह्मचर्य और अुसकी रक्षाके साधनोंको शुष्क और कठोर तपकी दृष्टिसे नहीं बल्कि अेक प्राप्त करने जैसी विद्या और विभूतिके अनुष्ठानकी दृष्टिसे देखेगा और अुसके प्रयत्नमें मानसिक क्लेश अनुभव करनेके बजाय सन्तोष और प्रसन्नताका अनुभव करेगा। जैसे किसी डॉक्टरको अपने औजारोंको भापमें शुद्ध करना और अपने हाथोंका जन्तुनाशक पदार्थोंसे धोना वगैरा क्रियायें बड़े डॉक्टरो द्वारा पैदा की हुअी झंझटें नहीं लगतीं बल्कि सावधानी और लगनसे अुन नियमोंका पालन करनेमें श्रद्धा, अुत्साह और कर्तव्यबुद्धि मालूम होती है और अुसमें वह अपने धंधेका गौरव और अपनी तथा अपने रोगीकी रक्षा मानता है अुसी तरह जब अिस दृष्टिसे हम अिन्द्रियोंके नियमनका विचार करेंगे और अुसके योग्य तरीके खोजेंगे तब अुसके अभ्यास और प्रयोग हमें नीरस और थकानेवाले नहीं लगेंगे बल्कि अुत्साहका बढ़ानेवाले और कर्तव्यरूप मालूम होंगे।

अिस दृष्टिसे ब्रह्मचर्य वगैरा व्रतोंका विचार नहीं किया गया या बहुत कम किया गया है। अिस कारणसे संसारी वृत्तिवाले साधारण लोगोंको नियमका पालन जीवनको सुखहीन और दुःखमय बनानेके लिअे तैयार की हुअी बेड़ियोंके जैसा लगता है। मुसे वे त्यागियोंका धर्म समझते हैं संसारियोंका नहीं। साधारण लोगोंके मनमें यदि हमें संयमके लिअे रुचि और प्रयत्नकी अिच्छा पैदा करनी हो तो संयमपरायण लोगोंको भी अूपरकी दृष्टिसे विचार करके संयमी जीवनके नियम और क्रम बताने चाहिये।

मैं अनुभवियोंसे विनती करता हूं कि वे अिस दृष्टिसे विचार करके संयमके रास्ते खोजें।

१३

कामविकारका कारण

मुझे लगता है कि कामविकारको जांचनेके हमारे तरीकेमें भी थोड़ा सुधार करना जरूरी है। चालू रिवाज अुसे वंशवृद्धिकी प्रेरणाके रूपमें देखने और जांचनेका है। यानी अैसा कहा जाता है कि संसारमें प्राणियोंका वंश चालू रहे अिसलिअे अुनमें कामविकार पैदा होता है।

यह वाक्य है तो ठीक लेकिन अिसका मतलब समझ लेना जरूरी है। अिसका यह मतलब नहीं कि प्राणी पहले अपना वंश बढ़ानेकी स्पष्ट अिच्छा महसूस करते हैं और अुसके परिणामस्वरूप कामसे प्रेरित होते हैं। मनुष्यको छोड़कर दूसरे प्राणी अैसी स्पष्ट अिच्छा किस हद तक महसूस करते हैं यह जाननेका हमारे पास कोअी साधन नहीं है। कुछ प्राणियोंके बारेमें जितना ही समझ हो सकता है कि वे कामविकारका अनुभव करते हैं, अुसके फलस्वरूप संभोग करते हैं और अिस संभोगके फलस्वरूप वंशवृद्धिका अनुभव करते हैं तथा अुससे खुश होते हैं। मतलब यह कि कामविकार पैदा होनेके साथ वंशवृद्धिकी स्पष्ट अिच्छा या ज्ञान हो भी सकता है और न भी हो सकता है। अैसा मालूम होता है कि कच्ची अुम्रमें जिन युवक-युवतियोंकी शादी हो जाती है अुनकी भी मनोदशा यही होती है। और अुस परसे प्राणियोंकी मनोदशाका भी अनुमान हो सकता है। अिस विकारका आखिरी नतीजा वंशवृद्धि होता है। यह अिच्छा प्राणियोंमें अनजानमें ही रहती जरूर है। जिसमें चैतन्यकी संकल्प-सिद्धि या प्रकृतिकी विकास-सिद्धि है अिसलिअे यह कहनेमें दोष नहीं कि अिस आखिरी हेतुके लिअे प्राणियोंमें यह विकार रखा गया है। लेकिन अिसका यह मतलब नहीं कि जब-जब कामविकार पैदा होता है तब-तब वह वंशवृद्धिकी अिच्छाके कारण ही पैदा होता है। बल्कि वह अपने आप अुठता है और अपनी शक्तिसे वंशवृद्धि करता है।

अिसलिअे यह स्वतंत्र रूपसे विचार करना चाहिये कि कामविकार पैदा क्यों होता है।

मैं पहले कह चुका हूं कि मेरी कल्पनाके अनुसार काम और कामना अलग-अलग नहीं है। मनुष्यके हृदयमें रही कामनाओंकी समग्रता ही कामविकारका रूप लेती है। वह क्रोध लोभ वगैरा विकारोंका रूप भी ले सकती है। लेकिन अुसके अलावा कामविकारका रूप भी लेती है।

यही चीज दूसरी तरह रखता हूं।

मुझे लगता है कि कामविकारके रूपमें मनुष्यको अस्वस्थ बना डालनेवाला और शांत न किया जा सके तो आखिरमें जीवनशक्ति पर असर करनेवाला तथा संयोगकी अिच्छा पैदा करनेवाला अनुभव — ज्ञानतंतुओंमें पैदा होनेवाला अेक तनाव है। कअी कारणोंसे प्राणियोंके ज्ञानतंतुओंमें अलग-अलग तरहका तनाव पैदा होता है। क्रोध लोभ डर वगैराकी तरह कामविकारका तनाव भी कभी बाहरी कारणोंसे और कभी भीतरी कारणोंसे हमारे ज्ञानतंतुओंको अस्वस्थ कर देता है। वसन्त जैसी ऋतुसे होनेवाला शारीरिक परिवर्तन कअी तरहके प्राणियोंमें यह अस्वस्थता पैदा करते हैं यह जानी हुअी बात है। वसंत शरद जैसी ऋतुओंके बदलनेके समयकालमें जिस तरह मलेरिया वगैरा रोग सब जगह फैलते हैं अुसी प्रकार यह अस्वस्थता भी लगभग सब प्राणियोंमें पैदा होती है। मनुष्य पर भी अिन ऋतुओंका असर होता है। लेकिन मनुष्यमें ऋतुओंसे भी ज्यादा अुसके जीवनमें से ही पैदा होनेवाले कारण अुसके ज्ञानतंतुओंको बार-बार अस्वस्थ बना देते हैं। अेक ही वस्तुका ध्यान काफी मानसिक परिश्रम ज्ञानतंतुओंको नाजुक व कमजोर बना डालनेवाले नशे मनको अुत्तेजित करनेवाले आनन्द और अुत्साहके मौके तथा कामक्रम कभी-कभी शोकके भी अैसे मौके — अिन सब और अैसी ही दूसरी बातोंसे मनुष्यके ज्ञानतंतु काफी तने हुअे ही रहते हैं। तने रहते हैं

जिसलिअे वे कुछ अस्वस्थताका अनुभव किया करते हैं। मेरे अनुमानसे जिसका मतलब यह है कि मनुष्यके ज्ञानतंतुओंकी व्यवस्थामें कुछ बिगाड़ करनेवाले द्रव्य (टॉक्सिन जैसे) पैदा होते हैं और अुन्हें बाहर फेंक देना जरूरी होता है। लेकिन वे आसानीसे बाहर नहीं निकलते। नतीजा यह होता है कि जिस तरह आंतोंमें मिकट्ठा होने वाला बिगाड़ मनुष्यको अस्वस्थ बना देता है अुसी तरह ज्ञानतंतुओंमें भरा हुआ बिगाड़ भी अुसे अस्वस्थ कर देता है। ज्ञानतंतुव्यवस्था सारे शरीर पर फैली हुआी है अिसलिअे अुस बिगाड़का असर मनुष्य सारे शरीर पर अनुभव करता है। और कामविकार अुठने पर मनुष्यमें जो दूसरेसे लिपटने-चिपटने वगैराकी स्पर्शेच्छा तीव्र हो जाती है वह जिसीका नतीजा मालूम होती है।

जिस तरह व्यवस्थित शहरोंमें पानी कहीं मिकट्ठा नहीं होता बल्कि गटरोंके जरिये तुरन्त बह जाता है या जैसे अूंचे मकान पर लगाया हुआ तार आसमानमें पैदा होनेवाली बिजलीको चुपचाप बह जानेका रास्ता दे देता है और मकानकी रक्षा करता है अुसी प्रकार यदि विविध कार्यक्रमोंके कारण ज्ञानतंतुओंमें पैदा होनेवाले बिगाड़के तुरन्त ही बाहर निकल जानेका शरीरमें व्यवस्थित प्रबन्ध हो तो वह शरीरको शांत रख और अुसमें विकार न पैदा होने दे। लेकिन यदि अैसा प्रबन्ध न हो और ज्ञानतंतुओंका तनाव लगातार चालू ही रहे तो अुस बिगाड़ और तनावका आखिर शरीरकी ग्रन्थियों और स्नायुओं पर भी असर हो तो कोअी अचंभा नहीं। जब यह स्थिति हो जाती है तब कामविकारका स्पष्ट अनुभव होने लगता है। मुझे लगता है कि कामकी शारीरिक अुत्पत्ति जिसी तरह होती है। यह पहले तो ज्ञानतंतुओंकी थकान और अव्यवस्थाके रूपमें होता है। यदि अैसे कोअी अुपाय हाथ लग जाय जिनसे ज्ञानतंतुओंका बिगाड़ शरीरमें से तुरन्त निकल जाय और अुनकी थकान अुतर जाय तो मेरे खयालसे जिस विकारकी ही खास जिच्छा किये बिना यह अपने आप नहीं पैदा होगा।

ज्ञानतंतुओंकी थकान मिटाकर अुन्हें शांत बना देनेका कोअी स्वाधीन अुपाय न जानने या न जानके कारण कच्ची अुम्रके नौजवान अस्वस्थ हो जाते हैं और सो नहीं सकते। किसी जगह दूसरेसे लिपटने-चिपटनेकी प्रेरणामें पड़ते हैं और अुसमें से बेशक बुरी किताब दृश्य या मित्र वगैरा अुसकी चिपर्येंद्रियको खिंच तनावका अनभव करना और अुसके बश होना सिखाते हैं। मुझे लगता है कि शुरुआतमें तो तरुणोंको अिसके फलस्वरूप प्रत्यक्ष रूपमें तनाव अुतर जानेके आराम और नींदके सिवा दूसरा कुछ नहीं पल्ले पड़ता। अुन्हें अिसमें जो आनन्द आता है, वह सिर्फ आरामका ही होता है और शायद कुतूहलका। लेकिन अुसके बाद जैसे ज्ञानतंतुओंको शराब बीड़ी वगैरा नशोंकी अुत्कट अिच्छा रहने लगती है और अुन्हें बार-बार प्राप्त किये बिना बेचैनी रहती है अुसी तरह अिन्द्रियोंको थोड़े भी तनावसे आजाद हो जानेकी और जीवनशक्तिको नष्ट करके आराम पानेकी अुत्कट अिच्छा हुआ करती है। जिसके पहले ही किसी नौजवानकी शादी हो चुकी हो तो अुस अिच्छाको पूरी करनेकी अुसे अनुकूलता मिल जाती है, शादी न हो चुकी हो तो वह शादी करनेकी — और बुरी संगतमें पड़ा हो तो व्यभिचारकी — अिच्छा करता है। जवाबदारीका भान न होनेसे अुसके मनमें यह विचार शायद ही अुठता होगा कि अिसके फलस्वरूप यदि सन्तान पैदा हो जाय तो क्या होगा। अिसलिअे यह कहना सच नहीं होगा कि अिसमें वंशवृद्धिकी प्रेरणा रहती है। यह सिर्फ ज्ञानतंतुओंके अुत्तेजनको शांत करनेकी ही प्रेरणा है। और वंशवृद्धि अिसके फलस्वरूप हो जाती है असा कहना ज्यादा ठीक होगा। वंशवृद्धिकी अिच्छा तो ज्यादा बड़ी अुम्रमें — पच्चीस तीस वर्ष बाद — पैदा होना संभव है।

तो पच्चीसेक बरसकी अुम्र तक तो कामविकारके दर्शनको वंश-वृद्धिकी यानी विवाहकी अिच्छा मानना ही नहीं चाहिये। वह कअी कारणोंसे ज्ञानतंतुओंमें पैदा होनेवाली अुत्तेजना मात्र है। संतति-निरोधके अुपायोंवाला या अुनसे रहित स्त्री-पुरुष-सम्बन्ध अिसका अिलाज नहीं

है स्वभावि सम्बन्ध वगैरा भी नहीं, जड़ या चेतन किसी वस्तुको चिपटना-छिपटना भी जिसका मिजाज नहीं। जिसके लिये तो ज्ञान ततुओंको शांत करनेका निश्चित अुपाय ढूंढना चाहिये। जिस तरह अच्छी मशीनोंके पुरजे कभी गरम होते ही नहीं गरमी पैदा होते ही अुसे मिटानेके अुनमें साधन होते हैं जिस तरह बिजलीके कारखानोंमें जिस जगह पर बिजली पैदा होती है वहांसे पैदा होते ही तार द्वारा वह आगे बह जाती है अुसी तरह प्रतिदिनकी अनेक सत्प्रवृत्तियों या अदुष्ट प्रवृत्तियोंमें लगे हुअ ज्ञानततुओंमें पैदा होनेवाले विगाड़को अुत्तेजना पैदा हुअे बिना बाहर निकाल डालनेका कोओ न कोओ अचूक तरीके तो होने ही चाहियें। तुरन्त शांत करनेवाले और तुरन्त न हो सके तो बेचैन किये बिना शांत करनेवाले कामका वेग पैदा हो अुसके पहले ही अुसे पचा देनेवाले तरीके होने ही चाहियें। मुझे लगता है कि जिन्द्रियोंकी शिक्षा नियमन संयम और संयोजनका शास्त्रीय मार्ग जिस दिशामें शोध करनेमें रहा है। लेकिन दुर्भाग्यसे शरीरशास्त्रका अध्ययन करनेवाले डॉक्टरों या वैद्योंने जिस दिशामें मनुष्य-जातिकी मदद करनेका विचार ही नहीं किया। व तो भोगोंकी तृप्तिके और अुनके अनिवार्य परिणामोंसे बचनेके साधन ही खोजते हैं और बताते हैं और मनुष्य-जातिको मानसिक कमजोरी और शारीरिक विनाशके मार्ग पर खींच ले जाते हैं। सभव है मत्रविद्या और योगविद्यामें जिस दृष्टिसे कुछ विचार किया गया हो लेकिन अुसके सरल रास्ते या तो हैं नहीं या कोओ बताता नहीं। भक्ति भी अेक साधन है लेकिन भक्तिमार्गमें भी रसिकता अुन्माद अतिहर्ष अतिशोक वगैरा ज्ञानततुओंको अुत्तेजित करनेवाले कार्यक्रम होते हैं। अुनका नतीजा कामविकार पर शायद ही अच्छा आता है। पागल बनानेके लिअे दुनियामें बहुतेरे रास्ते हैं। राजकीय कार्यक्रम बड़े सामाजिक और पारिवारिक प्रसग बसंत शरद् वगैरा ऋतुओंके अुत्सव गीत-नृत्य जलसे-नाटक-सिनमा वगैरा कभी बातें भावनाओंको अुत्तेजित करनेके लिअ

दुनियामें मौजूद हैं। वहां भक्तिके नाम पर यही तरीके अख्तियार करनेसे कल्याण नहीं हो सकता। भक्तिका रास्ता और अुसका नतीजा अैसा होना चाहिये कि जिस तरह ग्रीष्म कालकी गरमीसे झुलसता हुआ आदमी खसकी टट्टीसे ठण्डे किये हुअे कमरेमें या खूब अूची पहाड़ीकी ठण्डी हवामें ठण्डक महसूस करता है अुसी तरह वह भी अुसके अुत्तेजित ज्ञान तंतुओंको शांत कर दे अुसे यह पता भी न चले कि अुसके ज्ञानतंतुओंकी अुत्तेजना कब और कैसे शांत हो गअी और अुसे स्वाभाविक प्रसन्नता और आराम दे। सत्संग और भक्तिमें बहुत बार अैसा परिणाम आता है अिसीलिअे अुनकी महिमा है। लेकिन अगर सत्संगके नाम पर शास्त्रीय और तार्किक वाद-विवाद ही हो या कथाके नाम पर भी नव रसोंका ही वर्णन हो तो अुससे बहुत लाभ नहीं होगा।

मैं अिस विषय पर अिस दृष्टिसे विचार करता हूं और अिसके साधन तथा अुपाय खोजता हूं। सज्जनोंकी संगति स्वामी निष्कुलानन्दकी सारसिद्धि भक्तिनिधि हरिवस गीता जैसी कुछ अच्छी पुस्तकें भक्त चिन्तामणिके कुछ अध्यायों गांधीजीके आश्रमवासियोंके नाम लिखे पत्रों मंगलप्रभात आत्मकथा स्नाअिल्सके चरित्र प्रभुमय जीवन रक्तशुद्धिके लिअे किये जानेवाले आसन प्राणायाम आज्ञाचक्र (तंत्रशास्त्रमें बताये हुअे छः चक्रोंमें से अेक) पर धारणा वगराका अभ्यास नामस्मरण मिताहार आदिका अिसमें जरूर बड़ा हाथ है। लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि अिनमें से अेक पर भी आज तक सांगोपांग और सम्पूर्ण प्रयोग हुआ है।

यदि अनुभवी वृद्ध लोग डॉक्टर योगाभ्यासी वगैरा अिस दिशामें साथ करके कोअी अुपाय बतायें तो ब्रह्मचर्य या संयमकी महिमा या दूसरे आदर्शों और कामलोलुपताके सूक्ष्म वर्णनके बजाय अुनसे संयमके आदर्शमें श्रद्धा रखनेवाले किन्तु अिस प्रयत्नमें असफल रहनेवाले विवाहित स्त्री-पुरुषों और अविवाहित युवक-युवतियोंका ज्यादा अुपकार होगा।

बेशक, अेक बात तो निश्चित है। अेक अिन्द्रियको स्वच्छन्द भमने देकर दूसरी अिन्द्रियोंको सही मार्ग पर नहीं रखा जा सकता। शृंगारी अुत्तेजक स्तुतिके नामसे या निन्दाके नामसे, भक्तिके नाम पर या दूसरी तरहसे कामविकारसे ही सम्बन्ध रखनेवाले विषयों पर जाकर टिकनेवाले साहित्य संगीत सस्ति कला खान-पान कपड़े, गंध बातचीत वगैराका मनचाहा सेवन करते हुवे भी ज्ञानतंतुओंको शांत रखनेका कोअी अपूर्व अुपाय हो तो भी अुसका सफल होना संभव नहीं। यह तो कुपथ्य और दवा साथ-साथ करने जैसा है। अैसा कोअी अुपाय हो तो भी वह दूसरी निर्दोष प्रवृत्तियोंसे पैदा होनेवाली ज्ञान-तंतुओंकी थकावटको ही दूर कर सकता है।

बिल्ली-बाघ बन्दर-मनुष्य वगैरा समान प्राणियोंको देखनेसे दोनोंके बीचके विकासभेदमें अेक महत्त्वका कारण मालूम होगा। जिन प्राणियोंका तरुणावस्थामें प्रवेश करनेका समय जल्दी शुरू हो जाता है तथा जो शीघ्र गतिसे तरुण बन जाते हैं अुन प्राणियोंकी भुम्र शक्ति तेज वगैरा कम होते हैं। जिनका बाल्यकाल लम्बे समय तक रहता है किशोरावस्था धीरे-धीरे बढ़ती है और जो किशोरावस्थामें निर्विकार रहते हैं अुनकी भुम्र शक्ति तेज वगैरा ज्यादा होते हैं। किशोरा-वस्था और कच्ची तरुणावस्थामें जीवनशक्तिकी रक्षा ही सर्वांगीण विकासका सबसे बड़ा साधन माना जा सकता है।

अिसलिअे यौवनमें प्रवेश करनेके समयमें लड़के-लड़कियोंकी शिक्षा भाग बातचीत कार्यक्रम वगैराको शुद्ध रखने और बनानेके लिअे जितनी कोशिश की जाय थोड़ी है। मेरे विचारसे जो कमसे कम तीस बरसकी भुम्र तक ज्ञानतंतुओंको अपने आधीन रखनेमें सफल हो सके अुसे बादमें अपनी अिन्द्रियोंको बसमें रखना कठिन नहीं मालूम होगा। तीस तककी भुम्रमें जो अिन्द्रियोंके वश होना सीखेगा अुसके लिअे जीवनभर अुन्हें वशमें रखना कठिन या असंभव ही होगा।

मगर यह परीक्षण ठीक हो तो कामविकार और वधावृद्धि
प्रेरणा दो अलग चीजें हो जाती हैं। अूंचेसे गिरने और कूदनेमें
फर्क है वही फर्क अिन दोनोंमें है। दोनोंमें अूपरसे नीचे आनेका परिणा
पैदा होता है, लेकिन अेकमें विवशता है जबकि दूसरी स्वाधीन कि
है। अुसी तरह ज्ञानतन्तुओंकी अुत्तेजनाके कारण कामवृद्धि होन
विवशता है और वंशकी अिच्छासे विचारपूर्वक सन्तान पैदा करन
स्वाधीनता है। जहां विवशता है वहां चाहे जितने छलकपट गुप्तत
प्रपंच बलात्कार वगैरासे काम लिया जाय फिर भी अुसमें स्वाधीनत
नहीं। यह अिन्द्रियों और मनकी मस्ती ही है। महाभारत वगैरा ग्रन्थों
सन्तान पैदा करनेकी अिच्छासे स्वाधीन कामवृत्तिके कुछ अुदाहरण दि
गये हैं। मुझे नहीं लगता कि ये अशक्य कोटिके हैं। ये शक्य हों तो
नीचेका कथन अक्षरशः सत्य हो सकता है

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति॥

— रागद्वेषरहित आत्मवश बनी हुअी अिन्द्रियोंसे विषयोंका अुपभो
करनेवाला निष्ठावान् पुरुष प्रसन्नताको पाता है।

भगवान करे अिस भावना और विचारकी खोज व संशोधन हो

अिति

स्त्री-पुरुष मर्यादा

भाग तीसरा

अन्तिम लेख

१
संस्थाओंका अनुशासन *

सवाल

क्या आप यह मानते हैं कि कन्याविद्यालयोंके अनुशासन शिष्टाचार और बरताव वगैराके बारेमें साधारण ढंगके कुछ खास नियम बनाये जाने चाहियें? अगर हां तो अुदाहरणके तौर पर वे किन-किन बातोंमें और कैसे होने चाहियें?

शिक्षण-संस्थामें और खास करके स्त्री-शिक्षण संस्थामें स्त्री-पुरुष सम्बन्धके बारेमें किसी खास शिष्टाचार और सुरुचिके नियम बनाये जाने चाहियें? यदि हां तो अुनमें कौनसी बातोंका समावेश करना चाहिये?

गृहशालाके ढंगकी संस्थामें छात्रालय शिक्षक-निवास वगैरा होंगे। अुनके लिअे आने-जाने मिलने-जुलने स्पर्शास्पर्श वगैराके बारेमें क्या अैसे शिष्टाचारके नियम बनाये जाने चाहियें जो छात्राओं शिक्षक-शिक्षिकाओं और जनता सबका मार्गदर्शन कर सकें? यदि हां तो अैसे नियम बनानेके लिअे आप किन्हें योग्य मानते हैं? यदि नहीं तो अिन बारीक बातोंमें नियंत्रण और व्यवस्था रखनेके लिअे आप दूसरे कौनसे तरीके सुझायेंगे? अैसे नियम बनाये जायं तो संस्थाकी तरफसे अुनके पालनकी योग्यतापूर्वक देखरेख रखनेकी जिम्मेदारी किसके सिर होनी चाहिये?

यह बात सभी मानेंगे कि व्यक्तिकी भांति संस्थाको भी शिष्टाचार और शील-प्रतिष्ठाके बारेमें अैसी स्थिति प्राप्त करनी

---

* यह लेख मैंने और श्री नरहरिभाओ परीखने मिलकर अेक संस्थाकी तरफसे पूछे गये सवालोंके जवाबमें लिखा है।

चाहिये जो सका और लोकनिन्दासे परे हो। यह स्थिति प्राप्त करनेके लिये अूपरकी बातोंके सिवा दूसरा जो कुछ विचार करने जैसा हो वह कृपया बताअिये।

जवाब

दुनियामें अैसा अेक भी समाज नहीं होता जिसमें स्त्री-पुरुष सम्बन्धके बारेमें शिष्टाचार और सुरुचिके काअी नियम ही न हों। सम्भव है कोअी लिखित नियम न हों। लेकिन क्या अुचित और क्या अनुचित है अिस बारेमें किसी न किसी प्रकारका लोकमत तो होता ही है। और आम तौर पर सभ्य स्त्री-पुरुष अुस लोकमतके अनुसार ही समाजमें व्यवहार करते हैं। अगर लोकमत बलवान होता है — यानी अुसके खिलाफ बरताव करनेवाला आदमी चाहे जितना बड़ा हो फिर भी अुसके खिलाफ समाजके प्रतिष्ठित लोग संकोच रखे बिना किसी भी तरह अपनी नापसन्दगी जाहिर करते हैं — तो समाजकी मर्यादाओंका आग्रहपूर्वक पालन होता है। अगर लोकमत कमजोर होता है — यानी समाजके प्रतिष्ठित आदमी मर्यादाभंगके खिलाफ निःसंकोच भावसे स्पष्ट बात नहीं करते या दंड नहीं देते या आवाज नहीं अुठाते बल्कि अुस विषयको सिर्फ निन्दाका विषय बनाकर छिपी टीका या चर्चा किया करते हैं — तो ये नियम नहीं पाले जाते।

नियमोंको आपाचमत करनेसे ज्यादा महत्त्वकी चीज लोकमतको बलवान और निःसंकोच प्रगट होनेवाला बनाना है। हमारे देशमें आज जो अलग-अलग तरहके अनर्थ चल रहे हैं (जैसे कालाबाजार, रिश्वत-खोरी या स्त्री-पुरुषका ढीला व्यवहार) अुनका कारण अुचित अनुचितके बारेमें स्पष्ट रायका अभाव नहीं बल्कि अनुचितका आग्रह पूर्वक निषेध करनेवाले लोकमतका अभाव है। अपना पक्ष या दलके लिये अभिमान हो तो प्रतिष्ठित माने जानेवाले लोग बड़े-बड़े दोषोंको भी ढांक देते हैं विरोधी पक्षके हों तो किसीकी निर्दोष या तुच्छसी बातको भी बड़ा और विकृत रूप दे देते हैं। दोनोंमें से अेकको भी सत्य

या नैतिकताकी बहुत परवाह नहीं होती हरअक सिर्फ अपने पक्षको बलवान बनाने जितना ही अिसका अुपयोग करता है। यह दम है निरा ढोंग है।

शिक्षित मध्यमवर्गके समाजमें पिछले २५ ३० बरससे स्त्री-पुरुष मर्यादासे सम्बन्ध रखनेवाले आचार विचारमें बहुत फर्क हो गया है। पुराना समाज कुछ बातोंमें संकुचित विचारवाला था और आजकी बदली हुअी हालतमें अुस समयके नियमोंका अक्षरशः पालन करनेमें मुश्किलें आती हैं। संकुचित विचारोंकी प्रतिक्रिया (रि-अेक्शन)के रूपमें और नअी परिस्थितिके कारण समाजमें पुराने नियमोंके विरुद्ध आग्रहपूर्वक जानेका रुख कुछ हद तक पैदा हो गया है। अिस प्रतिक्रियाका असर अभी पूरा नहीं हुआ है और समाजके विचारोंमें अभी तक स्थिरता नहीं आअी है। अिस कारणसे कुछ दोष पैदा होते रहते हैं।

अैसी स्थितिमें आज बहुत निश्चित नियम बनाना कठिन मालूम होता है। दो चार नैतिक सूत्रोंको सब मानें और व्यवस्थापक समिति अपने अनुभवसे नियम बनाती जाय तो काफी है। फिर भी आज तो अैसा मालूम होता है कि कोअी व्यवस्थापक समिति बहुत निश्चित नियम नहीं बना सकती। शुद्धिकी रक्षा आखिरमें तो आसपासके वातावरण कार्यकर्ताओंकी समझ और जिम्मेदारी तथा शुद्धिकी लगन पर ही आधार रखती है।

स्त्री-पुरुष-सम्बन्धमें अकांत शरीर-स्पर्शगामी (सजातीय या विजातीय नौजवानों या किशोरोंका अेक-दूसरेसे लिपटना, अेक दूसरे पर गिरना या दूसरी तरह लाड़ करना) कामको भड़कानेवाले दृश्यों नाटकों पुस्तकों संगीत वगैरामें साथ-साथ भाग लेना भाअी-बहन मां-बाप जैसे कौटुम्बिक सम्बन्ध न होने पर भी वैसे सम्बन्ध कायम किये हैं अिस तरह मनको समझाकर सगे भाअी-बहन-मां-बापके साथ भी न किये हों अैसे लाड़ या लगाव (intimacy) की छूट लेना— वगैरा व्यवहारोंको गन्दगी या खतरेके स्थान माना जा सकता है। यदि

अैसा आग्रह न हो कि सगे भाभी-बहन-मां-बापसे भी या भुनके सायके व्यवहारमें भी अमुक छूट तो कभी ली ही नहीं जा सकती अपना शरीर अेक पवित्र तीर्थ (गंगाजल या मन्त्रपूत जल) या पवित्र भूमि है और आपद्धर्मके सिवा जैसे पवित्र तीर्थ या क्षेत्रको थूक मैल-पेशाब या पांवके स्पर्शसे अपवित्र नहीं किया जा सकता या पवित्र बनकर ही भुसे स्पर्श किया जा सकता है, वैसे ही अपने शरीरको भी — जिसके साथ सुयम विवाह किया हो अैसे पति या पत्नीको छोड़कर — पवित्र रखनेका आग्रह न हो और विषयभोगकी तीव्र भिच्छा होते हुअे भी किसी कारणसे शादी करनेकी हिम्मत न होती हो तो कभी न कभी जवानी बीत जाने पर भी मन मैला होनेका डर बना रहता है।

दूसरी तरफ यह भी ध्यानमें रखना जरूरी है कि हमारा सारा समाज ही गन्दे व्यवहारोंसे काफी बिगड़ा हुआ है। जो लोग अनैतिकताकी बहुत ज्यादा चर्चा करते हैं, भुनका बड़ा भाग खुद चरित्रवान और पवित्र ही होता है अैसा नहीं कहा जा सकता। गांवोंमें भी व्यभिचारसे होनेवाले रोगों (venereal diseases) का प्रमाण बहुत बड़ा है। "कुअेमें होगा भुतना ही पानी तो हौजमें आयगा न?" जब तक सारी जनता सारे समाजका चरित्र भूंचा न हो तब तक संस्थाओंका — जवान होते हुअे भी कुंवारे रहनेवाले स्त्री-पुरुषोंकी संस्थाओंका — हर हालतमें पवित्र रहना संभव नहीं है।

संस्कारी परिवार और समाजमें बच्चे मातृभाषाकी तरह शिष्टाचार, सुरुचि और मर्यादाके नियम भी आसानीसे सीख लेते हैं। जिस तरह व्याकरणके नियम न जानने-सुनने पर भी थोड़ा बड़ा बच्चा अपनी मातृभाषाके व्याकरणके अनुसार ही भाषा बोलने लगता है भुसी तरह अैसे नियमोंके बारेमें भी होता है। व्याकरणके नियमोंकी तरह अच्छे और सभ्य व्यवहारके नियम बनाने हों तो भले बनाये जायं लेकिन भुन्हें बनानेका काम जिन्हें ये नियम पालने हैं जिन्हें पलवाने हैं और जिस समाजके बीच रहकर काम करना है भुन तीनोंके प्रतिनिधि मिलकर

करें और बुसमें कोओी शंका या विचार-भेद पैदा हो जाय तो जिस बारेमें वे तीनों किसी अैसे व्यक्तिके निर्णयको मानकर काम करनेके लिअे बंध जाय जिसके मतके लिअे बुन्हें आदर हो। अगर जिससे अलग किसी तरह नियम बनानेकी कोशिश की जायगी तो व कागज पर ही लिखे रह जायंगे।

जो नियम सुझाये जाय, वे अैसे होन चाहियें जिन्हें पालनेके लिअे सारे समाजसे सिफारिश की जा सके। वे किसी अेकाध संस्थाके भीतरी व्यवहारके लिअ ही नहीं बनाये जाय। जिसके साथ बुन नियमोंका भी विचार कर लेना चाहिये जा सहशिक्षा नामक लेखमें सुझाये गये हैं।

सेवाग्राम १४ १ '४५

२

'धर्मके भाओी-बहन'

जिनके बीच कोओी नाता-रिश्ता न हो अैसे स्त्री-पुरुषोंमें कभी-कभी अेक-दूसरके धर्मके भाओी-बहन का रिश्ता बांधनका रिवाज पुराने समयसे चला आया है। कभी-कभी दो पुरुष या दो स्त्रियां भी अेक-दूसरेको भाओी या बहन माननेकी प्रतिज्ञा लते हैं। युरोपमें अक समय अैसी प्रतिज्ञासे रिश्ता जोड़नेवाले ओीसाओी सैनिकोंका अेक संघ था। बुसमें तो प्रतिज्ञाके साथ अेक-दूसरेके खूनका जिन्दबदल लेनकी या अैसी कोओी विधि भी की जाती थी। सिवनी जलमें अक आदिवासी कैदीके मुंहसे अैसे अेक रिवाजकी बात मैंन सुनी थी। बुसन अपने अेक धर्मके भाओी की बात कही थी। बुसका मतलब पूछन पर बुसने बताया कि जो दो आदमी अक-दूसरको दिली-दोस्त मानते हों वे यदि अक-दूसरेकी वफादारीकी सौगन्ध ला लें तो धर्मके भाओी कहे जायेंगे। यह विधि जनेअू शादीकी विधिकी तरह धूमधामस की

बनते हैं। अुसके बाद दोनों अेक-दूसरे पर पूरा विश्वास रखते हैं, अुनके बीच कोअी दुराव-छिपाव या गुप्त बात नहीं रहती। अच्छे-बुरे मौकों पर सगे भाअीके साथ जैसे भेंट-सौगात, मुलाकात वगैराका व्यवहार रखा जाता है, वैसा ही सारा व्यवहार अिस भाअीके साथ भी रखा जाता है। जोड़में ये दोनों दुनियाको बताते हैं कि अलग माता-पिताकी सन्तान होते हुअे भी अुन्हें सब सगे भाअी ही समझें। अिस प्रतिज्ञाका बड़ी निष्ठासे पालन करनेमें वे अपनी कुलीनता मानते हैं।

किसी समय अैसा रिश्ता दो स्त्री-पुरुषके बीच भी बनता है। अपनी किसी कठिनाअी या मुसीबतके समय मदद करनेवाली या अपनी मुसीबतके कारण शरणमें आनेवाली किसी स्त्रीको पुरुष अपनी धर्मकी बहन जाहिर करता है। फिर कोअी प्रेमी भाअी अपनी सगी बहनके साथ जैसा सम्बन्ध निभाता है, वैसा वे अेक-दूसरेके साथ निभाते हैं। वह बहन अिस भाअीको राखी भेजना या नजदीक हो तो भाअीदूजके दिन जीमने बुलाना कभी भूलती नहीं। और भाअी अच्छे-बुरे मौकों पर अुसको और अुसके बच्चोंको याद करता ही है।

अैसे नाते पवित्र बुद्धिसे जोड़े जाते हैं और कुलीनताके खयालसे आखिर तक निभाये जाते हैं। अिनमें स्त्री-पुरुष-मर्यादाके नियमोंको ढीला करनेका जरा भी अिरादा नहीं होता। हो भी नहीं सकता, क्योंकि मर्यादाके जो नियम बताये गये हैं वे वही हैं जिन्हें सगे भाअी-बहन या मां-बेटे या बाप-बेटीके बीच भी पालना जरूरी होता है।

पर कभी-कभी अैसा देखा जाता है कि मर्यादाके पालनमें पैदा हुअी दिक्कतोंका बचाव करनेके लिअे भी अैसा सम्बन्ध बनाया जाता है। दो अलग अुमरवाले स्त्री-पुरुषके बीच दोस्ती जमती है। और अुसमें से वे खूब छूटसे अेक-दूसरेके साथ हिलने-मिलने लगते हैं। यह छूट समाजको खटकती है या खटकनेका अुन्हें डर लगता है। यह छूट अुचित नहीं लगती, लेकिन दोनों अुसे छोड़ना नहीं चाहते। अैसे मौके [illegible] बनके भाअी-बहनकी दलील दी जाती है।

सच पूछा जाय तो अिस स्थितिमें यह दलील अक बहाना ही होती है। क्योंकि वे अपने सगे भाओी या बहनके साथ या सगे लड़के-लड़कीके साथ जैसा छूटका व्यवहार नहीं रखते वैसा व्यवहार अिन माने हुओ भाओी-बहन माँ-बेटे या बाप-बेटीके साथ रखते हैं।

धर्मका नाता जोड़नेवालेको यह सोचना चाहिये कि यह नाता धर्मके नाम पर जोड़ना है। यानी अुसमें परमार्थकी पवित्रताकी कुलीनताकी, गंभीरताकी वृद्धि होनी चाहिये। यह सम्बन्ध अेकांतमें गप्प मारनेकी साथ घूमने-फिरनेकी पीठ या सिर पर हाथ फेरते रहनेकी अेक-दूसरेके साथ चिपटकर बैठनेकी या बिना कारण किसी न किसी बहानेसे अेक-दूसरेको छूनेकी छूट लेनेके लिअ नहीं होना चाहिए। यह अेक-दूसरेकी आबरू रखने और बढ़ानेके लिअे होना चाहिये और समाजमें अुसका अैसा नतीजा आना ही चाहिये। अुसमें निन्दाके लिअे कोओी गुंजाअिश ही नहीं होनी चाहिये। जिस तरह अपनी सगी बहनकी निन्दा असह्य मालूम होती है अुसी तरह धर्मकी बहनकी निन्दा भी असह्य लगनी चाहिये। अुसका निमित्त खुद बनता हूँ अैसा मालूम हो और निन्दा अगर झूठी हो तब तो — हिंसाकी भाषामें कहूँ तो — निन्दा करनेवालेकी जीभ काट लेनेकी वृत्ति मनमें पैदा होनी चाहिये और निन्दा सच्ची हो तो आत्महत्या करनेकी अिच्छा होनी चाहिये। और यदि निन्दा सच्ची हो लेकिन अपने बारेमें नहीं बल्कि अपने सम्बन्धी जनके बारेमें हो तो अुसका खून करनेकी अिच्छा होनी चाहिये। अिसमें क्रोध तो है लेकिन यह भावनाकी अुत्कटताको बताता है। अहिंसक वृत्तिका आदमी तो बिगड़ी हुओी बाजीको सुधार लेनेकी हर कोशिश करेगा। लेकिन धर्मके भाओी बहन का विवाह हो या अुनके बीच कभी गन्दा या अपवित्र व्यवहार हो तो अिसे सगे भाओी-बहनके बीचके गन्दे व्यवहारसे भी ज्यादा घोर पतन माना जायगा।

जो स्त्री-पुरुष अेक-दूसरके धर्मके भाओी-बहन या दूसरे सम्बन्धी बनना चाहते हैं वे आश्रमवासियोंकी तरह या विवाहकी तरह विधिपूर्वक अैसी प्रतिज्ञा लेनका रिवाज डालें तो अच्छा हो।

मओी १९४५

३

बुढापेमें विवाह

लॉयड जॉर्जने करीब ८० बरसकी अुमरमें लगभग ६० बरसकी स्त्रीके साथ विवाह किया था। लॉर्ड रीडिंगने भी अैसा ही किया था। युरोपमें तो अैसे कअी अुदाहरण मिलेंगे। हमारे देशमें भी वृद्धविवाह होते हैं। लेकिन फर्क यही है कि हमारे यहां सिर्फ वर ही बूढ़ा होता है वधू बूढ़ी नहीं होती। वह तो शायद १२-१५ वर्षकी बेसमझ लड़की भी हो सकती है।

बूढ़के साथ छोटी लड़कीका विवाह करनेका मतलब मुर्देके साथ विवाह करना है। अैसा करके पुत्रीका पापी पिता बादमें पछताता है।" — गुजराती कविताका यह भाव हमारे देशके वृद्धविवाहका लागू होता है लॉयड जॉर्जके विवाहको नहीं।

लेकिन अैसे विवाहके बारेमें क्या कहा जाय? क्या अुसे काम विकृति कहा जाय? कामविकृति हरगिज नहीं कहा जा सकता यह न कहूं तो भी मैं अैसी परिस्थितिकी कल्पना कर सकता हूं जिसमें अैसा विवाह अुचित माना जा सकता है। अेक-दो मामलोंमें मैंने बड़ी अुम्रके स्त्री-पुरुषोंको आपसमें विवाह कर लेनेकी सलाह दी है। मेरी सलाह अुन्होंने मानी नहीं पर अुचित अवसर पर मुझे यही सलाह देना ठीक लगता है।

लॉयड जॉर्ज जैसा कोअी व्यक्ति बड़ी अुम्रमें विधुर या (स्त्री हो तो) विधवा होता है। पत्नी या पति ही कर सके असी सार-संभाल और सेवाओंकी अुसे जरूरत है। अुसकी परिचित अेक विधवा या पुरुष है। अुसे भी सहारेकी जरूरत है। मृत पत्नी या पतिकी याद और प्रेम बहुत ताजे नहीं रहे हैं। वे यदि किसी भी तरह अेक-दूसरेकी मदद करते हैं तो अुसमें से लोकनिन्दाका डर पैदा होता है। वे खुद भी डरते पर नहीं हैं। अुनकी कामवासना तीव्र नहीं है, अिसीलिअे अुनकी विवाह करनेकी अिच्छा नहीं है। लेकिन निर्भय बनकर वे आपसमें व्यवहार कर सकें असा विश्वास भी अुन्हें अपने बारेमें नहीं है। अेक-दूसरेकी मदद करनेमें शरीरका स्पर्श, अेकांतवास वगैरा होनेकी संभावना रहती ही है। असी हालतमें अगर वे हिम्मत करके विवाह कर लेनेके बजाय अेक-दूसरेसे दूर ही रहें तो अिससे दोनोंमें से अेककी भी परेशानी कम नहीं होती। यदि विवाह किये बिना साथ रहें और आपसमें धर्मके भाअी-बहन बननेकी कोशिश करें, तो कअी बार यह ढोंग ही साबित होता है। क्योंकि कुछ सेवायें असी होती हैं जो सगे भाअी-बहनोंमें भी परस्पर नहीं ली जा सकतीं। पति-पत्नी ही संकोचके बिना असी सेवा कर सकते हैं। अिसके खिलाफ यदि वे विवाह कर लेते हैं तो कुछ समय तक लोग भले यह कहें कि बुढ़ापेमें क्या शौक सवार हुआ है, लेकिन अिससे दोनों अेक-दूसरेको पति-पत्नीकी प्रतिष्ठा देते हैं और समाज भी अुस प्रतिष्ठाको मंजूर करता है। वे लोकनिन्दाके क्षेत्रसे बाहर हो जाते हैं।

हमारे यहां जाननेवाले वर्गोंमें विधवा विवाहकी हिम्मत न होनेके कारण बहुत बड़ी अुम्रमें विधुर बननेवाले लोगोंके असे अुदाहरणोंका अभाव नहीं है जिनमें समान दर्जेकी किसी स्त्रीके न मिलनेसे पहले नौकरवर्गकी स्त्रीको घरकी देखभाल करनेके लिअे रखा जाता है और बादमें अुसे रखैल बना लिया जाता है। जिन लोगोंमें विधवा विवाहकी छूट है, अुनमें असा नहीं होता।

लेकिन यह सूचना मैंने कार्यकर्ता स्त्री-पुरुषोंको ध्यानमें रखकर की है। कभी अविवाहित पुरुषको स्त्री-कार्यकर्ताकी मददकी जरूरत होती है, विधवा या कुमारी स्त्रीको पुरुषके सहारेकी जरूरत मालूम होती है। आदमी चाहे जितना स्वतंत्र रहना चाहे, फिर भी जीवनमें कुछ मौकों पर तो अुसे किसीकी मददकी जरूरत महसूस होती ही है। समाजकी जो सेवा वह करना चाहता हो, अुसकी सिद्धिके लिअे भी यह मदद जरूरी होती है। ज्यादातर स्त्री-पुरुष अैसा मानते दीखते हैं कि कुछ खास व्यक्तिगत मदद स्त्री ही पुरुषको दे सकती है, और कुछ खास तरहका बल, धीरज और मदद पुरुष ही स्त्रीको दे सकता है। यह मान्यता कमजोरीके कारण हो, काल्पनिक हो या भ्रम हो, लेकिन अुसकी हस्ती है अैसा माने बिना काम नहीं चलता। समाजसेवा करनेमें भी कुछ प्रवृत्तियां स्त्री-पुरुषके साथ होनेसे ही अच्छी तरह चल सकती हैं। जीवनमें असी मदद और आराम पहुंचानेवाले बहुतसे स्त्री-पुरुषोंको कोअी न कोअी विजातीय साथी मिल जाता है। अुन दोनोंको साथमें काम करना अच्छा लगता है। दोनोंको अेक-दूसरेकी मदद करनेमें आनन्द आता है। अिसके पीछे शुरूमें जाग्रत रूपमें कामवासनाका आकर्षण नहीं होता, भीतर ही भीतर हो भी तो वह अज्ञातरूपमें ही रहता है और लम्बे परिचयके बाद ही मालूम होता है।

लेकिन जाग्रत कामवासना न हो तो भी दोनोंके बीच विशेष या खास मित्रताका सम्बन्ध तो जरूर हो जाता है। यानी दूसरे परिचित विजातीय कार्यकर्ताओंके बनिस्बत अिन दो व्यक्तियोंकी आपसमें ज्यादा पटती है। अेक-दूसरेको हर तरहकी मदद करनेमें दोनों ज्यादा अुत्साह अनुभव करते हैं। अुन्हें अेक-दूसरेकी मदद लेनेमें भी कम संकोच होता है। दोनों अेक ही जातिके व्यक्ति हों, तो अुन्हें हम भाअीके समान मित्र या सखियां कहते हैं और अुनके अिस सम्बन्धके बारेमें कोअी बुरा विचार मनमें नहीं लाते। अुल्टे अुसकी हम कदर करते हैं। लेकिन विजातीय व्यक्तियोंके बीच असी मित्रता होनेसे और दोनोंके अविवाहित

या विधुर विधवा होनेसे दोनोंके साथ रहने और काम करनेमें अनेक कठिनाअियां पैदा होती हैं। अनका धीरे-धीरे बढ़नेवाला परिचय स्त्री पुरुष-मर्यादाके नियमोंका पालन ढीला पड़ता है। दोनों अेक-दूसरेको भाओी-बहन या धर्मके भाओी-बहन कहते हैं लेकिन सगे भाओी-बहनके बीच भी न पाओी जानेवाली निकटता और निःसंकोचता अनुभव करते हैं। अुनमें अुठने-बैठने बातचीत वगैरा करनेमें शिष्टाचार जैसी कोओी चीज नहीं रह जाती। यह व्यवहार आसपासके लोगोंकी निगाहमें आता है। अुन्हें असमें सच्चा या झूठा विकारका शक होता है। मनुष्य-स्वभावके अनुसार वे अपना शक मुंह पर जाहिर नहीं करते या अुस व्यवहारके बारेमें अपनी रुचि अरुचि मुंहसे ही नहीं प्रकट करते। लेकिन अन्दर ही अन्दर अुनकी निन्दा करते हैं और लोगोंमें बातें फैलाते हैं। अन्तमें वे दोनों विकृत रूपमें अपनी निन्दा होती सुनते हैं। दोनोंके मन नाजुक होनेसे दोनों दुःखी होते हैं चिढ़ते हैं बेचैन होते हैं। अेक-दूसरेको छोड़ नहीं सकते छोड़ना अुन्हें ठीक भी नहीं लगता। अेक-दूसरेके साथ आजादीसे बरताव करनेकी जो आदत पड़ चुकी है अुसे छोड़कर फिरसे संकोच और मर्यादा पालना लगभग असंभव मालूम होता है। यह बात गले भी नहीं अुतरती। और साथ ही लोकनिन्दा भी सहन नहीं होती। दोनों अुमरमें न बिलकुल जवान हैं और न बिलकुल बूढ़े। असलिअे दोनों यह भी नहीं कह सकते कि हम कामविकारसे पर हैं। विकारी हैं अैसा भी वे स्पष्ट रूपसे अनुभव नहीं कर सकते। अितनी बड़ी अुमरके लोग —खास कर स्त्रियां— विवाह करें तो हमारे समाजमें अुनकी हंसी होनेकी आशंका रहती है। अिस कारणसे विवाहकी कल्पना भी सहन नहीं होती तब फिर हिम्मत तो वे कर ही कैसे सकते हैं?

मेरी राय है कि अैसे स्त्री-पुरुषोंको आपसमें शादी कर डालनेकी ही हिम्मत दिखानी चाहिये। सिर्फ लोकनिन्दाके बचनेके लिअे भी अैसा करनेमें मैं दोष नहीं मानता। लेकिन लोकनिन्दासे बचनेके सिवा भी अिस करनेकी कअी अच्छाअियां हैं। अेक-दूसरेका जो आसरा व सौजन्य हैं

अुस पापका सही रास्ता न बतायेंगे, जो समाज-सेवा के कामों चाहते हैं, अुसे ज्यादा सीधे ढंगसे कर सकेंगे। और अगर विकार सिर्फ दबा हुआ रहा होगा और अुसके किसी निम मर्मके बन्धनोंको तोड़कर फूट पड़नेकी संभावना होगी, तो अुसके धर्मके अनुकूल ढंगसे ही निकलनेका रास्ता साफ हो जायगा। यदि दोनोंमें विकार होगा ही नहीं, तो असा मानना जरूरी नहीं कि विवाह करनेसे वह अुभर ही जायगा। विवाह कर लेनेके कारण दूसरे स्त्री-पुरुषोंको अुनके साथ मिलने-जुलनेमें और व्यवहार करनेमें कम संकोच होगा, क्योंकि जब दो व्यक्तियोंके सम्बन्धके विषयमें लोगोंमें अुचित या अनुचित शंका पैदा हो जाती है, तब दूसरे स्त्री-पुरुष भी अुनके साथ विश्वासपूर्वक मिल जुल नहीं सकते।

अलबत्ता अिस सलाहका यह मतलब नहीं कि हर तरहकी अफवाह या अपने सामियोंकी भी कुशंकाओंसे बचनेका यही अेक रास्ता है। कभी-कभी तो अैसी कुशंका निन्दा वगैराको सहन ही कर लेना चाहिये। कोअी विवाहित स्त्री या पुरुषके बारेमें असी निन्दा की जाय और यदि अुसका कोअी आधार न हो, तो वह क्या करे? अपने शुद्ध व्यवहारसे कुछ समय बाद लोगोंकी शंका मिट जायगी, असा विश्वास रखकर बरताव करनेके सिवा और कोअी रास्ता ही नहीं हो सकता। अिसी तरह अविवाहित स्त्री-पुरुषोंको भी समझना चाहिये। लेकिन विवाहित या अविवाहित दोनोंको यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि शुद्ध व्यवहारका विश्वास अुचित मर्यादाओंके पालनसे ही कराया जा सकता है, मनमाने व्यवहारसे नहीं। जो लोग मर्यादा-पालनमें विश्वास नहीं रखते, वे खुद ही लोकनिन्दाको प्रोत्साहन देते हैं। अुन्हें लोकनिन्दासे चिढ़ने और गुस्सा करनेका कोअी हक नहीं है।

मअी, १९४०

४

ब्रह्मचर्यका साध्य

कामविकार या वीर्यनाशके दोषसे बचना चाहनेवाले लोगोंके पत्र मेरे पास आया ही करते हैं। अिस विषय पर कअी पुस्तकें लिखी गअी हैं, फिर भी यह स्पष्ट है कि वे परेशानीमें पड़े हुअे लोगोंकी कठिनाअी दूर नहीं कर सकीं। मैं भी अिसका कोअी निश्चित — फिर चाहे वह मुश्किल ही क्यों न हो — अुपाय नहीं जानता। और अिसका कोअी सरल राजमार्ग तो मुझे दीखता ही नहीं।

लेकिन अिस बारेमें कुछ परेशानी तो अिसलिअे पैदा होती है कि ब्रह्मचर्यके अर्थ और साध्यके बारेमें हमारे विचार साफ और अेक ध्येय वाले नहीं होते। अिसी कारणसे अुपाय खोजने और अुन पर अमल करनेमें भी कठिनाअी होती है। अिसलिअे अिस विषयमें बुनियादसे ही विचार करना मददगार साबित होगा।

पतंजलि मुनिने यह सूत्र कहा है कि ब्रह्मचर्यकी स्थिरतासे वीर्यलाभ होता है। यहां 'वीर्य' के दो अर्थ होंगे (१) हम अिस नामसे जिसे पहचानते हैं वह शरीरका सजीव पदार्थ — जिसे हम आगे शुक्र नाम देंगे; और (२) अुत्साह, साहस, पुरुषार्थ करनेकी शक्ति (vigour)। लाभका अर्थ है प्राप्ति और वृद्धि। योगकी सिद्धिके लिअे जो पांच चीजें रखी गअी हैं, अुनमें से वीर्य यानी अुत्साह भी अेक चीज है। शुक्रके नाशसे अुत्साह कम होता है, अैसा अनुभव होनेसे दोनोंको अेक ही नाम दिया गया है और शुक्रकी वृद्धि व संग्रह ब्रह्मचर्यका साध्य माना गया है। साधारण तौर पर ब्रह्मचर्यकी साधनाका अर्थ यह समझा जाता है कि शुक्रकी अुत्पत्ति हो, वह बढ़े, लेकिन अपनी अिच्छाके बिना बाहर न निकले; अिस हद तक अपनी अिन्द्रिय पर

वायु पानकी भावना। अुसका यह अर्थ नहीं कि शुक्रकी अुत्पत्ति ही न हो या न हो सके क्योंकि यह स्थिति तो नपुंसकता होगी। मार अत्यन्त निष्ठावान ब्रह्मचारीके भी दिलमें घुसकर हम देखेंगे तो पता चलेगा कि अुसे अपने ब्रह्मचर्यके लिअे जितनी लगन और चिन्ता होती है अुतनी ही या अुससे ज्यादा अपने पुरुषत्वके लिअे होती है। अुसे ब्रह्मचर्यकी सिद्धि प्रिय है लेकिन अपनी पुरुषत्व-शक्ति भी अुतनी ही या अुससे ज्यादा प्रिय है। अिसलिअे शुक्रके नाश होनेसे अुसे जितना दुःख होगा अुससे ज्यादा दुःख अुसे अपने पुरुषत्वमें कमी आनेकी शंकासे होगा।

अिसका मतलब यह कि पुरुष चाहे संयमी हो या भोगी हो विवाहित हो अविवाहित हो या विधुर हो शुक्रकी रक्षाके बनिस्बत शुक्रकी अुत्पत्तिकी रक्षाको वह ज्यादा चाहता है। अुसे यह पसन्द नहीं कि शुक्र बकार बरबाद हो जाय अिच्छाके विरुद्ध निकल जाय — यानी रोकना चाहे तो वह अुसे रोक न सके। लेकिन अुसकी यह अिच्छा होती है — भले अुसे हमेशा ब्रह्मचारी ही रहना हो तो भी — कि वह चाहे तब शुक्र पैदा होना ही चाहिये।

अब सजीव या बढ़नेवाली दूसरी चीजोंको लागू होनेवाला नियम शुक्र पर भी लागू होता है। हम जब-जब बाल या नख काटें अथवा किसी मैदानका घास काटें तब काटे हुअे भागकी लम्बाअीका हिसाब रखें तो मालूम होगा कि अिस हिसाबसे २५ वर्षमें काटे गये नखों बालों या घासकी लम्बाअी कितनी ही गजकी हो गअी है। फिर भी हम जानते हैं कि हम यदि अुन सबको काटे बिना बढ़ने ही दें तो नख ज्यादासे ज्यादा ४५ अिंच और बाल व घास (किस्मके मुताबिक) १४ फुटसे ज्यादा नहीं बढ़ते। अेक हदके बाद अुनमें बढ़ती मालूम नहीं होती। लेकिन अिसका यह मतलब नहीं कि अुनकी नअी अुत्पत्ति होती ही नहीं। बल्कि जितनी अुत्पत्ति होती है अुतना ही अुनका कुदरती ह्रास भी होता रहता है। अिस कारणसे अुनकी बाढ़की अेक प्रकारकी हद आ गअी

लगती है। लेकिन यदि हम अुन्हें काटते रहें यानी कुदरती तौर पर अुनका जितना ह्रास होता है अुससे ज्यादा तेजीसे अुनका व्यय करें, तो अिस नुकसानकी भरपाअी करनेके लिअे अुनके भीतर रही जीवन शक्ति भी ज्यादा तेजीसे बढ़ती है।

अिस तरह व्ययके वेगके साथ अुत्पत्तिका वेग जुड़ा हुआ है। जो बार-बार विषयभोगका सेवन करते हैं या दूसरी तरहसे शुक्रका नाश होने देते हैं अुनमें शुक्रकी अुत्पत्तिकी क्रिया भी तेजीसे होती है यानी अुनमें कामविकार भी बार-बार अुठता है। अलबत्ता अिसकी अेक सीमा तो होती ही है। क्योंकि नख बाल शुक्र या शरीरके किसी भी अंगकी अुत्पत्ति सर्वथा स्वाधीन नहीं है। आहार विहार कसरत वगैरा अनेक बातों पर अुसकी शक्ति निर्भर करती है। शरीरके भिन्न हुअे सब अंगोंको पैदा करनेवाली और अुन्हें दुरुस्त करनेवाली असल चीज खून है। अुसीकी अुत्पत्ति शरीरमें कम हो जाय या अुसे सब तरहके ह्रासकी समान रूपसे पूर्ति करनेके बजाय किसी अेक ही अंगके निर्माणमें ज्यादा ताकत खर्च करनी पड़े तो शरीरके दूसरे अंग कमजोर पड़ जायेंगे और अन्तमें अुस अंगका भी ह्रास अुसकी अुत्पत्ति और दुरुस्तीसे ज्यादा बढ़ जायगा — यानी अन्तमें वह अंग धीरे धीरे घटता ही जायगा। अिसी तरह यदि शुक्रका भी लगातार व्यय होता रहे तो शुरूमें तो अुतनी ही तेजीसे अुसकी अुत्पत्ति होती मालूम होगी लेकिन कुछ समय बाद पता चलेगा कि वह शरीरके दूसरे अंगोंको नुकसान पहुंचाकर ही होती है और अन्तमें अुसकी अुत्पत्ति अेकदम घट जाती है। अिस तरह टालके बाल अुड़ना सारे सफेद होना नसोंका आकार घटना नपुंसकताका आना यानी शुक्रका परिमाण या गुणमें घटना — ये सब ह्रासकी गतिसे अुत्पत्तिकी गति कम हो जानेके या जरुरके चिन्ह हैं। जरा यानी क्षीणता फिर भले वह बीमारीके कारण हो अतिशय भोगविलासके कारण हो या कुदरतके नियमके अनुसार हरअेकका रूपअेकर आनेवाले बुढ़ापेके कारण हो।

मानस तथा ज्यादातर अुसके बाद आनेवाली ग्लानिसे और अशक्तिसे ही डरता है।

पुरुषके मनमें रही मूल वृत्ति अिस तरहकी होनेके कारण ब्रह्मचर्यकी साधनामें जवानीमें और पिछली अुमरमें परस्पर विरोधी प्रयत्न होते देखे जाते हैं।

जवानीमें जिस पुरुषको अपने पुरुषत्वके बारेमें शंकाका कोअी कारण नहीं होता, वह वीर्यस्खलनके मौकोंको यथाशक्ति टालनेके बाद अुसके पूर्वचिन्ह भी न मालूम होनेके अुपाय खोजता है। बार-बार शुक्रका नाश होनेसे अुसे पुरुषत्वके घटनेका डर मालूम होता है। अिस कारणसे वह स्वादको जीतता है, व्रत पालता है, आसन साधता है, प्राणायाम वगैरा सीखता है और कभी-कभी दवाओंका भी सेवन करता है। अितना करने पर भी जब वह अपनी कोशिशोंमें पूरी तरह सफल नहीं होता, तब परेशान और दुःखी होता है और अिस विषयके जानकार माने हुअे लोगोंकी सलाह पूछता है। अुसका यह प्रयत्न बुरा नहीं है। लेकिन अुसे यह भी समझना चाहिये कि जिन्हें कामविकारका अनुभव हो चुका है, अुन्हें यह शक्य नहीं लगता कि जब तक मध्यम प्रमाणमें भी अुनकी जीवनशक्ति होगी, तब तक पुरुषत्वके कायम रहते कभी भी वीर्यपात नहीं होगा। अिसलिअे अैसे अनुभवसे बेचैन और परेशान होना ठीक नहीं। बहुत बार शुक्रनाशसे पैदा होनेवाली ग्लानिकी अपेक्षा अिच्छा न होने पर भी शुक्रनाशको रोकनेकी अशक्तिसे और अुस विषयकी मनमें जमी हुअी कुछ कल्पनाओंसे ज्यादा ग्लानि होती है। लेकिन ग्लानि चाहे जिस कारणसे हो, परेशान होनेसे कोअी लाभ नहीं होता। यदि अैसा पुरुष अविवाहित हो, तो वह मन पर विषयोंके विचारोंका हमला होते ही अुसे किसी काममें या पवित्र अथवा निर्दोष विषयमें लगानेका प्रयत्न करे, लेकिन कुटेवमें न पड़े, व्यभिचार न करे, किसी बालक या दूसरेके साथ अतिचार न करे और स्त्री-पुरुष सहवासकी मर्यादाओंका पालन करे। अैसा करते हुअे भी कभी-कभी होनेवाले शुक्रनाशका प्रकृतिका

धर्म मानकर परेशान और दुःखी न हो। अैसा व्यवहार करनेवालेको बार-बार शुक्रनाशका अनुभव होता हो, तो अुसके लिअे आहार, विहार, परिश्रम और जीवनपद्धतिमें जरूरी फेरफार करना चाहिये। पर अिस बातको आरोग्यका विषय समझकर अुस पर विचार करना चाहिये। आरोग्यसे जिसका सम्बन्ध होनेसे शरीरको अुपवास या निःसत्व खुराक वगैरासे क्षीण करना या शुक्रकी अुत्पत्ति बन्द कर देनेवाली दवायें लेना अिसका सही अिलाज नहीं है। लाचारीसे या प्रकृतिधर्मके नाते शुक्रनाश हो, तो भी शरीरको बलवान और मजबूत रखकर शुक्रका बचाव और स्थिर रखनेका ध्येय सामने होना चाहिये।

विवाहित आदमीके लिअे भी संयमकालमें अूपरका ही ध्येय और अुसके अुपाय लागू होते हैं। लेकिन जिसका शुक्रनाश होता है, जिस पर विषयोंके हमले होते हैं और जो वीर्यपात हो न जाय तब तक अशांत बना रहता है, अुसका शरीर यदि बलवान, सुदृढ और सन्तान पैदा करने लायक हो, तो वह अपने शुक्रको व्यर्थ बरबाद करनेके बजाय नैतिकताका पालन करते हुअे सन्तान पैदा करनेमें ही अुसे खर्च करे। अुसका यह आचरण स्थूल और यांत्रिक संयमकी अपेक्षा ब्रह्मचर्यके ज्यादा नजदीक समझा जाना चाहिये। अुसी तरह अैसी स्थिति भोगनेवाला अविवाहित या विधुर पुरुष जवानी अुतरना शुरू होनेसे पहले विवाह करनेकी बात सोचे तो ज्यादा अच्छा हो। जो लोग अैसा नहीं करते, अुनमें पिछली अुमरमें कामविकार सम्बन्धी बुराअियाँ पैदा होनेका बहुत डर रहता है। बड़ी अुमर, दुनियाका अनुभव, जीवनमें प्राप्त हुअी स्थिरता, जवानीकी भागदौड़में आअी हुअी मन्दता, कभी-कभी मायावादके विचार द्वारा नीति-अनीतिके भेदके बारेमें पैदा की हुअी नास्तिक बुद्धि, कभी योगके साधनोंका ज्ञान, मायाका विश्वास और अिन सबके साथ सम्पूर्ण भोग भोगनेकी शारीरिक अशक्ति अैसे पुरुषोंको अनिष्टाचारकी ओर खींचकर ले जाती है। जो जवानीमें [illegible] पैदा होनेवाली मुत्तजनास या अनजानमें भी होनेवाले शुक्र नाशसे

अुद्विग्न हो जाते और डरते थे और अैसा न होने देनेके लिअ अुपाय खोजते थे। वे ही पिछली अुमरमें असा कम होनेसे या बन्द होनेसे या अुसके कम अथवा बन्द होनेकी संभावना मालूम होनेसे परेशान होते हैं और डरते हैं। और जननेन्द्रियकी अुत्तेजना और शुक्रकी अुत्पत्तिके बढ़ानेके अुपाय खोजते हैं। अुसके लिअ वे बनावटी या विकृत स्त्री-पुरुष सम्बन्ध भी कायम करते हैं। अिसीमें से वैद्यक और हठयोगके अनेक छिद्र या गुप्त अुपाय निकले हैं। कर्ता होते हुअे भी अकर्ता अलिप्त ब्रह्मनिष्ठ जनककी या श्रीकृष्ण जननकी या शाक्त साधनाकी बातें फैलाअी जाती हैं और वाममार्गका जन्म होता है।

जो पहली अुमरमें शरीरको बलवान रखकर शुक्रकी रक्षा कर सकते हैं, पिछली अुमरमें शरीरको मजबूत रखकर और आरोग्य तथा नैतिकताके नियम पालकर गृहस्थाश्रम चलाते हैं, अुनमें पिछली अुमरमें विकृति या बिगाड़ पैदा होनेकी कम संभावना रहती है। नतीजा यह है कि तथाकथित ब्रह्मचारीकी अपेक्षा अिनका मर्यादित ब्रह्मचर्य समाजके लिअ ज्यादा तेजस्वी और लाभदायी सिद्ध होता है। यानी यह सब रोगी और कमजोर स्त्री-पुरुषों पर लागू नहीं होता तथा लगातार और जीविका चलानेकी व्यवस्थाके अभावमें भी सन्तान पैदा करनेकी हिमायत करनेके लिअ नहीं है। अैसोंके लिअ संयमका रास्ता कृत्रिम जैसा होने पर भी बधक परहेजकी तरह है।

शुक्र और वीर्य (अुत्साह) का सम्बन्ध सहज ही समझमें आने जैसा है। लेकिन शुक्र-रक्षाकी साधनाको ब्रह्मचर्य क्या कहा जाय अिस पर विचार करना जरूरी है। केवल शुक्ररक्षा तो स्वास्थ्य और विज्ञानका विषय माना जायगा। अुसका नीति-अनीतिके साथ काफी सम्बन्ध नहीं है। बहुत करके आयुर्वेद या चिकित्साशास्त्र और योग मार्गियोंने अिसका वैज्ञानिक दृष्टिसे ही विचार किया है। अिसलिअे अुसमें स्वस्त्री और परस्त्रीका भी भेद नहीं किया जाता। लेकिन ब्रह्मचर्यमें केवल वैज्ञानिक दृष्टि ही नहीं है। ब्रह्मचर्यका अर्थ है

ब्रह्म या अीश्वरके मार्ग पर चर्या (चलना)। सब शक्तियोंका अीश्वरके मार्गमें अुपयोग करना ही ब्रह्मचर्य है। अुसमें प्रजोत्पत्तिकी शक्ति भी शामिल है। अुसका भी अीश्वरके मार्गमें अुपयोग करना चाहिये। यानी जिस अुद्देश्यसे यह अद्भुत शक्ति प्राणियोंको मिली है अुस अुद्देश्यको जगतके हितकी दृष्टिसे सिद्ध करनेके लिअे ही अिसका अुपयोग करना ब्रह्मचर्य है। अुसमें कृत्रिम समागमकी चाहे जिस तरहके संभोगकी या विकृत सम्बन्धोंकी कोअी गुंजाअिश नहीं है। अुसमें प्रजोत्पत्ति केवल भोगका परिणाम नहीं बल्कि अुद्देश्य होना चाहिये।

मअी १९४५